

कहानी का रचना-विधान

जगन्नाथप्रसाद शर्मा

अध्यक्ष : हिन्दी-विभाग

हिन्दू विश्वविद्यालय, काशी

हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय

वाराणसी-१

प्रकाशक :
ज्योत्स्नाकारा वेरी
हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय
पो. बक्स नं ७०, शानबापी
बाराणसी-१

द्वितीय संस्करण
सन् १९९१ ई०

मूल्य—द्वै रुपया

मुद्रक
शंभुनाथ बाबपेयी
राजभाषा कुट्टय
बाराणसी ।

विषयानुक्रम

श्री शब्द	
सामान्य परिषय	१ १४
कहात्री-उपन्यास-नाटक-पुस्तकौ	१५ २८
विषय-संग्रह	२९ ३८
बस्तु-विज्ञान	३९ ५६
आदि अंत धीर मध्य	५७- ८४
अरिज्ञ-विद्यया	८५ ११८
संवाद	११९ १३६
शीर्षक	१३७-१४६
बर्माकारण	१५ १६५
बातावरण	१६७-१८३
शोष-द्वारा	१८५ १ २
परिशिष्ट	
(क) शोष-विरुद्धेपय	२०३ २०६
(ख) संचित्त समीपा	२०७ २९०
(ग) अनुक्रमशिका	२९१ २९८

लेखक की अन्य कृतियाँ—

- (१) हिंदी की गद्य-शैली का विकास
- (२) 'प्रसाद' के नाटकों का शास्त्रीय अध्ययन
- (३) हिंदी-गद्य के युग-निर्माता
- (४) हिंदी गद्य साहित्य का इतिहास

दो शब्द

जैसे छोटे मुँह बड़ी बात अच्छी नहीं खगती वसी प्रकार हम छोटी-सी पुरतक की कोई बड़ी भूमिका भी अच्छी न होगी। इस क्षिपु वक्ष्य को धोड़े में समेट लेना चाहिये। आक्रमण हिंदी में आलोचना की रूम मची है। आलोचना का अनिर्दिष्ट प्रसार देख कर विचारशील अध्येता के मन में कभी-कभी यह आशंका होने लगती है कि कहीं पूसा न ही कि आलोचना की भीड़ में आलोच्य ही विलुप्त हो जाव। इस प्रकार की आशंका के कई कारण हैं। एक ओर साहित्य सत्रों की जिवा बुध दुर्बल हाती जा रही है, दूसरी ओर अध्यापन अध्यापन के क्षत्रीय विमस के कारण आलोचना बहिर्भूति का पिर्बाना बनती जा रही है। जिस अनुपात में भावियी प्रतिभा एक ओर मूर्च्छित होती जा रही है वही अनुपात में दूसरी ओर भावियी प्रतिभा भी नाना प्रकार की हीनताओं से जकड़ी जा रही है। न तो उच्चम कादि का साहित्य सामने आ रहा है और न उच्चके तराभिमिबंध की कई सत्प्रतिष्ठा ही देखने में आती है। पर आत्र की इस साहित्यिक गड़बड़ी में भी आशा के त्रिण बुध भूमि बची है और वसी आचार पर सुधार-परिष्कार की योजना बज सकती है। आत्र भी मही मयना पीर-विहीन हो गई हो ऐसी

बात वहीं है। इस गद्दबद् स्थिति में भी परमात्मा की श्रेय की तरह अपनेक उत्तम छात्र और समीपक हमारे बीच में हैं और उनसे प्रेरणा ग्रहण कर, उनको आदर्श रूप में सामने पा कर अन्य अपनेक और भी आर्षो—ऐसी भाषा प्रवरण होती है।

अपने समय की आवश्यकताओं में प्रेरित होकर बाबूरयामसुंदर हास ने जिस युग में 'साहित्यालोचन' ऐसे ग्रंथ का प्रकाशन किया था और एक प्रकार से सैद्धांतिक समीक्षा का सूत्रपात किया था आज हम उससे बहुत आगे बढ़ आए हैं पर वस्तुस्थिति वहीं है कि यदि आज भी कोई विद्यार्थी पूछता है कि समीक्षा-सिद्धांत की सामान्य व्याख्या के लिए कहाँ से क्या बहें तो उसी ग्रंथ की ओर संकेत करना पड़ता है। इस ग्रंथ के बाद कुछ समीक्षा सिद्धांतों के मूल पूर्व चिंतन की वैसी स्पष्ट परिपटी विकसित होनी चाहिए थी, नहीं हो सकी है। समय-समय पर, बिना किसी बीजना-सम के कुछ लोगों ने शब्दक, उपन्यास, कहानी, निबंध इत्यादि के विषय में सैद्धांतिक विचार प्रवरण प्रस्तुत किए हैं परंतु उनको लेकर निर्भांत मापदंड की स्थापना में अधि अधिक योग नहीं मिल पाता।

इस ढंग की कृतिओं में मेरे मित्र डॉ० विनोदशंकर व्यास की रचनाएँ—'उपन्यास कला' और 'कहानी-कला' का अथवा पेत्रीय महत्व है। क्या अथवा इतना इसी तरह अन्य विशेषज्ञ भी अथवा पूर्वक अपने विचार-विमर्श का अधिकधिक परिष्कार करते, उपन्यास सिद्धांतमूलक ढंगों की रचना करते और समीक्षा के क्षेत्र का संयोजन बनाते। आज आवश्यकता इस बात की मासूम पड़ती है कि विषय के निपुण ज्ञाता मित्र मित्र साहित्यिक रचना प्रकारों का सूक्ष्म सूक्ष्म स्वरूप निरूपण करें और उनका सैद्धांतिक गहन की सारी मार्मिकताओं का पूर्व उद्घाटन करें। इससे अथवा और अथवापक में साक्षात्निबंध की प्रे का जागीरी और है सामान्यता किसी भी वैसी विदेशी साहित्यिक कृति की सूक्ष्म सीमाया बन में कुछ बन सकेगी।

इसी विचार से प्रेरित होकर हम पुस्तक को लिखा गया है। कहानी-रचना के तरीकों की विवेचना में ब्याजलि पुस्तकों से सार संग्रह किया गया है; साथ ही अपनी ओर से भी स्वतंत्र चिंतन की चेष्टा की गई है। विषय-विकल्प में कहीं और कितनी सफलता मिल सकी है इसका निर्णय सहृदय विरोध ही कर सकेंगे। स्पष्ट रूप से सिद्धांतों की सुस्पष्टता उपरिष्ठ करने के विचार से हिंदी के विभिन्न श्रेष्ठ कलाकारों की रचनाओं को साची रूप में सामने रखा गया है। हिंदी-साहित्य का विद्यार्थी घग्घ मापाओं में लिखे गए सिद्धांत चिंतन से जो पूरा-पूरा लाभ नहीं उठा पाता इसका कारण यही है कि उनके व्यावहारिक प्रयोग की सुंदरताओं को वह निष्ठा रूप में समझ नहीं पाता। हिंदी में कहानी रचना का वैज्ञानिक स्वरूप आज अपने निष्कार पर है बसमें रचना संबंधी सभी प्रकार की विविधताएँ सुपरिष्ठ मिलती हैं। ऐसी अवस्था में आवश्यक माहूम पढ़ा कि सिद्धांत प्रतिपादन में बसके कल्प-रूप का काम उठाना मात्र। इसी उद्देश्य की पूर्ति के विचार से अंत में परिच्छिष्टों के भीतर कुछ कदावियों की संछिष्ट आलोचना भी जोड़ दी गई है; साथ ही तीन मित्र प्रकार की कदावियों का विरोध भी उपरिष्ठ किया गया है। आशा है, योग्य अप्पेक्षाओं को विषय के विकल्प में हमसे कुछ भोग मिछेगा और वे इसी प्रकार घग्घ श्रेष्ठों के अनुशीलन में भी ब्या-संग्रह प्रहृत हो सकेंगे।

यहाँ में उन सभी विचारों और धक्कों के प्रति अपना आदर और आभार प्रकट करता हूँ जिन्होंने कृतिओं को बढ़कर मेरे भीतर विचार करने को योग्यता गठित हो सकी है और प्रेरणा मिछ सकी है इस बात की कि मैं भी कुछ लिखूँ। विरोधता में कृतज्ञ हूँ उन विद्यापती पठितों का जिन्होंने कृतिओं का बिना सहारा बिन् विषय ही पूरा नहीं हो सकता था। अंत में मैं बाइकों से घग्घ-व्यापना करता हूँ—पुस्तक में मिछनेबाइ उन घग्घ-व्यापना श्रेष्ठों के बिन् की

या तो कमजोर क्षपाई के कारण उत्पन्न हो गए हैं या स्वयं मेरे
 दिखाने की असामर्थता से आ गए हैं। प्रत्येक क्रिपे में भी
 बौद्धिक दिखाना गया है। इनके भाग में मैं देखता हूँ कहीं-कहीं बाल्य
 अथवा बाल्यायुष्य कुछ अस्पष्ट-से रह गए हैं और बात भी क्लिप्त
 साफ़ होनी चाहिए थी नहीं हो पाई है। क्षपाई की अज्ञता से मैं
 में कम परेशान नहीं हूँ पर भविष्य में सब दोषों के मार्जन
 करने का आश्वासन देने के अतिरिक्त इस समय और कर ही क्या
 सकता हूँ।

बीरगाबाद,
 काशी।

बगन्नायप्रसाद शर्मा

१८-२-१९

सामान्य परिचय

या तो कमजोर वृषार्थ के कारण उत्पन्न हो गए हैं या स्वयं में
 विकल्प की असावधानता से आ गए हैं। पुस्तक बिलकुल अंत को
 धीरे-धीरे लिखा गया है अतः भाग में भी देखा है कहीं-कहीं वाक्य
 अथवा वाक्यांश कुछ अस्पष्ट-से रह गए हैं और बात भी बिलकुल
 साफ़ होनी चाहिये थी नहीं हो पाई है। वृषार्थ की अज्ञानता से भी
 मैं कम परेशान नहीं हूँ पर यद्यपि मैं सब दोषों के मार्जन
 करने का आराधनात्मक हेतु के अतिरिक्त इस समय और का ही क्या
 सकता हूँ।

श्रीरंगनाथ,

काशी।

१८-९-३९

श्रीगंगाधरप्रसाद शर्मा



सामान्य परिचय

संसार के सभी साहित्यों में एक बात समान रूप से पाई जाती है, जनम काव्य की प्राचीनता के साथ-साथ कहानी-साहित्य का कोई न कोई रूप प्रचलित मिलता है। यदि हम केवल रूप की प्राचीनता भारतवर्ष के प्राचीनतम साहित्य की ओर ही देखें तो यह भावना पड़ेगी कि ऋग्वेद में नहीं एक ओर काव्यप्रमक अभिव्यंजना-व्यक्ति का प्रयास हुआ है वहीं दूसरी ओर कहानियों के भी प्रारंभिक रूप का समुदाय नहीं है हुआ है। उस काल से लेकर आज तक मंपूर्ण भारतीय साहित्य में इसका किसी-न-किसी प्रकार भेद से उपयोग होता आ रहा है। समस्त प्राचीन काल का साहित्य कहानियों से भरा हुआ है। वैदिक काल में तो उत्पन्न-निधय के प्रसंगों में वहीं वहीं आचरणकता पाई है, कहानियों के महारे बड़े-बड़े मर्म की बातें स्पष्ट कर दी गई हैं। वहीं से लेकर कुछ और चीजों के प्रसार-आम तक कहानियों का प्रयोग एक विशेष व्यक्ति पर ओर एक विशेष अभिप्राय को लेकर होता आया है। उत्तरीय समस्त साहित्य कथाओं से भरा पड़ा है। उस समय के संस्कृत साहित्य में भी इन प्रकार की रचनाओं की कमी नहीं है। कहानी-रचना की दृष्टि से भारतीय साहित्य प्राचीनतम प्रतिनिधि माना जा सकता है।

परंतु वर्तमान काल में आकर कहानी के जिस रूप से हम परिचित हो रहे हैं, यथा जिस रूप का सत्पत्रिक विकास प्रसार हो रहा है

उसमें न तो प्राचीन पद्धति का अनुसरण है

अर्थात्

न उसकी रूपादेयता और न उस प्रकार की

सर्वता-प्रगामी से ही हमारा कोई संबंध रह

पाया है। समानता इस बात में अवश्य है कि जितना प्रचलन कहानियों

का प्राचीनकाल में था उतना आज भी है। प्रत्येक क्षेत्र में रचना के

इस रूप का प्रेम बिलंबी पड़ने लगा। चित्तलयों की प्रतियोगिताओं

और वाचनालयों से लेकर स्टेजों और रेसपाइकों के साधारण वाक्यों

तक इसका ऐसा प्रवेश हो गया है कि सभी चाहते हैं कि यदि कुछ

कामोपेय का प्रश्न सामने उपस्थित हो जाय तो कहानियों की पत्र-

पत्रिकाओं से वह समय सरसता से काटा जा सकता है। कम से कम

बढ़ा-सिखा बन की सरल भाषा में सिधी साधारण कहानियों से अपना

मनोबिन्दु कर लेता है। प्रत्येक भाषा और साहित्य में रचना का यह

प्रकार इतना प्रिब और अनुरजनकारी सिद्ध हो रहा है कि स्वतंत्र

इसी रूप को लेकर न जाने कितनी पत्र-पत्रिकाएँ प्रकाशित होती रहती

हैं। वहीं पढ़नेवालों की संख्या इतनी बढ़ रही है, वहीं सिखनेवाले भी

बहुत निकलते पाते हैं। कुछ लोगों की धारणा तो ऐसी हो रही है कि

साहित्यिक धम्माड़े से उतरने का यह सरबतम माध्यम है।

वर्तमान युग में समय का मूल्य बढ़ गया है। छोटे से छोटे

समय में अधिक से अधिक उत्पादन और आयोम को महत्त्व मिल

रहा है। यद्यपि नाटक और उपन्यास

अपेक्षित

ऐसी विस्तारकारी रचनाओं को पढ़ने के लिए

जितना समय उपेक्षित होता है, उतना सभी

सरसता से नहीं दे पाते। एताकता आज कहानी ही अपनी लक्ष्य के

अरथ अर्थात् विषय बन रहा है। साहित्य के माध्यम से जाने जाने

वासी जितने भी प्रभाव हो सकते हैं, वे रचना के इस प्रकार में अर्थात्

तरह से उत्पन्न किए जा सकते हैं। चाहे सिद्धांत प्रतिपादन अभिप्रेत हो चाहे चरित्रचित्रण की सुंदरता इष्ट हो किसी घटना का महत्त्व-निष्पन्न करना हो अथवा किसी वातावरण की समीक्षा का अनुशासन ही सक्षम बनाया जाय किन्ना का बेव प्रकृत करना हो या मानसिक स्थिति का सूक्ष्म विश्लेषण करना अभीष्ट हो—यही कुछ इसके द्वारा संभव है। रचनाकार में यदि प्रतिभा शक्ति और कौशल है तो प्रवीण उपन्यास नाटक सभी का आस्वादन इसके द्वारा करा सकता है। यही कारण है कि कहानियों के पठन-पाठन की अभिरुचि को इतना प्रथम मिला रहा है। इसी सिद्धांत के आधार पर नाटकों के स्थान पर एकां कियों को और महाकाव्यों और संस्कृतियों के स्थान पर छोटे-छोटे मुक्तकों अथवा प्रगीतारमक कविताओं को अधिक प्रवेश मिला रहा है। कथाओं के समुत्तम रूप का ही आश्रय कहानी को मानना चाहिए। सबे चींटे आत्मियों और उपन्यासों में जिस प्रकार के अनेकानेक प्रभाव समुच्चय बिखरे हुए मिले रहते हैं उनको एक ही प्रवाह और भवति में पड़ने से एक मुख्यपूर्वता की कृति तो अवश्य होती है पर घघमें एक प्रकार का उबाव भी अनुभूत होता है। बार-बार साथ लेकर आगे बढ़ने की आकांक्षा बनी रहती है। कहानी में ऐसी कोई पाठ नहीं रहती। यही उसका सबसे बड़ा आकषण है।

रचना का यह रूप वही इतना अधिक उपादेय और लोकप्रिय है वही उसके स्वल्प और गुणधर्मों के विषय में माना प्रकार की भांति मूलक माध्यमार्थे द्विती समीक्षा के क्षेत्र में व्यापक भांति प्रविष्ट हो चुकी है। इस भांति के कारणरूप में देवी तथा विदेवी सभी प्रकार के भेद्यरु हैं। संघर्षों के घनर पर और उन्नतियों के फेर में पड़कर कीर्ति कदा है कि कदाती मज पर वह रचना भेद है जो पत्रह या बीस मिनट में समाप्त हो जाय अथवा एक बैठकी में जिसे पढ़ा जाय। एही तरह

1 (1) A 12345 6789 10 11 12 13 14 15 16 17 18 19 20 21 22 23 24 25 26 27 28 29 30 31 32 33 34 35 36 37 38 39 40 41 42 43 44 45 46 47 48 49 50 51 52 53 54 55 56 57 58 59 60 61 62 63 64 65 66 67 68 69 70 71 72 73 74 75 76 77 78 79 80 81 82 83 84 85 86 87 88 89 90 91 92 93 94 95 96 97 98 99 100

कुछ लोग उपन्यास की तुलना में इसे संबन्धकम कहने लगते हैं या जीवन का वास्तविक उद्घाटन मानते हैं। उपन्यास की तुलना में इसके स्वल्प-निर्धारण का परिणाम यह होता है कि विभिन्न सैद्धांतिक विचारों पर पहुँचते हैं। यहाँ तक कि कुछ लोगों की यह धारणा होने लगती है कि कहानियों की प्रसार समिति का यह भी प्रभाव हो सकता है कि उपन्यासों के रचना-प्रकार में बाधा पड़े और कासावर में उपन्यास सिधे ही न जायें। अस्तु उपन्यास की तुलना में कहानी की बातचीत सबका उन लोगों की तारतमिक समीक्षा स्वयं में मानत है। जहाँ तक इन दोनों रचना प्रकारों का संबंध है, उनमें तत्त्वगत अंतर है। दोनों रचनाओं की भाषा-विचारों भिन्न-भिन्न हैं। दोनों के क्षेत्र और दोनों की उपस्थिति गूढक-गूढक है। दोनों के स्वल्प-संगठन का विधान भी आपस में भेद नहीं खाता। यदि उनकी रचनात्मक प्रकृति का तार्किक विचार किया जाय तो दोनों में स्पष्ट मौलिक विरोध दिखाई पड़ेगा।

ऐसी स्थिति में कहानी के प्रसार से उपन्यास को सबका उपन्यास के प्रसार से कहानी को कोई खति पहुँचिनी ऐसी कोई स्थिति दिखाई नहीं पड़ती। कहानी के लक्षण और परिभाषा कुछ भेदकता के विषय में भिन्न भिन्न रचना-विचारों और समीक्षकों का कहना अलग-अलग है। कोई इसके विषय को लेकर कुछ कहने लगता है, कोई उसके विस्तार-नियंत्रण पर ही जोर देने लगता है, कोई उपन्यास की तुलना में ही

half an hour to one or two hours for its perusal—
The works of Edgar Allen Poe Vol. II Chapter
on—Nathaniel Hawthorne.

- (ii) H G Wells has suggested that a story should be of no greater length than enables it to be read in some twenty minutes—A. C. Ward—Foundations of English Prose., pp 122.

उसका अपनत्व निरूपित करता है। इस प्रकार कहानी के विषय में सबके दृष्टिकोणों में किसी न किसी प्रकार की एकानिता दिखाई पड़ती है। इसके कारण अत्यासत्य निरूपण में बड़ी बाधा उठ नहीं होती है। यदि निर्धारित होकर घनकालेक कहानियों के आचार पर उनकी प्रकृति का विचार किया जाय और उसकी मूलभूत भेदवता का सामने रखा जाय तो केवल दो पात्रकय विधायक गुणधर्म ऐम दिखाई पड़ेंगे जिनके आचार पर कोई भी विचारहीन समीक्षक कहानी को अग्य रचना-प्रकारों से सर्वथा पृथक् कर दे सकता है और उसमन के लिए कोई स्थान न दिखाई पड़या—

(१) विषय का एकत्र अभिवा मुखभाव की अलम्बता ।

(२) प्रभाव-समष्टि अथवा प्रभावस्थिति ।

कहानी में सबसे ज्यादा महत्व की वस्तु विषय का एकत्र या विषयगत एकदमीयता है। यह एकत्र किसी भी क्षण का हो सकता है। मात्र विचार घटना अत्रि किसी भी मुखभाव क्षण में क्यों न हो लेखक का ध्यान किसी एक विषय पर केंद्रित रहना है। किसी व्यक्ति के अत्रि की कोई एक प्रणिमा को एक वक्ति यदि कहानीकार की दिखाई पड़ गई तो उसी की लक्षण वह कहानी का स्वल्प संगठित कर सकता है। वहीं-वहीं किसी घटना का ऐसा स्वल्प विषयसाई पड़ सकता है जो भावुक के हृदय में घपना कर कर ल। किसी व्यक्ति का वातावरण ऐसा हो सकता है जिनके भीतर किसी प्रकार की समीकता उत्पन्न कर देने से वह प्रामाचार्य कर ल घपना कोस उठ। इसी तरह जीवन के विस्तार में न जाने कितनी समरपाण घोर परिस्थितियाँ घाती हैं, जिनसे जना प्रकार क क्षय और सिद्धांत विकास या सजते हैं। किसी व्यक्ति, स्थान विषय में यदि वित्त को स्पर्श कर देने की घपना मरिठक का वपित कर देने की कुछ भी शक्ति दिखाई पड़ती है तो कहानीकार के लिए पर्याप्त सामान एकत्र हो जाता है। किसी

कुछ लोग उपन्यास की तुलना में इसे अधिकार्य कहने लगते हैं या जीवन का प्राथिक चरमोत्कृष्ट मानते हैं। उपन्यास की तुलना में इसके स्वल्प-निर्धारण का परिणाम यह होता है कि विभिन्न लेखक निराधार निष्कर्षों पर पहुँचते हैं। यहाँ तक कि कुछ लोगों की यह धारणा होने लगती है कि कहानियों की प्रसार उपस्थिति का यह भी प्रभाव हो सकता है कि उपन्यासों के रचना-प्रसार में भाषा पढ़े घोर क्रान्ति में उपन्यास विद्ये ही न आए। अस्तु उपन्यास की तुलना में कहानी की बातचीत भयंकर उन दोनों की तारत्विक समीक्षा स्वयं में चलत है। यहाँ तक इन दोनों रचना प्रकारों का संबंध है। उनमें तत्त्वगत अंतर है। दोनों रचनाओं की सामान्य-विशेषताएँ भिन्न भिन्न हैं। दोनों के क्षेत्र घोर दोनों की उपादेयता सूक्ष्म-सूक्ष्म है। दोनों के स्वल्प-संयोजन का विधान भी आपस में भेद नहीं खाता। यदि उनकी रचनात्मक प्रकृति का तात्त्विक विचार किया जाय तो दोनों में स्पष्ट मौलिक विरोध दिखाई पड़ेगा।

ऐसी स्थिति में कहानी के प्रसार से उपन्यास को भयंकर उपन्यास के प्रसार से कहानी को कोई क्षति पहुँचनी ऐसी कोई स्थिति दिखाई नहीं पड़ती। कहानी के लक्षण और परिभाषा सूक्ष्म भेदकता के विषय में विद्व-भिन्न रचना-विचारकों और समीक्षकों का कहना चलन-प्रचलन है। कोई इसके विषय को लेकर कुछ बहने सकता है, कोई उसके विस्तार-नियंत्रण पर ही जोर देने लगता है, कोई उपन्यास की तुलना में ही

half an hour to one or two hours in its perusal—
The works of Edgar Allan Poe Vol. IV Chapter
on—Nathaniel Hawthorne

- (ii) H. G. Wells has suggested that a story should be of no greater length than enables it to be read in some twenty minutes—A. C. Ward—Foundations of English Prose, pp 122.

उसका प्रपगापन निरूपित करता है। इस प्रकार कहानी के विषय में उसके दृष्टिकोणों में किसी न किसी प्रकार की एकाग्रता दिखाई पड़ती है। इसके कारण सरवासरय निरूपण में बड़ी भाषा उठ खड़ी होती है। यदि निम्नात्र होकर अनेकानेक कहानियों के आधार पर उनकी प्रकृति का विचार किया जाय और उसकी मूलमूल मेवकता को सामने रखा जाय तो केवल दो पाबक्य विचारक गुणधर्म ऐसे दिखाई पड़ेंगे विषये आधार पर कोई भी विचारणीय समीपक कहानी को धर्म रचना-प्रकारों से सबसे पृथक कर दे सकता है और उसभ्रम के लिए कोई स्थान न दिखाई पड़ेगा—

(१) विषय का एकलव्य छववा मूलभाष की अनन्यता।

(२) प्रभाव-समष्टि अथवा प्रभावाम्बिति।

कहानी में सबसे ब्याप्त महत्त्व की वस्तु विषय का एकलव्य या विषयगत एकद्वैतीयता है। यह एकलव्य किसी भी अर्थ का हो सकता है। भाव विचार घटना अग्नि किसी भी क्षेत्र में क्यों न हो लेखक का ध्यान किसी एक विषय पर केंद्रित रहता है। किसी व्यक्ति के अरिज की कोई एक संपिमा को ही एक वृत्ति यदि कहानीकार को दिखाई पड़ गई तो उसी को लेकर वह कहानी का स्वरूप संपठित कर सकता है। कहीं-कहीं किसी घटना का ऐसा स्वरूप दिखावाई पड़ सकता है, जो भावुक के हृदय में प्रपना भर कर ले। किसी स्थान विषये का वातावरण ऐसा हो सकता है जिसे भीतर किसी प्रकार की समीपता उत्पन्न कर देने से वह प्राणधारण कर ले अथवा बोल उठे। इसी तरह जीवन के विस्तार में न जाने कितनी समस्याएँ और परिस्थितियाँ पाती हैं। अिनस नामा प्रकार के सरय और विद्यात निकामे जा सकते हैं। किसी व्यक्ति स्थान विषय में यदि अित्त को स्पष्ट कर देने की अथवा अरिक्तक को अरिक्त कर देने की बुद्ध भी शक्ति दिखाई पड़ती है तो कहानीकार के लिए पर्याप्त मसासा एकत्र हो जाता है। किसी

एक विषय तथ्य, प्रतुष्टि और पक्ष के विषय में कलाकार की ऐकांतिक निष्ठा ही कहानी को सजीवता प्रदान करती है। संयुक्त कहानी के घट्य सभी तत्त्व कथानक संवाद चरित्र्य देशकाल इत्यादि को कुछ भी उसमें रूढ़िमा वह सब सामन रूप में रहेगा। साम्य रूप में केवल एक ही प्रतिपाद्य होगा वही संयुक्त सज्जा का केंद्रबिंदु होगा। इस आधार पर कहानीकार से पूछा जा सकता है कि उसकी रचना का केंद्रबिंदु क्या है? साथ ही प्रश्नोत्तर पाठक से प्रश्न किया जा सकता है कि किसी कहानी का क्या मूलांश है? यदि इन प्रश्नों के उत्तर में कोई एक के स्थान पर दो बातों का उल्लेख करे तो समझ सेना चाहिए कि कहानी में दोष है जबकि इस विषय की रचना-प्रक्रिया काउंटे बोन नहीं है।

कहानी में यों तो मयास्थान विभिन्न तत्त्व समिबिष्ट रहते हैं परंतु उनकी संयुक्त गति किसी एक ही दृष्ट के स्थापन निर्माण में लगी रहती है। यदि भाव की ध्वंजना ही दृष्ट है तो पात्र उसी प्रकार के भाव में डूबा दिखाई पड़ेगा जबकि उसका समस्त चरित्र्य उसी भाव को बगाठा मिलेगा। उस भाव की सिद्धि के लिए, पात्र के चरित्र की जो वृत्ति सबसे अधिक प्रतुष्ट होनी उसकी चरित्रिधि का सामान्य परिचय देकर परिस्थितियों को देखकर इस प्रकार सजा देने की चेष्टा करेगा कि उस भाव का एक उद्दीप्त स्वरूप ही प्रेरणा का कारण बन जाय। चार्लस बालाबरन उसी भाव विरोध की सजीवता को प्रकट करने में लगा दिखाई पड़ेगा। संवाद भी ऐसे ही होंगे कि उसी के स्वरूप का बीज कदाएँ घबरा उसी को अधिकधिक स्पुष्टि करने में योग दें। पात्र उन सवालों का धोब लेकर वा तो अपने घांठरिक्त चित्तन को प्रकट करेगा घबरा क्रिया के बेम से उस भाव की धोर बढ़ेगा। इस प्रकार पात्र की क्रियाशीलता बालाबरन की सजावट उस भाव या वृत्ति को इस रूप में सामने उमाड़ कर रखेगा कि पाठक का हृदय मन्मन्ना बटे घबरा माधुर्य में पन उठे। सारी कहानी को पढ़कर उसके हृदय

पर उसी भाव की धारता स्थापित हो जाय । अपनी कहानी नहीं है जिसके अंत में धाकर पाठक किसी विचार और भावना की लहरों में डूबता-उठता दिखाई पड़े यथवा स्तंभित रहकर कुछ क्षणता और अनुमान में प्राविष्ट हो जाय ।

कविता के अन्त में किसी प्रतीकारमक रचना को पढ़ने पर पाठक की सारी प्राथम्यी चेतना जैसे एकोन्मुख होकर प्रतिपाद्य की ऐकात्मिकता के रसास्वादन में डूब जाती है और उस कविता एकोन्मुखता का सामूहिक प्रभाव पढ़नेवाले के ऊपर छा उठता है, यथवा जैसे बंटे की टप्पाहट के अंतर्गत भी कुछ देर तक उसकी अंकुश लहरों कागों में एक साधुनासिक ध्वनि बने रहती है यथवा जैसे बिजली की कड़क का प्रारंभ बिजत को बोझी देर के लिए बांध देता है उसी प्रकार किसी कहानी का 'मूखभाव' भी कुछ देर के लिए हमको घेरने में डूबा लेता है । यदि कहानी में चरित्र की किसी वृत्ति विशेष का अल्प स्वल्प ही चित्र को सबसे अधिक दृष्टि करता है तो फिर कोई ऐसी दूसरी ज्ञातव्य बात कहानी में नहीं प्रवेश पा सकती जो उस दृष्टता को किसी क्षण में भी प्रभावित करे । तात्पर्य कहने का यह है कि कहानी हमारे संपूर्ण संवेगों को हमारी संपूर्ण चेतना को और साथ ही हमारी संपूर्ण बौद्धिकता को पूर्णतया एकोन्मुख बना देती है । जब तक यह स्थिति नहीं जाती जब तक कहानी का लक्ष्य सिद्ध नहीं समझना चाहिए । यह नहीं हो सकता कि एक ही रचना में हमारा ध्यान चरित्र की ओर भी जाए घटना की ओर भी उन्मुख हो और वेदकाल के चित्रण की ओर भी खिंचे । रचना के इस प्रकार में विषय की अनेकता को सर्वथा अज्ञेय मानना चाहिए ।

किसी एक ही विषय की ऐकात्मिक स्थापना को कहानी की मूल वृत्ति मान लेने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि वे सब सिद्धांत गलत हैं जिनके अनुसार कहानी बहु भागी जाती है जो एक ही बैठक में पढ़ी जाए यथवा जिसके पढ़ने में बड़ा सा समय लगे । ऐसी भी कहानियाँ

जिसकी आधी है, और उनमें कहानी एक रखा है जिसका विस्तार पचासी पृष्ठों तक बना जाता है जैसे 'मेमबर्द' की कहानी 'दो सखियाँ' अथवा 'मसाह' की 'बांधी' अथवा विस्तार अरब बाबू की बहुत सी कहानियाँ हैं। इन कहानियों में विस्तार-भार कुछ भी हो लेकिन मूलतः सब एक ही दिशा में पड़ेगा। वहाँ चाप विस्तार भार केंद्रित मिलता है किसी एक ही प्रतिपाद्य पर। इसी तरह छोटे उपन्यास भी हो सकते हैं, जैसे ईश्वरप्रसाद का 'स्वामीपुत्र' अथवा अरब बाबू के छोटे छोटे 'अरबखोचा' आदि अनेक उपन्यास। ये कामा में छोटे होकर भी उपन्यास ही रहेंगे कहानी नहीं हो सकते क्योंकि इनका प्रतिपाद्य एक नहीं है।

संक्षेप रूप में निष्कर्ष यही है कि प्रसार-विस्तार को अथवा कुछ कम काल में ही पढ़ी जानेवाली विशेषता की कहानी का पार्श्वक विद्यमान बर्णन नहीं कहा जा सकता। इसी तर्क पर कहा जा सकता है कि अनेक प्रभावों की समष्टि बहुत करनेवासे जो रचना के प्रकार हैं—नाटक और उपन्यास—के मूलतः कहानी से पृथक हैं। उपन्यास और नाटक की तरह कहानी से न तो धार्मिक कथा के साथ अन्य कोई प्रासंगिक कथा या सक्त होती है और न उसमें अरिष्ट का विनाशकम अस्तकामा जा सकता है। इस विषय में अनेक उपलक्षणों से सबबद्ध हुए भी 'इवसक' का निर्णायक कथन ही सर्वमान्य और निर्विवाद

१ "A short story must contain one and only one informing idea and that the idea must be worked out to its logical conclusion with absolute singleness of aim and directness of method"

मासूम पड़ता है। प्रेमचंद^१ जी ने भी प्रथम अनेक उपलक्षण संबंधी विशेषताओं का उल्लेख करते हुए अपने अंग स कहानी के इस मेदक उत्पन्न को स्वीकार किया है।

प्रारंभ में कहानी की जिन दो मेदक विशेषताओं का उल्लेख किया गया है—विषय का एकल धीर प्रभावान्विति उन दोनों में सामन-साध्य संबंध है। प्रथम साधन है धीर द्वितीय प्रभावान्विति साध्य। विषय का एकल जिस समय एकोन्मुख होकर बुद्धि धीर हृदय को स्पन्धित करता हुआ सहृदय को रसमयी तन्मयता में डूबा देता है, उस समय की प्रभावान्विति का सीर्य सम्पुक्त हो उठता है। इसीलिए कहा जा सकता है कि कृतिकार विषय को इस ढंग से उपस्थित करता है कि अंत तक धाते धाते स्वाग-स्वान पर उत्पन्न होनेवाले विभिन्न प्रभाव इस प्रकार सिमिते धीर एक दूसरे से सपृक्त होते जैसे धाते हैं कि उनका एक सम्मिलित प्रभावम्पूह तैयार हो जाता है। समाप्तिस्थान पर धाकर उन प्रभावों की एक समष्टि बन जाती है धीर वे सभी धाकर एक स्थान पर प्रस्थित हो उठते हैं। इसी को प्रभावों की प्रस्थिति या समष्टि माननी चाहिए धीर यही कहानी की सबसे बड़ी विभूति होती है। अंगरेजी के किसी लेखक ने इसी को प्रभावान्विति^२ कहा है धीर किसी लेखक ने समष्टिप्रभाव।^३

१ संक्षिप्त रूप से गल्प एक कविता है, जिसमें जीवन के किसी एक अंग या किसी एक मयोभाव को प्रदर्शित करना ही लेखक का उद्देश्य होता है।

—प्रेमचंद : गल्प-समुच्चय, द्वितीय संस्करण, पृ १।

२. *Unity of Impression : Brander Mathers—The Philosophy of Short Story* —“A true short-story differs from the novel chiefly in its essential—Unity of Impression—is a far more exact and precise use the word short story has a unity which a novel cannot have it”
Encyclopaedia Britannica Vol XX pp. 580

३. *Effect of Totality*

इस घटक को ठीक से समझने-समझान के लिए दो एक उदाहरण प्रायःसक हैं—एक दुष्ट व्यक्ति किसी निरपराध को एक बप्पड़ मार बैठा है देखनेवाला जब मार जानेवाले का कोई अपराध नहीं देखता तब वह अपनी तरह समझ बैठा है कि उस दुष्ट व्यक्ति ने केवल उर्ध्वता और क्रूरता के कारण ही उसको मारा है। इस पर इष्टा उस दुष्ट प्राणियों का कुछ मिरा हुआ व्यक्ति मानता है। इस स्थान पर देखनेवाले के चित्त पर यह प्रथम प्रभाव अपनी छाप छोड़ता है। कुछ दूर जानकर, जबका कुछ समय के बाद वही दुष्ट यदि किसी अनर्थ और दुखी कृता को पीठता दिखाई पड़ता है तो उस समय उसी इष्टा को उस पर बड़ा क्रोध उत्पन्न होता है। यह क्रोध की उत्पत्ति इष्टा के चित्त पर पड़नेवाले दूसरे प्रभाव का परिणाम है। कामांतर में वही दुष्ट व्यक्ति यदि पुनः किसी गरीब परिवार को विन्तुल मष्ट कर कामने पर उतरा दिखाई पड़ता है तब वही पुराना दर्शक इस सीमा पर जाकर उस दुष्ट के भयंकर अत्याचार से क्रुपित और सुख्य होकर यदि उंडा लेकर बीड़ पड़े—उसे मारने के लिए—तो उसके इस क्रियावैय के मूल में प्रभावान्त्रिदि काम करती समझी जायगी। पहली बार उस दुष्ट के आचरण से इष्टा के चित्त पर जो छाप पड़ी थी वह सामान्यता इत्की थी। दूसरी बार पहली छाप की जो आवृत्ति हुई उसमें दूसरी बार की छाप के गर्भ में पहली बार की छाप सिमटी वर्तमान यामी कायमी। इसी तरह तीसरी बार की मर-विघाबिता देखकर इष्टा के चित्त पर जो छाप पड़ती है और चित्तसे प्रेरित होकर उसका क्षोभ सक्रिय हो उठता है उसके गर्भ में कम से पहली दोनों छापें संतमुक्त माननी चाहिए। इसी से चित्त में उद्येय और उद्येयनित क्रिया-मेरकता उत्पन्न हुई समझी जायगी। यहाँ तक पहुँचने पर पहले के सब प्रभाव एक में प्रशिक्षित मिलेंगे।

इसी प्रकार का एक दूसरा उदाहरण दिया जा सकता है। किसी बेधमत्त को बेध के लिए कष्ट उठाते मतलबार्हें सहेते देखकर हमारे

चित्त में उसके प्रति घाबर उत्पन्न होगा। घामे चलकर यदि उची व्यक्ति को देख के लिए अपना सारा राजपाट उत्सर्ग करते हम देखेंगे तो विस्मय विमुग्ध हो उठेंगे। इस प्रकार विस्मय-विमुग्ध होने में प्रबन्ध ही पहलवाना घाबर भाव उसमें संधिबिष्ट रहेगा। घामे चलकर यदि वह देखभक्त देख की धान पर अपना बसिबान करता बिलाई पड़े तो उसमें देखत्व का आभास पाकर हम मद्गद चित्त होकर उसकी चरणभूम यदि बटोरने लगे तो हमारी इस क्रिया में पूर के सब प्रभाव परिबल समझने चाहिए। संक्षेप में कहा जा सकता है कि पूर्ब के हुन्के प्रबन्ध पहरे प्रभाव यदि एकत्र होते जायें तो प्रभावों की एक ऐसी सामूहिकता तैयार होगी जिससे हृदय में तीव्र संवेदनशीलता भर उठेगी। वस्तुतः यदि देखा जाय तो कहानी में इसी प्रकार के प्रभाव-समष्टि की आकांक्षा रहती है।

एकोन्युक्त प्रभावान्विति उत्तम चित्त को इस प्रकार आबिद्ध करती है जैसे सूई की नोक। यदि किसी कोमल आधार पर सूई को रखकर धेर धर का बजन उस पर पटक दिया जाय तो जो फल बिसाई पड़ेगा वह वैसा नहीं होगा जैसा कि धेर धर की बजन की कोई चौड़ी चीज पटक देने से हो सकता है। किसी मुकीसी चीज को बँसाने में जैसी बफमता मिल सकती है वैसी अन्य किसी मोची चीज को बँसाने में नहीं मिल सकती। उत्तम प्रभावान्विति मुकीसी से भी मुकीसी चीज की तरह हृदय को आबिद्ध कर देती है। इसीलिए कुशल समीक्षक समझने की चेष्टा करता है कि किस कहानी में कितनी चुभन (Punch) है। यह चुभन वा संवेदन प्रभावान्विति के माध्यम से प्रतिफलित होती है। इसलिए कहानी का परम साध्य उत्तम समष्टिप्रभाव प्रबन्ध प्रभावान्विति ही होती है।

इस प्रकार कहानी के पायबन्ध-विधायक उत्तम दोनों चुभनों का निरूपण हो जाने पर आकांक्षा रह जाती है, एक ऐसी व्यापक परिघाटा

बनाने की जिसके मीनर कहानी की सपूर्ण विवेकपूर्ण बरी मिलें ।
 इस विषय में पहली बात तो यह है कि कहानी गद्य-रचना का एक नैसर्ग
 विशेष है । सामान्यतः इस लक्ष्यप्रसारणमी
 परिभाषा होगा चाहिए । उसमें मूलतः किसी एक ही प्रति-
 पाद्य का प्रतिनिधित्व हो सकता है । विकास
 क्रम के अनुसार प्रमाण की एक उत्कृष्टोत्पुष्टी समष्टि उत्पन्न होगी
 चाहिए । प्रमाणात्मिकता से अनुप्राणित होकर संवेदनशीलता का रूप
 स्फुटित होता चाहिए । यदि इन सब बातों का एक साथ विचार किया
 जाय तो कहा जा सकता है कि कहानी गद्य रचना का कथा-संपृक्त वह
 स्वरूप है जिसमें सामान्यतः लक्ष्य विस्तार के साथ किसी एक ही विषय
 का एक ही रूप का उत्कृष्ट संवेदन इस प्रकार किया गया हो कि वह अपने
 में संपूर्ण हो और उसके विभिन्न तत्त्व एकीभूत होकर प्रमाणात्मिकता में
 पूर्ण योग बैठे हों ।

कहानी-

उपन्यास-

नाटक-

एकाकी

कहानी और उपन्यास की विभक्ता एक उदाहरण के द्वारा
 धरमता से समझाई जा सकती है। यदि बंद बन्धन के भीतर से
 एक छोटे से छिद्र के सहारे, बाहर के किसी
 कहानी और उपबन्ध में देखा जाय तो मुसार्बों का एक
 उपन्यास राजा अपनी हरी-हरी शाल पर मस्ती से
 मूमता दिखाई पड़ेगा। यह अपनी उत्कृ-
 स्तता और कोमल रमणीयता में अपूर्व क्षिता मिलेगा। इसके
 उपरांत यदि बर्बादा पुण क्षीम दिया जाय तो विद्यास उपबन्ध
 का मनोहर रूप सामने आन पड़ेगा। अथर्व ही उस उपबन्ध के
 व्यापक प्रसार में यह मुसार्ब भी एक तरह दिखाई पड़ेगा। इस
 उदाहरण में छिद्र के नाम्यम से दिखाई पड़ेबासा मुसार्ब कहानी
 के रूप में कहा जायगा और उपबन्ध की विषय सामूहिकता उपन्यास
 की प्रतिनिधि मानी जायगी। दोनों ही अपने दो रूपों में सबका
 पूर्ण हैं। इस उदाहरण के आधार पर यह धारणा ठठार
 जा सकती है कि उसमें सादृश्य तो कुछ उसी प्रकार का है जैसे
 लंड-काम्य और महाकाम्य का संबंध अपना जीवन के एक घंघ
 के साथ संपूर्ण साधु का विस्तार, पर इस प्रकार की घंघा के लिए
 वस्तुतः कोई स्थान नहीं है। लंड जीवन को देख लेने के बाद
 धारण की बात जानने की धाकासा पठती है। लंडकाम्य के किसी

क्यापक को जान लेने पर भी उसके मायक के घोर अधिक व्यापक स्वरूप को समझने की इच्छा होती है। पर उद्यहरण का पुनः अपन में सर्वथा पूरा था। फिर मैं से जब उसका दर्शन हुए, तब उसके स्वरूप-बोध सीधे घोर उत्कृष्टता को समझने में घोर किसी प्रकार की बाकांशा नहीं रह गई थी। इसलिये वह अपने में सर्वथा पूरा घोर स्पष्ट है। इस बात की बाकांशा नहीं थी कि वह व्यापक उपवन के वृक्ष के बीच में रहे तभी उसकी गुल्बता घोर उत्कृष्टता ठीक से समझी जा सकती है। इसी तरह कहानी में जो विषय का एकत्र मिलता है वह अपने में ऐसी समझता भरे रहता है कि एक विशेष प्रकार का संवेदन उत्पन्न करने में सक्षम होता है घोर उसके पूर्वपर को जानने का कोई साधन उपलब्ध नहीं होता।

जब इस प्रसंग में उपवन के सामूहिक वृक्ष का विचार करने से यह प्रकट होया कि उसमें हमारे चित्त को आह्लाषित करनेवाले हमारी दृष्टि को उसझानेवाले अर्थ देनेक रमणीय घोर आकर्षक स्वरा घोर विषय हो सकते हैं। किसी घोर सुमनों से लगी हुई मासपी की सत्ता झूमती विस्तार पड़ेगी किसी घोर मित्त-मिच्छ रंग घोर आकार प्रकार वाले गुसहाउरी के गमले सजाए मिलेंगे किसी घोर अलाप्य की हरीतिमा में बिहार करनेवाले कमल घोर इस सामने धाएँगे। इस प्रकार उस उपवन क बिस्तार में विषय की विविधता भरी मिलेगी। जब यदि अस्फुर घौली से वृक्ष होकर वस्तुस्थिति का सदा विचार किया जाय तो बोझ में कहा जा सकता है कि कहानी में जो विषय का एकत्र प्रतिपाद्य होता है, उससे सर्वथा पूरा उपन्यास में विषय का वैविध्य सत्य होता है। एक म केंद्र का एक ही बिन्दु रहता है, घोर दूसरे में अनेकानेक घालोक पूरा किसी कम विवेक से सजे-सजाए सामने धाएँगे।

अधर सर्वा गुलेपी की अति प्रसिद्ध कहानी 'उठने करा बा' में यदि हम देखें तो अहनाधि की सदा अमुरण-भावना संत में

ऐसी उत्सवगमयी विद्याई पढ़ती है कि मनुष्य में देवत्व का विकास बेशक कर हम गदगद् हो उठते हैं। सारी कहानी में केवल यही एक मूल बात है, जिसमें पूर्व के सारे प्रसार प्रभाव समाकर ध्वस्त हो उठे हैं। महासाहिब की अनुसंग-वृत्ति का मुलाव ऐसा खिला दिखाई पड़ता है कि पाठक की दृष्टि उसी पर जमी रह जाती है। वह उसी की सुंदरता में डूब जाता है। सार्विक प्रेम की प्रेरकता से उद्भूत और महासाहिब के चरित्र सौंदर्य से संवर्धित होकर जो उत्सर्ग की महिमा अंत में मुखरित हुई है वही कहानी का मबार्थ प्रतिपाद्य और मूलभाव है।

इसी क्रम से बसकर यदि हम प्रेमचंद के 'बोदान' में देखें तो बात कुछ दूसरी ही दिखाई पड़ेगी। वहाँ एक ओर हम कुछ समय के लिए नगर में रहकर नागरिकों की सामान्य गतिविधि और क्रिया-कलापों को देखते हैं। मित्र-भिन्न प्रकार की उनकी मनोवृत्तियों का अध्ययन करते हैं। परिणाम रूप में किसी पात्र की कठिन समस्याओं का हमारे ऊपर प्रभाव पड़ता है। किसी का चरित्र हमें प्रिय मानूम पड़ता है। और किसी के वार्त्तनिक भावार्थ से हमारी बुद्धि मचित हो उठती है। इस प्रकार एक ही क्षेत्र के अनेक विषयों को सत्य बनाये हम बहुत दूर तक प्रभाव बटोरते बने जाते हैं। इसके उपरांत यदि कहीं ग्रामीण बातावरण में पहुँच जाते हैं तो किसी अंगरी मड़की की निःस्वार्थ सेवा विस्मय-विभूषण कर देती है। दूसरी ओर अनिया के कर्त्तव्य स्वभाव के भीतर नोयल वास्तव्य को पाकर उसकी ओर आश्चर्य से देखने लगते हैं। अपने जीवन की नित्य नई कठिनाइयों से मुक्त करते हुए कुटुंब-वत्सल धर्म और समाजसेवी होरी को जब हम देखते हैं तो उसके लिए हमारे भीतर तीव्र समुत्सुकता का भाव उत्पन्न होता है। साम ही ग्रामीण बातावरण की समीक्षता भी हमें अपनी ओर खींच लेती है।

इस प्रकार 'बोदान' में एक ही पाठक पर अनेक विषयों का अनेक रूप में प्रभाव पड़ता दिखाई पड़ता है और समूचे उपन्यास में

विषय का गानात्व ही उसके प्यान देने की वस्तु बन जाती है। एक ही रचना में अनेक प्रकार के रंगीन विभिन्न विविध भावनाएँ और अनेकमुपी कृतियाँ अपना-अपना काम करती हुई दिखाई पड़ती हैं। यही विषय का वैविध्य और जीवन की अनेकपद्यता प्राधिकारिक कला के साथ विभिन्न अन्तर्गत और प्रासंगिक कथाएँ और चरित्र के विकासक्रम का सदा प्रसार उपन्वास का लक्ष्य होता है। इसकी तुलना में कहानी बहुत छोटी और परिमित दायरे की रचना मान्य पड़ती है। उसमें न तो कथा का स्वच्छंद प्रसार चल सकता है न चरित्र के उतार चढ़ाव का पूरा स्वीर मिल सकता है न वातावरण के विविध पक्षों का ही स्वल्प सामने लाया जा सकता है और न देशकाल का व्यापक विवरण ही उपस्थित होता है। अपने पक्ष की व्यापकता के कारण उपन्वास का साहित्यिक रचनाओं में बड़ा ही महत्त्वपूर्ण स्थान होता है। 'मौदान' की तरह यदि कोई उपन्वास सामने आया तो किसी बेस आति और संस्कृति का पूरा विवरणमय परिचय मिल जा सकता है। इस प्रकार की कोई बात किसी एक कहानी में संभव नहीं हो सकती।

बोले में यदि कहानी और उपन्वास का तारतम्य निरूपित करना ही अभीष्ट हो तो कहा जा सकता है कि कहानी यदि अपने एकमुख समष्टि-अभाव के माध्यम से हमारे चित्त को पूर्णतया अंकुश और आशोभित करके हमें अनुमान कल्पना और विज्ञान के सम्मुख द्वार पर ला जाता है तो उपन्वास जीवन के विविध क्षेत्रों की अंदरी बेकर धारे रूखों और वस्तुस्थितियों से परिचित कराकर हमारे भीतर एक पुनराविभाजक संतुष्टि उत्पन्न कर देता है। याने जिसका क्या होगा इसके विषय में किसी प्रकार की विज्ञान अथवा बुद्धिमान पाठक के मन में नहीं रह जाता। हम अन्धी तरह जान लेते हैं कि कौन कहाँ से जाता और कहाँ पहुँचा है, अथवा किसी चढ़ाव का उतार क्या है? अथवा किसी समस्या का समाधान क्या हो सकता है? किसी प्रश्न का उत्तर कैसा बन पड़ा है? सारांश यह है कि

उपन्यासकार अपने पाठकसे किसी प्रकार की भाकांसा-भाषना नहीं करता।
 जो कुछ ज्ञातम्य है उसे वह स्वयं इस प्रकार उपस्थित कर देता है
 कि पाठक को अपनी धोर से कल्पना धीरे अनुमान करने को कुछ बचता
 ही नहीं इसके ठीक विरुद्ध कहानीकार अपनी धोर से तो देने को देता
 कम है पर पाठक से प्राप्त करना चाहता है बहुत अधिक। वह बोझी
 दूर पाठकों के साथ दौड़कर चलता है, धीरे दौड़ की गति के तीव्रतम
 होते ही अपने स्वयं रुक जाता है धीरे पाठक दौड़ता महीम तक जाता
 जाता है। उपन्यास में पाठक का ध्यान पीछे की धोर जाता है, वह पीछे
 मुड़कर देख लेता है कि कहीं क्या-क्या धोर कीसा देखा जा चुका है धीरे
 वह समझ लेता है कि उसके सामने सम्पूर्ण ज्ञातम्य स्पष्ट है। वह जो
 कुछ चाहता या सब या गया है। उसके अस्तित्व में सब कुछ उपस्थित
 रहता है। कहानीकार केसाय स्थिति निम्न होती है, वह अपने पाठक की
 बुद्धि को कहानी के भीतर से उच्छाल देता है—स्वच्छन्द कुंसे दीवान में। वह
 कथा की यथार्थ वस्तु भूमि में से उभरकर उसे अनुमान की हवा में छोड़
 देता है। इस प्रकार भी कहानी धीरे उपन्यास में तात्त्विक अंतर है।
 वह प्राय देखा गया है कि जिन लोगों ने कहानियाँ लिखी हैं,
 उन्होंने उपन्यास भी लिखे हैं। इस तरह जिन लोगों ने उपन्यास
 लिखे हैं, उन लोगों ने कहानियाँ भी लिखी हैं। प्रेमचंद ने यदि
 चीन-भार की कहानियाँ लिखीं तो एक दर्जन उपन्यास भी लिखे हैं।
 'प्रसाद' जी ने कहानियाँ भी लिखीं धीरे उपन्यास भी। इसी तरह
 मुन्शापनसाल ने कहानियाँ भी लिखी हैं धीरे उपन्यास भी। इस
 प्रकार के लेखकों में एक बात का विचार स्पष्ट रूप से ही हो ही सकता
 है धीरे उसे धनस्य करना चाहिए कि मूलतः इसमें कौन कहानी-
 लेखक है धीरे कौन उपन्यास-लेखक यदि लेखक की प्रवृत्ति कथानक
 को बढ़ा करने की धोर दिखाई पड़ती हो धनसा कहानी के भीतर अन्य
 कोई कहानी नरने की भाकांसा दिखाई पड़ती हो धनसा देशकाल की
 कथा को ध्यापक भूमि पर उपस्थित करने की धोर उसकी धनिकधि

दिखाई पड़े तो समझना चाहिए कि उसकी मौलिक वृत्ति अथवा अन्धन उपन्यास की ओर है। उदाहरण के रूप में यह विवेचता देखनी हो तो 'अज्ञेय' की कहानियों में देखी जा सकती है। कथानक के भीतर कथानक रखने की प्रवृत्ति उनमें दिखाई पड़ती है। यह 'अज्ञेय' की ही प्रवृत्ति से स्पष्ट है। इस प्रकार एक कथानक की प्रसारणमि पर दूसरे कथानक की प्रवृत्ति का यह सूचित करती है कि कथानक की व्यापकता की ओर विचार का विवेक धारण है। यह स्थिति उनको मुसल उपन्यासकार घोषित करती है।

कथानक के साथ-साथ यही बात और लेखों में भी नहीं जा सकती है। जिस लेखक में अरिज के उत्तर-बहाव विधानों की ओर बढ़ने की बात दिखाई पड़े अथवा एक ही पात्र की चार-संबंधी विविध संकिणियों की ओर उलका ध्यान यदि धारण होता मिले अथवा विद्यमान के सर्वत्र न अधिक सममता के साथ यह विस्तृत विवरण देता दिखाई पड़ता हो तो समझना चाहिए कि उसकी कहानी रचना कुछ छिटाई ही है। यह स्थिति उपन्यास में तो ठीक होती पर कहानी में नहीं। इसीलिए कहा जा सकता है कि ऐसे लेखक को चाहिए कि उपन्यास की अथवा विषय बनाए। कहानी में तो यह पाठ्यक होना कि अथ-अथ से अनाकर बात को ऐसे अथ से उपस्थित किया जाय कि अथ कुछ एक ही स्वर पर केन्द्रित होना मान्य पड़े। यदि किसी लेखक से बात को बहुत ठोस बनाकर कहने की प्रवृत्ति मिलती है अथवा उनमें कथानक कम और अरिज का उगाड़ अधिक दिखाई पड़े अथवा अनुमान और अथना अथने की प्रवृत्ति अधिक दिखाई दे तो समझना चाहिए कि उसमें कहानी मित्यने की प्रवृत्ति है। अथर से अथर संवादक और सुचारक भी उसकी रचना में से कुछ विकास करने न असमय हो जाय—इतना साभिप्राय कहा हुआ विषय का एकत्र कहानी में होना चाहिए। ऐसी बात उपन्यास में धारणक नहीं मानी जा सकती। वहाँ तो विचार-परिष्कार ही मूल अथ है और विचार-विवरण को अथर ही कुछ अथ-दीट

कर छोटा क्रिया वा चक्रवा है। इस प्रकार जो वस्तु काट-छाँट कर छोटी ही जाने पर भी अपन विषय की रंगरिणी को प्रयुक्त बनाए रखें उसे उपमास कहना चाहिए, बरानी नहीं।¹

नाटक के साथ यदि कहानी की तुलना की जाय तो वा बाते स्पष्ट दिखाई पड़ेगी—(१) विषय के एकत्व के विचार से कहानी और नाटक की प्रकृति भिन्न है।

कहानी और नाटक

(२) प्रभावाम्बिति के आधार पर दोनों रचनाएँ एक वर्ग की हैं। इन प्रकार एक बात

में समानता और दूसरे में भिन्नता मिलेगी। किसी एक नाटक और किसी एक कहानी की प्रकृतियों का यदि विभक्तपक्षात्मक ढंग से विचार किया जाय तो यह बात स्पष्ट हो जायगी।

प्रसार के 'अन्वयुक्त' नाटक में विषय का बीबिध्य तो स्पष्ट ही दिखाई पड़ता है। कहीं राजदरवार कहीं उद्यान-श्रीङ्ग एक घोर युद्धकाल का वातावरण तो दूसरी घोर युद्ध का विषय वर्णन एक घोर प्रेम का मधुर संसार तो दूसरी घोर नीति-विषयक कठोर-भ्योग कहीं बरिष्ठ विषयक बारीकियों की ध्यानहीन तो कहीं क्रियाओं के बेम का विषय दिखाई पड़ता है। सनी वृत्त अपने-अपने ढंग से हमारे चित्त को या तो उद्विग्न करते हैं या तो प्रसन्न। सारांस कहने का यह है कि समूचे नाटक में अनेकानेक विषय ऐसे हैं जो अपने में महत्त्वपूर्ण और पारुष्य हैं। अन्वय ही से सब एक व्यापक और एकत्वविधायक पात्र में घाकर केन्द्रित होते हैं और प्रभावाम्बिति उत्पन्न करते हैं। यह व्यापक और केन्द्रिय भाव एक पात्र के जीवन का चरम साध्य है उसके जीवन का समय और उसके सम्पूर्ण कृतित्व का परिणाम है। उस पात्र की भवितविधि के द्वारा जिस सामूहिक भावबद्धा की घोर नाटक ने सब तरफों की मिसा पुष्पाकर से आया गया है, वही नाटक में प्राप्त होनेवाली प्रभावाम्बिति का मन्त्रण मार्ग है।

1 Derry Pala : *The Short Story* pp 45-46

प्रथम बार जो चित्रपुत्र हमारे सामने आता है, वह अपने प्रसिद्ध मित्र के ऊपर तने हुए जाल के प्रतिहार में सन्नद्ध दिखाई पड़ता है। हम उसके इस निर्भीक क्रियाक्षेप से अभिभूत हो उठते हैं। भाग्य चलकर वह संवकारपूर्ण कारागृह में पड़े हुए अपने मुँह को जिस क्रियावत नीरता से छुड़ाता है, उससे हम आश्चर्यचकित हो जाते हैं। फिर तो वही चित्रपुत्र निरंतर एक के बाद दूसरे ऐसे स्वरूपों और स्थितियों में हमारे सामने आता-जाता है कि हमारे चित्त पर पड़ी हुई प्रभाव की शायों को निरंतर अपने रंग से गहरा करता जाता है। नाटक के अंत में आकर जिस समय हम उसे राज्य-सिंहासन पर धारक होते देखते हैं, तो अपने पूर्व के सपूर्व प्रभाव-परिणामों से भाविष्ट होकर पूर्णतया एक विशेष प्रकार की भावदशा का अनुभव करते हैं। वही नाटक की रस-निष्पत्ति है और इसी को हम प्रभावान्विति कह सकते हैं।

इसी प्रकार की प्रभावान्विति कहानी में भी दिखाई पड़ती है प्रसाद की 'गुला' अथवा 'पुरस्कार' शीर्षक कहानी में अथवा बुधेरी की कहानी 'उसने कहा था' में अथवा प्रेमचंद की 'सुजान भयत' शीर्षक कहानी में इसका स्वल्प अमिक अंग से अच्छी तरह दिखाया जा सकता है।

अंतिम कहानी 'सुजान बन्ध' में आरंभ से ही दिखाई पड़ता है कि सुजान के बेटे में सोना बरसता है—यह उसके अत्यधिक परिश्रम और साधना का परिणाम है। यहाँ पर हम उसके अध्यवसाय के फलन हो जाते हैं। फिर जब बड़े सारा कारबार अपने पुत्र भोला पर छोड़कर तीब्र यात्रा का विचार करने लगता है तब हम उसकी विज्ञान-मुक्तन धार्मिक भावना पर मुग्ध हो जाते हैं। जिस समय उसका पुत्र भोला मित्रों को आम बने में आनाकानी करता है तो सुजान को अपने घर में ही पराजित होते देखकर सहाय्यमुक्ति से हम भर उठते हैं और हर्षण करने लगते हैं कि क्या अच्छा होता कि सुजान पुत्र अपने छोटे हुए अधिकार को प्राप्त करता और इस बुद्धि भोला को अपने आदरणीय पिता के सामने झुकना

पड़ता । धाने चलकर जो धान मयत के हृदय में पैदा होती है और जिसके प्रभाव में वह भूतों की तरह पुन परिभ्रम में लुटा दिखाई पड़ता है और जिस धान के कारण मोला एक बार पुन नगध्व-सा प्रभावित होता है, उसके विष्म-प्रसार को देखकर हम विस्मय-विभुग्ण हो जाते हैं । यह सुगन्धक पुष्प के सब प्रभावों को धरने में समाहित किए रहता है । सारी कहानी में एक पात्र मयत ही हमारा केंद्रबिन्दु बना रहता है, उसमें धन्य कोई विषय ऐसा नहीं है जो हृकारे बिल को इतित कर सके । धन्य पात्र—मोला धादि तो केवल उसकी धान पर धान बढ़ाने के निमित्त ही प्रयुक्त हुए हैं उनकी कोई स्वतंत्र सत्ता स्वीकार नहीं की जा सकती । इस तरह वहाँ एक और प्रभावों की समष्टि सिद्ध दिखाई पड़ती है, वहीं दूसरी ओर विषय की एकनिष्ठता भी पूर्ण हो उठी है ।

अब यदि धातुनिक एकात्मियों और कहानी की धारतनिक विधेय

धाराओं की ओर ध्यान दिया जाय तो ऐसा मासूम पड़ता है कि वस्त्र-

कहानी और

एकांकी

रचना के इन दोनों प्रकारों में बहुत धार्मिक

साम्य है । दोनों का लक्ष्य एक ही है—विषय

का एकत्व और समष्टिप्रभाव । कहानी की

उन्हें एकांकी में भी किसी एक विषय को मध्य

बनाकर बात इस क्रम से कही जाती है कि अंत म उसी मुख्य विषय का

प्रभाव पाठक के ऊपर छा डाला है । ऐसा मासूम पड़ता है कि सारी

रचना में प्रतिपादित होनेवाला प्रतिपाद्य मुख्यतया वही एक है । यह प्रति

पाद्य समाज का कोई धर्म और पद्धति हो सकता है, अथवा कोई तन्मय और

विज्ञात पर ही ध्यान किया जा सकता है । इस प्रकार एकोन्मुखता एकांकी

का मुख्य लक्ष्य है । इस धारा पर वह प्रकृतया कहानी के अति समीप है ।

अब वही धर्म मासूम की 'रीढ़ की हड्डी' अथवा सर्वज्ञता

का मुख्य लक्ष्य है । इस धारा पर वह प्रकृतया कहानी के अति समीप है ।

'मरक' की सूची वाली' अथवा रामकुमार वर्मा की 'मर्यादा की बेदी

पर' रचना को लेकर उसका विक्षेपण किया था चतुःशत है। पहले में मेयक ने एक ही बात पर चोट की है। धात्र की सामाजिक वस्तु-स्थिति के भीतर विवाह के प्रसंग में प्रायः ऐसे ही मोग दिखाई पड़ते हैं जो मूमठ एकांगी होते हैं। केवल लड़की की लुबियों की मापतोष करते हैं और जहाँ में विविध प्रकार की जीवन-सबबी संपूर्णताएँ झूठे हैं। लड़के की यथाव वस्तुस्थिति की घोर कोई धात्र चढाता ही नहीं। यह भी कोई देखने की चेष्टा नहीं करता कि उसमें भी कोई मुम है कि नहीं। 'संकर' की तरह धात्र का समाज भी रीढ़ की हड्डी में बिहीन है। पर धात्र की ऊर्ध्वस्थित नारी कटिबद्ध विचारों पड़ती है— बदना लेने के लिए। धन तक जैसे वह परखी जाती वी जैसे ही वह धात्र धर पल की भी जीवन-नक़्काल करेगी और तक धर को मा तो स्वीकार करेगी मा धस्वीकार। हूँ-ना' का निर्णय उसी पर धनबलित रह्यो। सभी बपता पुत्र होगा। सय एकांकी में 'जमा' का मही एक मात्र लक्ष्य मामूम पड़ता है। बड़ी सब परिस्थितियाँ पात्र धीर क्रिया कलाप उसी तारय की घोर ऐकांतिक रूप से सम्मुच मिलते हैं।

दूसरे एकांकी में भारतीय कौटुंबिक जीवन की इच्छा के प्रति बड़ा धात्र विचार पड़ता है। दादा भूतराज समस्त कुटुम की इच्छा पर पदाब्ध विचरते हैं। बस पर पूर्ण रूप से धपना प्रभुत्व बसाए उस महान् बट की धात्रि सके विचार पड़ते हैं जिसकी तभी-तभी धामियाँ उनके धांगन में एक बड़े धात्रे की धात्रि प्रच्छी को धाच्छाधित करती हुई, धयधित धोसलों को धपने बतों में धिपाए, बपों से सुधानों और धात्रियों का धामना किए जा रहा है। उनका सबसे धौटा लड़का लहसीसदार हो गया और जठकी बीबी भी ए० पास है। धात्र (स्थियों से उसका मेम न बीठने से धर का धात्र बाठाबरन सुग्ग हा चढता है और वह धमय्योम्य पर तत्पर हुई विचार पड़ती है। दादा भूतराज की ज्वार सहुगधौगता धीर धनुमबपूर्ण कार्य-बद्धता से एक म्येके से सठनेबाले बिरोध का धमन हो जाता है।

इस एकांकी में चरित्र धीरे कथानक के सामान्य यथार्थ रूप का ही ग्रहण मिलता है, जिसमें कड़िगत प्राचीनता के सौंदर्य से नूतन व्यक्तिवादी जीवन की शीप्ति सकती बिचार पड़ती है। इंड वादा धीरे छोटी बहू में चलता है। वादा के साक्षरत उदार गांगीय में छोटी बहू की व्यक्तिवादी रचनाता तिरोहित हो जाती है। छोटी बहू ने देखा कि वह धीरे उसका सौदृम्बिक जीवन उस पेड़ की डाली की तरह सूखा जा रहा है जो पेड़ में तो समी है पर सम्य समी धनयर्थों से बिम्बित होने के कारण दुर्बल धीरे असक्त होकर सूख जाती है। इस तरह समूचे एकांकी से एक जीवन-दर्शन की ऐसी गहनक मिलती है कि अन्धेता उसकी व्याप्ति की कल्पना धीरे अनुमान करता हुआ उसमें डूब जाता है। उसे धीरे कोई बात समझती ही नहीं। परिस्थितियों से प्रेरित होकर जो निष्कर्ष सामने आता है, वह अपने में सज्जा पून है स्पष्ट है धीरे एकत्रबिधामन है।

तीसरे एकांकी 'मर्यादा की बेटी' पर सेखक बड़े कीसल के साथ प्रमावाग्भित की मर्यादा स्थापित कर सका है। यों तो पौरवराज की बीरता की जाक बन जाती है, पर मस्सया की भैरबी ने जैसा पराक्रम-प्रयत्न किया है अपनी कठोर बाबी में धानी की जैसी अस्वना की है धीरे अंत में आकर जैसा आत्म-वसिदाप किया है उसमें पौरवराज का अतिमान से अरा दर्प डूब उठता है। योगवाही धीरे आनुपंगिक रूप में उसकी बीरता नसे ही अन्धी मामूम पड़े पर सिर्कंडर के साथ हुआ उसका समझौता भारतीय सम्मान के तिय एक मतका है। जो प्रति-वसियों में जो मुट होता है उसमें भारतीय मर्यादा की रक्षा भैरबी ही करती है। इस तरह सारी कहानी में पौरवराज की बीरता से संबन्धित मस्सया की भैरबी का चारिभ्य ही बिद्येय रूप से सज्जा मामूम पड़ता है। उसी के उत्सर्ग धीरे अस्मिदान में पाठक का अरुत चित्त रस पाता है।

इस तरह विभिन्न एकांकियों से विषय की एकता धीरे एकी

श्रुतता ही बोधित हो रही है और अंत में प्रभावों की शक्ति का एक केंद्र बन उठता है। रचना-विभाग की यही वस्तुस्थिति कहानी की एकांकियों के साथ सा बड़ा करती है। सबसे ही दोनों की रचनाशीली और उच्च स्व भिन्न-भिन्न है एक में कथात्मक संगठन है और दूसरे में अभिनेयता का धर्म मुख्य है। एक कहकर-पढ़कर हृदयंगम की जा सकती है, और दूसरे में प्रत्यक्ष क्रियाकलापों का अभिनयपूर्ण स्वरूप मिलता है। इस रूप में प्रत्यक्ष ही दोनों रचना-प्रकार आपस में पूरक हैं पर मूलतः दोनों में प्रकृतियुक्त अभेदकता मान्य पड़ती है। अंत में यह कहा जा सकता है कि कहानी और उपन्यास, और कहानी और नाटक में तो भेद है, पर एकांकी में आकर कहानी एकांकी का कथात्मक रूप ही प्राप्त होती है। इस आधार पर यदि हम दोनों की रचना प्रणाली की विवेचना की जाए तो विभिन्न तन्त्रों और उनके संबोजन के विचार से भी दोनों में समानता है—ऐसा विचार जा सकता है।



विषय-संग्रह

कहानी के लिए कैसे और कहाँ से विषय मिल सकते हैं और किस प्रकार रचनात्मक प्रेरणा स्फुरित हो सकती है इस पर भिन्न-भिन्न विद्वानों ने अनेकानेक सुझाव दिए हैं। अपनी समाचार पत्र और अन्य स्रोतों की पड़दियों का निरूपण भी कुछ लोगों ने किया है। आगबौल करने पर मामूम पड़ेगा कि ऐसे भी कृती हैं जिन्हें समाचार-पत्रों के आकर्षक उत्तमक कुतूहल या भावना बसानेवाले समाचार-दीपकों से ही बहुत मर्मस्पर्शी और उत्तेजनापूरा प्रेरणाएँ मिल जाती हैं। उनका कहना है कि समाचार-स्रोतों से कोई भी सुझाव संकेत और स्फूर्ति मिल जा सकती है यद्यपि उनसे संबंध समाचार-पत्रों से हो सकते हैं जिनके आचरण में संजीवता बसाने की क्षमता भी जा सकती है।

इसी प्रकार कुछ लोगों की धारणा है कि दैनिक जीवन और जगत् में पशुविक कहानियों के लिए विषय विद्यरे पड़े रहते हैं वेदा घाँस घोंसफर देखने भर की जरूरत है यद्यपि कुछ लघु कर्म में उन्हें निकर हृदय में किसी भावना को बगाने की पक्ति भर होनी चाहिए। इस आधार पर दैनिक जीवन कहानी के लिए विषय का आकर हमारा सामान्य दैनिक जीवन है। नित्य के जीवन में कहीं कोई ऐसा निम्न या परिचित सामने आ जाता है, जिसकी मुद्रावृत्ति

धीरे भाव-मुद्रा परिचित पर अपनी एक छाप डालती है। कहानी के लिये इतना ही सूत्र पर्याप्त समझना चाहिए। धबका सड़क पर बसे चाते हुए कोई घटना ऐसी सामने आ सकती है, जिससे मन में किसी विशेष भावना का समुद्र्य हो सकता है। धबका किसी विशेष प्रकार के वातावरण और प्राकृतिक रसनीयता में ही किसी प्रकार की सजीवता देखती मिल सकती है। उसी को कहानी की मूल मिति बना लिया जा सकता है।

इसी रूप पर विचार करने से ऐसा माधुम पड़ेगा कि इतिहास के व्यापक प्रसार में अनंत कहानियों के लिए मसाला पड़ा है। बिन्दू अतीत में रमने का अग्र्यास है धबका जो साव इतिहास स्मृति धबका कल्पना के बस से गठ बाठों की साकार बना ले सकते हैं, उनके लिए इतिहास के पत्रे-पत्रों में कहानी के विषय चमकते दिखाई पड़ेंगे। मिश्र-मिश्र स्वभाव-प्रकृति के आचार-विचार के बनावट और गढ़न के सँके चौड़े पतले-सुबले सुंदर-कुरूप सभी प्रकार के मनुष्य वहाँ मिल जावेंगे। चरित्र के विचार से भी कायर और, कुलीन-अकुलीन सहास और हीन खेरी और पवास, कड़िवाही और स्वाच्छंद प्रकृति के मनुष्य विभिन्न प्रसंगों में मिलेंगे। सामान्यतः वे सभी किसी कहानी के नायक धबका प्रतिनायक हो सकते हैं। इतिहासों में विभिन्न प्रकार के वातावरण परिस्थितियाँ और प्राकृतिक विवरण भी निरंतर मिलते ही रहते हैं। इनके योग से बड़ी सरस कल्पनाएँ, सजीव चित्र-विधान और रंगीन भावनाएँ सफसता से सजाई जा सकती हैं। कहानीकारों के लिए इतिहास का विषय बड़ा ही मनोरंजक प्रभावित होता है। इतिहास की अनुमानचम्य कल्पना नायाप्रकार की संवेदनशीलता को बदाले में समर्थ हो सकती है। बहुत से मनुष्यों के घंत-करण में अतीत का प्रेम तरह-तरह से रस उत्पन्न करता रहता है। 'प्रधान की 'सातबटी' 'मुंडा' इत्यादि कहानियाँ इस विषय में बलिष्ठ प्रमाण हैं।

साहित्य स्वयं में एक ऐसा विधास महाजन है वहीं मान्य प्रकार के जीव-अंगुणों और व्युत्पत्तियों के सख्त प्रमेयानेक विषय और धीरे धीरे गूढ की बातें मिमा करता है। किसी महाकाव्य नाटक साहित्य और उपन्यास के भीतर अनेक ऐसी मनोवधाएँ, चरित्र की प्रकृति-नर-नागी घासक-बूढ़ मिल सकते हैं जो कहानीकार को एगो प्ररमा प्रदान करें कि वह उलट-पलट कर उन्हीं के इतिवृत्त और स्वरूप से उठारा सेकर नूतन थोड़-थोड़ की बातें बना कर दे। किसी पात्र के चरित्र की हम बातें यदि उपन्यास में कहीं गई तो व्याख्या की का रूप बजानीवार गढ़ ससकना है। यदि किसी नाटक में चार प्रभावशाली चरित्रों मिल गई तो फिर मरसता से कोई भी सख्त पाँचवीं पटना का रूप उठाने कर द सकता है। यदि किसी महाकाव्य में किसी को पात्रों के मनोभाव का मध्य चित्रण मिल गया तो फिर उग मंत्री में बलिदान अथवा उन्मत्त का कोमल कुनुम सिमाना मरस हो जाता है। हम तर्क को भी साहित्य कहानीकार को विषय की चतना प्रदान करने के लिए प्रकृतया अथेण्ड हो सकता है।

हम विषय में अथेण्ड इतिवृत्तों और वर्गीकरणों से एक स्वर से एक मुद्राय और दिया है। उनका कहना है कि कहानी रचना की आकांक्षा करणवासियों को अथम पाठ एक नाटकबुद्ध अवश्य रखनी चाहिए। मित्य के जीवत म आ कुछ आदर्शक प्रभविष्यु, गूढव धीरे बुद्ध्य भटनाएँ और दुश्य धामने भाएँ उमरा विवरण उग मोन्दुद्ध म मुरदित्य कर मेना चाहिए। प्रकृत फिरसे किसी प्रजा के मति मुद्रा अथवा बुद्ध्य धामने विवादे पढ़ें और यदि इत्या का ध्यान उमरी धीरे कुछ आकर्मिण हो जाय तो यह धममता चाहिए कि उमक भीतर कुछ स्मरण रखने कुछ सोचने की बात अवश्य है। एगी तर्क किसी मनारम रचना

१. प्रेमचंद : कुछ विचार, पृ० ८०-८१।

पर पहुँच कर, वहाँ के वातावरण से यदि चित्त प्रभावित हो जाय तो उसका भी शारीरिक चित्र नोटबुक में रख लेना चाहिए। यदि कहीं कोई सुन्दर प्रकृति दृश्य पर-गारी दिखाई पड़े तो उसकी मुद्रा और बनावट उसका हाव-भाव और वेश-विभूषण बहुत ध्यान से देखा-समझ जाय। यदि ऐसे विवरण नोट कर लिए पार हैं तो फिर कहीं भी तिसरे समय भौतिक प्रकार से उसका उपयोग किया जा सकता है। इस प्रकार की नोटबुक रचनाक्रिया में बहुत उपयोगी सिद्ध होती—ऐसा सभी मर्मज्ञ स्वीकार करते हैं।

इस प्रकार यह नोटबुक अपने में ही बड़ा भारी संप्रदायक संसार हो जायगा। उसके भीतर विविध प्रकार के पदार्थ विषय भाव प्रकृति अनुभूति वृक्ष रूप धारण, बनावट, सज्जा वातावरण प्रकृति—सभी कुछ एकत्र मिल जायेंगे। रचनाकार ने उनको देखा और अनुभव किया है

१ (क) "बेकारों के लिए नोटबुक का रहना बहुत आवश्यक है। क्योंकि जब पत्रिकाओं के खेदक से कमी बंद हुए नहीं रहीं। पर इसकी जरूरत को वह स्वीकार करता है। कोई नई चीज कोई घबोली श्रावण, कोई सुन्दर दृश्य देखकर नोटबुक में दर्ज कर लेने से बड़ा काम निकलता है।" "परि खेदक चाहता है कि उसके द्वारा सजीव हों उसके वर्णन स्वभाविक हों तो उसे अनि-वार्यता इससे काम लेना पड़ेगा।" —वही पृ० ८२।

(ख) "The student would do well, therefore to keep a note-book in which he should jot down not only ideas on the theory of the short-story and impressions of stories which have especially interested him but more particularly all the material he has on hand for original work: names, traits, features, characters, places suitable for story setting, interesting situations, incidents, anecdotes illustrative of character, bits of speech that have dramatic force, ideas for the construction of ingenious plots, or ideas and impressions which will serve as central themes for stories."

—Albright, E. M.: *The short story* (1920) pp. 24-25

किसी प्रकार का संवेदन प्राप्त किया है अथवा किसी न किसी रूप में प्रभावित हुआ है, इसलिए जब कभी आवश्यकता होगी तब अपनी स्मरणशक्ति और अपनी रसमयी सहृदयता के बल पर वह उसे पुनः स्वीकृत कर लेगा और अपनी कहानी में यथामोक्ष स्थान पर उसकी नियोजना करके एक प्रकार की सजीवता उत्पन्न कर लेगा। इन सम्बन्धों और विवरणों को पढ़कर समय-समय पर लेखक की चेतना उत्थित और स्फुरित होगी और वह अपने संप्रीहीत विषय या व्यापार से अपने मन निर्माण में योग्य भेगा।

इस संबंध में मंडोवी के प्रतिष्ठित लेखक स्टेविन्सन साहब का आत्मानुभव और प्रयोग विशेष रूप से विचारणीय है¹। प्रायः ऐसा देखा गया है कि कभी कोई ऐसा व्यक्ति सामने आ उपादाय-रुमह के साथ प्रकाश होता है कि जिसके व्यक्तित्व की प्रभावशाली शक्ति हमारे ऊपर पड़ती है अथवा उसके चरित्र की कृति-विशेष हमें प्रभावित करती है। जब ऐसा कोई पात्र मिल जाता है तब उसी चरित्र और व्यक्तित्व के अनुभव यदि कल्पना एवं प्रतिभा के बल पर कुछ परिस्थितियों का

1 "There are so far as I know three ways, and three ways only of writing a story. You may take a plot and fit characters to it, or you may take a character and choose incidents and situations to develop it, or lastly you must bear with me while I try to make this clear"—(here he made a gesture with his hand as if he were trying to shape something and give it outline and form)—you may take a certain atmosphere and get actions and persons to realise it. I will give you an example—'The Merry Men'. There I began with the feeling of one of those islands on the West coast of Scotland and I gradually developed the story to express the sentiment with which that coast affected me."

—*Gratham Balfour's Life of Stevenson, ii pp 169*

निर्माण कर गिरा जा सके तो कहानी पूर्ण हो सकती है। इसी तरह यदि कोई ऐसी घटना या परिस्थिति गिरा जानी है जो हृदय को तरस बगाने में उलझा है या जो फिर उलझ भीतर किसी चरित्र की स्थापना कर देन में सहायता करती है। इन दोनों परिस्थितियों से भिन्न एक घटना ऐसी भी हो सकती है जो कि किसी स्थान की गौरवता बढ़वा किसी क्षणिक विरोध की स्तम्भता ही कुछ प्रभावकारी सिद्ध हो जाय। उक्त स्थिति में उसके भीतर क्षिया-कलाप से समुक्त किसी भाव की बरपना कहानी के स्वरूप को पुनरा प्रयाग करने में सफल हो सकती है।

कारण से विद्वत्-वदन की उक्त विधि प्रकार की पद्धतियों का संकेत दे देना के उपरान्त यह मानना है कि उक्त साधकता

का नाम भी छोटा दिया जाय। अतः पुनः

प्रतिभा का नाम महाभाष्य बीदन कीर जन्म सभी कुछ
 से कहानी के लिए यथाया जुटाने का काम

करनेवाली सबिलकीसजा कीर बरपना ता रचयिता में प्रथम ही होती चाहिए। अथवा बहु उक्त प्राण माध्यमों का वाय पाकर भी मूल ही रहे जायगा। इन विषयों को न जाने किजने योग पढ़त-सिखत घबरा सुनते-देखते हैं पर स्पष्ट है कि सभी के हृदय में कहानी रचना की योग्यता नहीं उन्नी जाती। अनुभूति से भरे हुए नहृदय ही न्य प्रकार की निर्माण-कृतियों को स्वरूप प्रदान कर सकते हैं। विभिन्न प्रकार की बातों को रस पढ़कर उन्नी के समाजांतर वृत्तों क्रियाओं भावनाओं की कल्पना करके य भागाभावा के प्रभावान्पादक इतिवृत्त पढ़ देते हैं। भूतल इस काय में जो पक्ति काय करती है उसे 'सहज प्रतिभा' ही मानना पड़ता। उक्त कलाप में पहले बताया है कुछे का परिणाम करी देन में उक्ति कर सकते।

विभिन्न प्रकार की कहानियों की रचनाओं का यदि विचार किया जाय तो एक सामान्य तथ्य पर पहुँचा जा सकता है। अतः

भी कहानियाँ निमित्त होती हैं उनके मूल में कोई कल्पना भावना
 अद्भुत विचार या तथ्य सम्बन्ध रहता है। उनी से उत्पन्न होकर
 कहानी की रचना क विषय चेतना प्रकटा
 प्ररणा यानी होती है। निर्माता के धारण
 म बिना समय यह प्ररणा मुक्ति हो उठती

प्रेरणा

है तो निर्माता का कार्य भी धारण म धारण हो जाता है।
 सेसत विन विषय का उत्पन्न संभव कहानी म उचित करता है।
 प्ररणा कहानी क मूल म जो भाव निर्यात करता है उसी को हम
 उम कहानी का बीज भाव स्वीकार करते हैं। मूल्य उनी से उत्पन्न
 प्ररणा प्ररणा करता और निर्यात है। ये बीज भाव प्ररणा के
 और प्ररणा रूप क हो सकते हैं। इन्ही की विभिन्न विधाओं को लेकर
 कहानी प्ररणा रन सगठित करती है और उम प्ररणा का रूप बनकर
 साकार हो उठता है। प्रेरणादायकों ने इनी को प्ररणा (मोटिव)
 प्ररणा कहानी का बीज भाव (जनिता धारणा) कहा है।

1. Plot starts most commonly with an idea originating
 in the impression made by a single incident in a
 situation experienced or invented in a certain mood
 or fancy or in a conception of character. The start
 ing point for the plot may be called the story theme
 the idea the plot germ or the motive. By the term
 motive is meant whatever in the material has served
 as the spur or stimulus to write the moving force of
 a story in short it is reason for existence.
 —*Alfred R. M.: The Short Story*; 190 pp 28

2. "A dramatic incident or situation; a telling scene; a
 phase of character; a bit of experience; an aspect
 of life; a moral problem—any one of these and
 innumerable other motives which may be added to
 the list may be made the nucleus of a thoroughly
 satisfactory story" *Hudson IV II: "An Introduction to
 the Study of Literature* 193-, pp 457

मुंबई प्रेमचंद ने इसकी स्पष्ट विवेचना तो नहीं की पर उन्होंने भी उच्च रूप में इसे स्वीकार किया ही है^१। इस विषय में बस्तुतः स्थिति यह उत्पन्न होती है कि रचनाकार के उत्तर चित्त पर जीवन और मरु के जिस विषय प्रथम व्यापार की छाप पड़ जाती है उससे उसे एक कृष्य की सर्वनात्मक प्रेरणा प्राप्त होती है और कहानी के कम-विभाग का वही प्रेरक प्रथम धीम-भाव कहलाता है। लेखक के भीतर इस प्रकार के भाव प्राप्त प्रतिबन्धन के रूप में आते हैं। जहाँ-कहाँ भी उसके दृष्टि पथ में कोई मार्मिकता को जमाड़नेवाली बात आ जाती है और उसके भीतर किसी विशेष प्रकार की संवेदना को प्रकट कर देती है वहीं उसकी कल्पना अपने रंग से उसी बात का नए प्रकार में सजाने लगती है। इस आधार पर सोचा जाय तो स्वीकार करना पड़ेगा कि कहानी में प्रथम साहित्य की किसी कृति में भी किसी प्रकार की अनुकृति^२ प्रथम कम का आरोप^३ ही अपारं सर्वना का काम होता है और इस सर्वना-व्यापार का मूल आधार कृतिकार के चित्त में जमी हुई वही मौलिक संवेदना होती है। परन्तु के इमिटेसन (Imitation) के विज्ञात में भी इसी आधार की बात माननी चाहिए।

१ "आज खेकड़ केवल छोड़ दोषक दरप देखकर कहानी लिखने नहीं बैठ जाता। उसका उद्देश्य स्पष्ट धीर्य नहीं है। वह तो छोड़ै किसी घेरणा चाहता है जिसमें धीर्य की पटक हो और इसके द्वारा वह पाठक की सुंदर भावनाओं को स्पष्ट कर सके।"

प्रेमचंद : 'कृष्ण विचार' १९३६, पृ० ३९।

२ अदस्तापुकृतिर्वाद्यम्।

३ कपारीपापुक्कम्।

वस्तु-विन्यास

विषय बचन प्रथमा उपवासन-संघ के विभिन्न क्षेत्रों का निरूपण
 है। जो कि पर प्रथमा कृतान्ति के प्री पाठ की प्रथमा का स्वरूप समझ
 लेने पर तब के सामने जो महत्व की बात
 उपस्थित हुआ है वह है वस्तु विषय प्रथमा
 कथानक का विवरण। सामान्यतः कथानक और
 कथानक में तार्किक संतर्पण है। यही कथानक
 में केवल सासनानुसार बात एक घंटे से दूसरे घंटे तक गतिशील
 दृष्टिकोण के ही में ही की जाती है और उच्च धीरे की कड़ियों को
 स्पष्ट कर के बुद्धिपूर्वक धारणा के। यही यही प्रथमा के भीतर
 कुछ दृष्टिकोण धारणा के साथ ही प्रथमा हुआ है। यद्यपि किसी
 दृष्टिकोण प्रथमा कथा का ऐसे प्रथमा में गजाल पठा है जिससे एकसम्मता
 द्वारा समग्र प्रथमा-साथ एक ऐसा स्वरूप प्राप्त कर के विभिन्न कथानक
 के भीतर साथ ही प्रथमा-विवरण के कुछ प्रथमा संबंध कार्य और प्रथमा
 साथ ही विधि में सहायता प्राप्त प्राप्त कर के प्रथमा कारण—सब
 स्थिति में प्राप्त है। यही विधि का प्रथमा प्रथमा-साथ प्राप्त प्राप्त पर
 सभी यह महत्त्व प्राप्त कि वस्तु का विधान प्राप्त है। यही सब
 सब वस्तु-विषय प्रथमा के उपाय-सहाय से संयुक्त नहीं होगा तब
 तक प्रथमा का प्रथमा प्रथमा में प्राप्त नहीं है। यद्यपि कि प्रथमा
 प्रथमा-विवरण में कोई प्रथमा नहीं मिलेगा।

इस संबंध में प्रश्न यह उठ सकता है कि क्या कहानी में इस प्रकार का वस्तु-विन्यास अनिवार्य है? कुछ सोचों को इस प्रकार की किसी पूर्वनिश्चित व्यवस्था-योजना में धाम्ना कथात्मक भी ही नहीं होती।¹ उनका कहना है कि बिना अनिवार्यता इस प्रकार की किसी धारमिक योजना के भी कहानी कही जा सकती है। वह धारमिक

नहीं है कि कार्य-कारण और परिणाम की पूरी बीड़ यथया उसका संबंधयोग कहानी में दिखाया ही जाय। कहानियाँ ऐसी भी हो सकती हैं जिनमें किसी साध्य की केवल सिद्धावस्था ही सामने भाई जाय और उसी के द्वारा कोई ऐसा प्रभावोत्पादक स्वल्प प्राप्त हो जाय कि पाठक का चित्त द्रवित हो सके। इस विषय में वह धारमिक नहीं है कि किसी विषय के सिद्धावस्था तक पहुँचने के पूर्व की समस्त भूमिकाएँ यथया विविध साधनों को एक क्रम से व्यवस्थ ही चित्ताना या सजाया जाय। इस प्रकार के विचारकों से केवल एक ही बात कहनी होगी कि निर्माण का ऐसा कोई कार्य हो ही नहीं सकता जिसमें परिशिष्ट पूवता की प्राप्ति करने के लिए पहले से एक क्रम स्थिर न कर लिया गया हो। जिस विषय की केवल सिद्धि में ही प्रभावसमष्टि उभाड़नी होगी उसे एक बुद्धिमत्क पीठिका पर स्थापित हो करना

1 "With or without your kind permission I will kick the word *Plot* right into the sea, hoping that it will sink and never reappear. It is the most deceptive word in the jargon of the art, craft or what would you. As a noun it usually means nothing more or less than *story-outline* or *synopsis*. As a verb it means to *shape* or *plan*.

I hate ambiguities, and so I am substituting *story outline*' for the noun and *devise*' for the verb.

Francis Vinton: Creative Technique in Fiction,
(1946) pp 423

ही होगा। उसके बिना अभीष्ट आतावरण ही नहीं बड़ा होगा। अतएव यह आवश्यक हो जाता है कि कहानी को सफल बनाने के लिए उसके मूलमात्र के धाये-नीछ का विवरण एक निश्चित योजना के साथ बाँधा जाय। किसी कथास को बुद्धिमूलक ढंग से समोजित करना ही कथानक है और यह किसी भी प्रकार की रचना के लिए अनिवार्य है।

सामान्यतः उपन्यास नाटक इत्यादि अन्य रचना-प्रकारों में कथानक का संगठन जिस विधांत प्रपञ्च पद्धति पर किया जाता है

कहानी में धाकर उसका वह रूप नहीं रह

कथानक के सीम स्म जाता। विस्तार-परिमिति और मध्य की एकात्मिकता के कारण कोई बात भी यहाँ

घोड़े में घीर सीमे डग से कहनी पड़ती है। इसलिये कहानी के कथानक में कार्यों की विभिन्न व्यवस्थाओं का विचार नहीं किया जाता। इसमें प्रतिक से प्रतिक धारंभ चरमोत्कर्ष और अंत आवश्यक रहता है। कही कही ऐसा भी हो जा सकता है कि इनमें से भी कोई रहे या न रहे—वह कहानी प्रेरणा अथवा उद्देश्य पर निर्भर करता है। पर सामान्य रूप में उक्त तीनों अंश यदि यथाक्रम नियोजित रहें तो कहानी का प्राचीन पूर्ण होना है यह धारण्य है कि ऐसी स्थिति में कहानी कुछ बड़ी हो जाती है। इस बड़ाई की सीमा लेखक-विशेष की अपनी प्राकृत्या पर आधारित रहती है। इस भिन्नोण पद्धति के कथानक का धीरर्ष यदि देखना हो तो प्रयास की कहानी 'धौवी' और 'सामवती' अथवा प्रेमचंद की रचना 'ऐकट्टैस' अथवा 'सुजान मयत' में देखा जा सकता है। उनमें कारण कार्य, परिणाम अथवा धारंभ उत्कर्ष और अंत अत्यंत विचार रूप में उपस्थित किए गए हैं।

जिन कहानियों में कथामात्र की उक्त दोड़ पूरी दृष्ट नहीं होती उसमें कथानक विद्य रूप में किसी एक भाव मनःस्थिति और घटना का स्वरूप विचित्र उपस्थित करता है। ऐसी कहानियों में चरम उत्कर्ष-बिन्दु से ही अस्तुस्थिति हमारे सामने आती है और

हमारी संपूर्ण कल्पना और सहूलयता को समेट लेती है। इन कहानियों में प्रभावान्विता ही मित्रात्म्या की विद्युति ही राक्ष होती है। इस विद्युति प्रथमा प्रसार में ही रचना का संत हा जाता है यही किसी प्रभाव की मित्रात्म्या का पृथ और नग्न सामीप ही परम साध्य माना जा सकता है। इस रग का कुछ ज्ञान प्रसाद की विजया या मोहनसाम महतो की पाँच पाँच कहानियों से प्राप्त किया जा सकता है।

इसी प्रकार कथात्मक का एक तीसरा रूप भी प्राप्त करने को मिलता है। ऐसा हो जाता है कि कथा-रूप के विकास का परमसाधन चरम-सीमा पर पहुँच कर ही स्थिर रह जाय। ऐसा भी हो सकता है कि भारत में बन्धुत्व का परिषय या विवरण रखा मिले और उसके भीतर से निरन्तर पर गहनी ऊपर ही मान बढ़े। अपने साथ परिस्थिति राक्ष प्रभावों का एका कर्णी समझी गति तीव्रता से उस बलपूर्व विद्युतक पुरुषि और पुरुष कर वहीं एक पाय बड़ी चरित्र की एरोमुलता प्रथमा माबोत्रेक प्रथमा मनमिह प्रथमा प्रथमतम रूप धारण कर से और जान वही पूर्ण हा जान। बन्धुत्विका के इस रूप में केवल धारण और उत्तर्य की चरमात्म्या ही सुपरित हो सकती है। ऐसी कहानी का जय ही यह ज्ञान है कि बोधी बौद्ध के भीतर ही किसी रजा को ऐसा उद्घोष कर दिया जाय कि पाञ्च के हृदय को बहु घहन ही में अभिजुति कर गे। व्याकरण के विचार से बनेत्र गुमार की 'बोर' धियारामात्म्य पुन की 'बैत' की वित्री प्रथमा भगवतीपुरण बर्मा की 'बो' बौद्ध संप्रिक्त कथातियां देली जा सकती है।

सारण रूप में कथा जा सकता है कि विद्यायुक्त के आधार पर कहानी की पस्तु तीन स्वयं में अभिम्पक रापी है —



'बिदाह' और 'निर्वाह' नाम की कार्योपस्थाओं का बहानी में कोई प्रयोजन स्वीकार नहीं किया जा सकता। उन्हें लिए मर्ी स्थान का समान मतलब होगा। एतावता वे बर्ण हैं।

बन्धु-निश्वास के एक तीनों प्रकारों में सबसे निम्न एक और भी रूप विवक्षित हो चुका है और रचनात्मक चर्चा के म मरुक्त मातृम परका है। एतावता ही म स दूने बहानी का दूसरे कथावक्र का पढ़ना अपना एक कथनक का। एतावती से शब्द दूसरे कथावक्र का एतावता जाना भी संकलता से उपस्थित किया जा सकता है। इनमें एतावत प्रकार का शीघ्र दिखाना पड़ता है। इनमें ही इन कथाओं में दुष्टि का आधार प्रोक्षित हो जाता है—रचनात्मक के लिए ही और शब्दों के लिए भी। यदि पढ़नेवाला पढ़ने और सोच नहीं है तो बहानी के उस संत और संधि के अन्तर्गत में अन्तर्गत रह मानना नहीं एक म से दूसरी कथाओं का अर्थ होता है। लेकिन अपनी शक्ति मर तो उस स्वयं पर पूरी साबधानी रखना ही पर परमत्रने तम समान योग्यता और शक्ति के लिये ही। इसलिए रचना की ऐसी प्रवृत्ति युक्तिपूर्वक है। अक्षुभ्य होती है। इनमें मरणीयता दुष्टि विरोध के अन्तर्गत प्रयत्न प्रीष्ट होती है—ऐसी बात नहीं है। इस नाम का अनुभव प्राप्त एते ही शोध करते हैं। इनमें मृता विगत अपना अन्तर्गत प्रम अधिक और मारता है। इसी में इनमें मरणीयता रक्षापद्धति की यह मृत्यु प्रियता अन्तर्गत प्रादि मरणीय म अधिक प्रीष्ट किया पड़ती है। यों तो संवर्षों में भी दूसरे बन्धु निश्वास की कथाओं का अर्थ होता है।

बहानी के मूलाभाव और अन्तर्गत के मातृम ही बन्धु का संत धारण भी होता है। यदि बहानी की मृता मरणीयता दुष्टि मर भाव

को बगाना है। तो कथानक में किसी प्रकार की बकता उठार बढ़ाव की आवश्यकता नहीं रहेगी। सरल और सम समबाहरी कथानक यदि है वस्तु एक घोर से दूसरे घोर तक चमती रहेगी। इतिवृत्त-निवेदन का क्रम ऐसा रहेगा कि एक कुतूहल की उत्तमन पैदा कर ही जामनी और कथानक बिना किसी अमरकारपूर्वक योजना के एक एक बना चलेगा जब तक सहसा जिज्ञासा का समाधान नहीं हो जायगा अथवा ही कुठिकार सारी बीड़ का एक क्रम पहले से ही स्थिर कर रखता है। कथानक के विचार से तिसस्ती जासूसी इत्यादि रूप की कहानियाँ इसी कोटि में आयेंगी।

अन्य प्रकार की कहानियों में वस्तु के मुख्य में कोशल आवश्यक रहता है। प्रेरणा चाहे अरिज प्रवृत्त बटना से मिले चाहे अनुकूलि-मूलक कल्पना से फिर भी कथानक में कथानक-कथानक एक योजना की आवश्यकता दिखाई पड़ेगी।

किसी स्वतन्त्र विधेय से वस्तु का प्रारंभ अथवा ही करना पड़ेगा और कारण-कार्य-परिणाम की अपनी एक योजना अथवा बनानी पड़ेगी। प्रारंभ में या तो किसी परिस्थिति विधेय का विचार दिया जायगा और उससे विकसित होनेवाले अरिज प्रवृत्त भाव का अर्थ दिखाया जायगा या कार्य से ही कहानी प्रारंभ हो जावेगी और यथाक्रम अनुक्रम परिणाम की घोर बढ़ चलेगी या किसी संघर्षमयी स्थिति से किसी विधेय प्रकार का प्रभाव फैलता दिखाया जायगा। बीसा भी क्रम हो कहानी की प्रत्येक अंश के अनुक्रम विषय का प्रसार एक क्रम अथवा ही ग्रहण करेगा और निश्चित परिणाम पर पहुँचने के पूर्व अपनी एक ऐसी कुठिमूलक संभावना तैयार करेगा जिसके कारण कहानी का फल यथाच घोर प्रकृत मात्तुम पड़ सके।

इस प्रसंग में कतिपय आवश्यक शिक्षाओं का विचार कर लेना उचित मात्तुम पड़ता है। कहानी के कथानक में किसी प्रकार

की भी बटिसता नहीं उपपन्न होनी चाहिए, क्योंकि किसी प्रकार की बटिसता में उसकी अपनी अन्तर्गत बाते इतनी अधिक स्वयं हो जाएँगी कि कहानी की एकोग्रुसता के नियमों का भंग होया। अतएव न तो किसी बटित चरित्रवासे पाप का इसमें विषय हो

शिक्षान्त-पत्र

सकता है और न कथानक की पठित्विधि को उलझना या सकता। विषय का सीधा प्रतिपादन ही कहानी में इष्ट है। इसलिये कथानक में अधिक मोड़ नहीं उत्पन्न किए जाने चाहिए। दूसरी बात विचार की यह है कि कहानी लघुविस्तार की रचना है इसलिये कथानक के भीतर बात जहाँ-कहीं से भी जैसे और जहाँ-कहीं भी पहुँचे उसकी पठि में कौशलपूर्वक त्वरा प्रयत्न वेग का होना नितांत बाँझनीय है। कोई चरित्र चाहे वह चरमसीमा की ओर बढ़ रहा हो प्रयत्न अपने उच्चतम उत्कर्ष से निगति की ओर चल कर अनुमान क्षेत्र को आन्दोलित कर रहा हो उसमें पर्याप्त क्षिप्रता के साथ तीव्रपति तीसता भी होनी चाहिए तभी अस्तुतः प्रभावाम्बिति पूरकतया अर्हत्त प्रयत्न स्फुरित होगी।

तीसरी बात जो कथानक के विकास में आवश्यक रहती है वह है बुद्धि-समय प्रकृतत्व प्रयत्न अन्वयता। यह अन्वयता सभी बातों में होनी चाहिए—वह चाहे चरित्र की कोई कृति विधेय हो चाहे किसी घटना की अभिव्यक्ति चाहे वातावरण का चित्रण हो चाहे देश का चित्रण। किसी चरित्र प्रयत्न भावप्रसा की अपनी परिस्थितियों होती है, इसलिये सबसे अधिक ध्यान इसी बात का होना चाहिए कि इन परिस्थितियों को किसी बँधीर की कड़ियों की तरह प्रयत्न की कड़ियों के क्रम की तरह घनाया जाय। जब तक कोई चरित्र प्रयत्न घटना अपने लघुबिम्ब कारणस्य से विभिन्न स्थितियों का आचरण नहीं प्राप्त होती जब तक उसके स्वरूप में प्रकृतत्व नहीं उत्पन्न हो सकता है और उसके इस निविष्ट रूप को बुद्धि नहीं सहन कर

अब यदि कुछ प्रभावान्विधि को वरजता नहीं स्वीकार करती तो कहानी का सिद्धि नहीं प्राप्त हो सकती। इसलिए कहानी में कुछीसूत्र और यथार्थ स्थितियों यथाक्रम और यथास्थान ठीक से चित्रित हानी चाहिए।

संघर्ष और द्रष्ट साहित्य का बहु मुक्त साधन है जिसका प्रयोग रचना के सभी प्रकारों में समान रूप से होना है। एक प्रकार से

संघर्ष द्रष्ट के ही आधार पर यथासंभव को गति प्राप्त होती है सभी को परिणाम मानकर काम और उसके हनु का यथोचित विभाग—

महाकाव्य नामक उपन्यास सभी में होता है परन्तु कथा में आधार यही द्रष्ट अथवा संघर्ष एसा उपेक्षणीय रूप धारण करता है कि उसका प्रयोग एक अन्तस्कार स्वयं में समाप्त हो जाता है। जिन कहानियों में द्रष्ट विभाग ही प्रमिताद्य रूप पाया है कथना नहीं उसी से कहानी रचना की प्रकृति प्राप्त होती है यहाँ कथा प्रभाव बरतु-विन्यास में बल अधिक दिग्दर्शक पड़ता है। यह द्रष्ट तीन प्रकार का हो सकता है—(१) मनुष्य का भौतिक अंग से (२) मनुष्य का मनुष्य से (३) एक ही मनुष्य में दो भावों का।

(१) पहले में पात्र अथवा पशुविक कीमे हुए दशावस्था परिस्थिति समाप्त अथवा सन्तुष्टि प्रकृति किसी म भी मुक्त दृग्गा विधाया का सकता है। या ठा यह अपने अल्प प्रभाव से इतनी दूरियों पर दृष्टा पर विषय प्राप्त करता है कथा अपने अपने सिद्धि मुक्तता और समन्वितता करता लिखा जाता है। कथा-काली का कहना से लेकर आरम्भ की मनोविज्ञान प्रमाण कहानियों का में कथा विस्तार विस्तार-निम्न रूपों में लिखा जाता है। यदि कथा राज कुमार पर से गिरकाम्ब निम्न कर कथावन की पत्नी से दम्ती करके कहीं दौड़-दौड़ना प्राप्त करने के लिए गला प्रारंभ के

अपाम करता है, और मार्ग में आनेवासे संघर्षों का बीरतापूर्वक सामना करता है। इसी तरह प्रायुक्त मनोविज्ञान का कोई मछीन रूप-मानव मात्र मानसिक इन्द्र में पड़ा या तो कुल की कोई प्रभावित परम्परा से लड़ाई ठान बैठता है जबका समाज किसी रुढ़ि-परम्परा के विरुद्ध विद्रोह का ढंढा लड़ा कर देता है, और अपने आरिष्य-बल से उस लड़ाई का सामना करता है।

(२) दूसरे में मनुष्य अपने समानवर्ती अन्य किसी मानव से युद्ध करता दिखाया जाता है। मनुष्य के साथ उसकी परिस्थितियाँ और प्रकृति भी युद्ध करती हैं। पात्र के जीवन की अपनी परिस्थितियाँ होती हैं औरि की अपनी बुधियाँ होती हैं, वहाँ-वहाँ भी दो पार्श्वों की दो बुधियाँ और परिस्थितियाँ विपक्ष हुईं वहीं एक पात्र दूसरे पात्र से विरोध करता है और संघर्ष जबका इन्द्र का रूप उभर आता है। राम रावण के इन्द्र से लेकर प्रसाद की 'समीम' कहानी के मन्तराम और कट्टर मुसलमान अपना प्रेमबन्ध के 'मुजाम मगत' और बोमा तक यह इन्द्र देखा जा सकता है।

(३) वहाँ-वहीं मनुष्य के अंतःकरण में दो विरोधी भाव बुरा ही प्रसंग जबका पात्र में आ जाते हैं वहाँ इनके संघर्ष का बड़ा ही प्रभावशाली रूप दिखाई पड़ता है। किसी एक निश्चित परिस्थिति में जिस स्वतन्त्र पर एक भाव अपना स्वल्प संगठित करके पात्रसमूह में अभिष्टित हो जाता है, वहीं यदि निम्न परिस्थितियों के प्रेरित होकर कोई दूसरा भाव भी अपने सम्पूर्ण प्रमात्रों को लेकर स्वतन्त्र रूप में लड़ा हो जाय तो दोनों की एक ही साम्य भूमि होने से बड़ा ही अमरुदारपुण संघर्ष उत्पन्न होता है। एक ही पात्र में वहीभासे दो दोनों भाव यदि विरोधमूलक सिद्ध हुए तब तो अन्तःकरण कठोर रस्साकड़ी का प्रसादा बन जाता है, इसका यदि हस्का रूप देखा हो तो इलायत्र बोदी की कहानी 'अपलीक' में देखा

जा सकता है। इस प्रकार के इन्द्र का बचाव प्रभावशाली और पूर्ण बंधनपूर्ण विनाश 'प्रसार' की 'पुरस्कार' और 'भावावलीप' वीर्य कहानियों में मिलता है। एक ही पात्र में वास्तव्यरति और कुसमान के प्रति प्रेम में तीव्र भीषणता दिखाई गई है और परिणाम बड़ा ही चित्त को प्रभावित करनेवाला बन गया है।

विद्वान्तरूप में यदि वह सभी कहानियों का अध्ययन किया जाय तो एक बात स्पष्ट दिखाई पड़ेगी कि जिनमें परिस्थिति-संज्ञना का अभ्यास बहुत ही कौशलपूर्ण रूप से किया जाता चाहिए। कौशल कथानक को इस ढंग से मोड़ने में प्रयुक्त होना चाहिए कि वही प्रकार के भावोदयों के अनुकूल बुद्धिमत्क परिस्थितियों की उजाड़त प्रकट रूप से हो। उक्त कृतियों में कथानक के ऐसे दोषों जहाँ के महत्व का यथाविधि चित्रण बड़ी आतुरी से होना चाहिए। ऐसी रचनाओं में दोनों विरोधी भावों के उदय और क्रियात्मक परिवर्तन को लेकर ही कथानक यथायथ बनाया जा सकता है। इसलिए इन्द्र-संज्ञना कहानियों में नाटकीय चित्रविधान महत्त्व दिखाई पड़ना चाहिए और यही कारण है कि ऐसी कहानियाँ पाठक को बड़ी ही अधिक हो उठती हैं।

कहानी रचना की प्रेरणा यदि ऐसे अनुभव, पिछला घटना चित्रण पर अवलम्बित है, जिसका सूत्राकार जीवन का कोई तथ्य प्रकट हो सके है अथवा तद्विपर्यय का तथ्य प्रकट हो सके है तो फिर कथानक की गति स्पष्ट रूप से प्रकट हो सके है। एकदम एकदम उदय और क्षीय होनी। कारण कार्य और परिणाम की संज्ञना उठनी आवश्यक न होनी जितनी कि वह तथ्य प्रकट हो सके कि किसी सुविचिंत भावना प्रकट हो सके पर बैठना। प्रकट का उदय प्रकट केवल इसी बात में संदेह कि जो तथ्य प्रकट हो सके प्रभाव-लाभकता का मुख्य कारण बनाया जा रहा है उसे ऐसी परिस्थिति के बीच में बड़ा किया जाय जो उसकी प्रकृति के सर्वथा अनुकूल

है। इसलिए ऐसी कहानियों में केवल परिस्थिति होनी और प्रमाणात्मकता का कारण रूप वह जीवन का उत्पन्न होना। कर्माण को परिच्छेदों भवता विभिन्न युग्मों में बाँधने की भी उतनी अधिक आवश्यकता ऐसी कहानियों में नहीं रह जाती और न तो वस्तु-विन्यास में ही किसी प्रकार के उदार-बहाव के लिए योजना बनानी पड़ती। ऐसी रचनाओं में केवल इतिवृत्त-निवेदन का सीधापन और सम्बोधनात्मक के प्रति विशेष प्राकर्षण महिष्ठ होता है। जवाहरलाल नेहरू ने कई कहानियाँ उपस्थित की हैं—'प्रेमचन्द की 'धालसंगीत' 'दियाचमधराय की 'कोटर या कुटीर' और 'अज्ञेय' की 'पुष्प'।

वस्तु-विन्यास के विषय में जिन बातों का ऊपर विवेचन किया गया है, उनको केवल विचारोन्मेष की भूमिका समझना चाहिए। जो और दो सप्ताह बाद के—ऐसा पवित्र का-का कोई कठोर नियम और प्रायश्चित्त समीक्षायात्मक नहीं उपस्थित कर सकता। सिद्धांत की बातें

निष्कर्ष

व्यवहार के क्षेत्र में धाकर मानात्मक कारण कर से सञ्चयी हैं। इसीलिए विद्यते भी सत्य निरूपित होते हैं। यद्यपि निर्माण-कार्य में योग देने के लिए जिन नियमों का संकेत किया जाता है, उन्हें सत्य रूप में विभिन्न कवियों में प्रयुक्त पाकर ही स्वीकार किया जाता है। सामान्य रूप में तो यही बिछाई पड़ता है कि सद्यर्थों का निवारण करके कविकार सर्वथा के क्षेत्र में नहीं उतरता। वह तो रचना की प्रकृति के अनुस्यू तदन की कर्तव्यता को समतन-स्वतन्त्र मानते हुए भी इतना अल्प स्वीकार करता होगा कि यदि वह निर्माता समीक्षा-विषयक सिद्धांतों का अध्ययन यद्यपि अनुसरण कर सके तो उसे अपने कार्य में बड़ा योग मिल सकता है।

कहानी की रचना और अध्ययन से संबंध रखनेवाले उद्योग-महत्त्वपूर्ण पद्य की ओर संकेत कर देना भी आवश्यक है जिसका सीधा संबंध वस्तु और उसके विन्यास-रूप से है। सामान्यतः सभी

कहानियों में कथानक कुछ संघों और परिच्छेदों में विभक्त रहता है। सारे इतिवृत्त को सह-सह करने उपस्थित करने की अपनी एक परिपाटी है। इन परिच्छेदों में परिच्छेद-विभाजन वस्तु-विभाजन की पद्धति में एक महत्वपूर्ण विषय है। इस विभाजन की अनिवार्यता और अपभोगिता क्या है? क्यों इसको सभी साहित्या के कहानी-लेखक एक स्वर से स्वीकार करते हैं? इसके प्रयोग के भीतर कौन-सी सिद्धांत की बातें हैं? इत्यादि अनेक प्रश्नों का विचार होना आवश्यक है।

समस्त कहानी को विभिन्न खंडों में बांटना स्वयं में प्रयोगसिद्ध है और सर्वथा व्यावहारिक भी है। लेकिन परिच्छेदों में बांटने की बात सही समय प्रायगी जब इतिवृत्त अथवा भावक्रम का प्रसार कुछ छतार-बढ़ाव से संकुच होया। एक बिन्दु और एक दृष्टवासी को कहानियाँ होंगी उनमें सिद्धांततः परिच्छेद नहीं हो सकते—जैसे 'प्रसाद' की 'समुद्रसंतरम' कहानी है। इसी प्रकार की अन्य कहानियों में देखा जा सकता है कि देशकास पात्र भाव परिस्थिति सभी कुछ बोक का बोक एक दृश्य या बिन्दु में समन्वित हुआ है। ऐसी अवस्था में खंड और परिच्छेदों के लिए उसमें कीर्ति स्थान नहीं रह सकता। इस मर्म को समझने में यदि बड़ा सा भी प्रयास होता है तो बड़-से-बड़ लेखक भी झूठ कर जा सकते हैं। इसका प्रमाण प्रेमचंद की कहानी 'आत्मसपीत' है।

(१)

(प्रथम परिच्छेद की समाप्ति इस रूप में है)

बहु धरें बहती रही, वहाँ तक कि मार्ग में बड़ी से उसका घतिरोध किया।

(२)

(द्वितीय परिच्छेद का आरंभ इस रूप में है)

मचीरबा से विगत हुए उधर उधर छवि सीपार्य। किनारे पर एक बीका

दिखाई दी। निकट आ कर बोली—“माझी मैं उस पार जाऊँगी। इस मनोहर राग ने मुझे न्याकुल्ल कर दिया है।”

“आत्मसंगीत”—प्रेमबंध

उक्त उद्धरण में प्रथम बंध की समाप्ति जिस स्थल पर होगी है और जिस समय पर होती है उसमें और दूसरे बंध के आरम्भ के स्थल में किसी छूट भयवा परिवर्तन का कोई भवकाण ही नहीं है। सारी क्रिया अटूट पंक्ति से चलती रहती है। रानी मनोरमा बंटों बसती रही। चहसा मनी ने धामने धाकर अशरोष उत्पन्न कर दिया और रानी ने हजर-उबल बेसा सामने एक नौका ली उसके माझी को उसने पुकारा। इसमें न तो कही क्रिया की पंक्ति मग होती है और न स्थान और काल में कोई परिवर्तन होता है। ऐसी स्थिति में लेखक के केवल —२— सिद्ध होने से परिच्छेद का प्रयोग न तो सार्थक होता है और न औचित्यपूर्ण ही।

इस विवेचन में कुछ उष्म की बातें संसिद्धि हैं। कहानियों का यह परिच्छेद विभाजन कुछ सिद्धांतों पर अवसंबित है। मूलतः एक-एक परि

च्छेद इतिवृत्त के अण्ड-अण्ड रूप हैं। प्रत्येक

परिच्छेद-विभाजन पण्ड में जो प्रवाह चलता है उसमें वहाँ कुछ का सिद्धान्त पूरा पीरा होती है और स्थान काल और क्रिया की भूमिका और पट में परिवर्तन होता है, वहीं

परिच्छेद या तो समाप्त होता है या तो आरम्भ होता है। कहानी का यह अण्ड-विभाजन एक प्रकार से माटकीय पट-परिवर्तन है। जैसे माटक में पर्व पिर कर अथवा उठकर सम्पूर्ण बातावरण को बदल देता है उसी प्रकार कहानी में वहाँ परिच्छेद का परिवर्तन होता है वहाँ पहले का अला भाता हुआ दृश्य या व्यापार बदलता है और नूतन महति बातावरण एवं काम प्रवेश पाता है। वहाँ से नया दृश्य अथवा अण्ड अथवा परिच्छेद परिवर्तन पश्य करता है। इस प्रकार बोड़े में कहा का सचता है कि कहानी के कथानक को अण्डों में विभाजित करने में मुख्यतः अभिप्राय की निम्नलिखित चार बातों में से कोई न कोई अवश्य रहेगी —

- (१) कथा के प्रवाह में काळ के व्यवधान की सूचित करना ।
- (२) दृश्य और स्थान के परिवर्तन का विद्य उपस्थित करना ।
- (३) चरित्र की मानसिक वृत्तियों के बलपूर्वाकारण को स्पष्टित करना ।
- (४) प्रभावाम्बिति को उत्तरोत्तर लुकीली बनाते चलना ।

इन चारों पदों का विचार करने पर सिद्धांत यह स्वीकार करना पड़गा कि इस परिच्छेद-विभाजन में भी रचना का विशेष कौशल निहित रहता है । जो कुशल लेखक इन चरणों के समाप्ति-स्वत और उसके बाद के आरम्भिक स्थल को जितना ही प्रभावशाली बना सकेगा उतनी ही उसकी कहानी की कड़ियाँ घासोक्रमयी होती जायेंगी और प्रत्येक पदपरिवर्तन के प्रसंग पर पाठक समझा सकेगा मूलतः चित्र-विधान से साक्षात्कृत और अनुसृत होता । उसे एक प्रकार की नवीनता और स्फूर्ति का अनुभव होगा । इस प्रकार घाबल कहानी में एक पवित्रोत्त सिग्भता बनी रहेगी और कथा भी उत्कर्षोन्मुख होती जायेगी । उदाहरण के लिए यदि 'प्रताप' की कहानी 'दिसाती' को दिया जाय तो बोड़े में बात साफ हो जायगी । उसी प्रकार अन्य कहानियों में भी परिच्छेद-विभाजन की बात समझी जा सकती है । यदि उक्त सिद्धान्त की दृष्टि से इस विषय की परीक्षा की जायगी तो विविध लेखकों के उचित और अनुचित प्रयोगों की धारा भीन धरमता से की जा सकती है ।

इस कहानी के आरम्भ में लेखक ने प्रकृति का मनोरम चित्रण किया है । उसमें ईस-जान के साप-साव स्वत की मनोरमता लिस छठी है । प्रकृति की रमणीयता से उद्दीप्त 'दिसाती' में सीरी अपनी व्यक्तित्व भावनाओं में तस्तीन परिच्छेद-विभाजन है । उसकी उन्नी पुसेला ने पाकर एकान्त भावना मंग की । ईश्वरतापुष बोड़ा उबार बसा और यह कहकर पुसेला बसी गई—'अच्छा नीट सवेला बिगता न

कर। मैं बर खाती हूँ।” इस पर सीरी ने छिर हिमा कर जाने की प्रतुष्टि दे बी घोर बह पसी गई। इसके बाद पटपरिवर्तन होता है। स्वान तो फिर भी बही रहता है, लेकिन कास में बोझा परिवर्तन हो जाता है और सीरी की मानसिक वस्तुस्थिति में परिवर्तन प्रकट होता है। इसी परिवर्तन को व्यक्त करने के लिए सूतन परिच्छेद की आवश्यकता दिखाई पड़ी।

दूसरे चरण में पुनः प्रकृति की मनोरमता में डूबी हुई सीरी विवा-स्वप्न में तल्लीन है। अपने प्रिय के विषय में अनेक रागमयी कल्पनाएँ उसके मन में जन्म रही हैं। वह इसी अवस्था में पड़ी रहती है और संभ्रा का अधिकार छेद जाता है। पक्षियों का कसरत बन्द हो जाता है पर सीरी अपने में डूबी रहती है और बासी धाकर उसको प्रकृतिस्व करती है—“वेगम बुना रही हैं—बलिय, मेंहरी धा गई है। यही दूसरा सख समाप्त हो जाता है। परिच्छेद समाप्ति से यह ध्वनित हुआ कि सीरी वेगम के महल में गई और मेंहरी से संबद्ध क्रिया-कलाप में भग गई। इसके उपरान्त तीसरे सख का आरम्भ होता है उसमें तो कास-परिवर्तन की शाब्दी घोषणा भी है “महीनो हो गए। सीरी का ग्याह एक बनी सरबार से हो गया।” इसमें एक महीने की लौक समाप्त हो गई है। सीरी की गतिगत स्थिति सबका बदल गई है। ऐसी अवस्था में बीच के घारे विस्तार का संकेत देन के लिए परिच्छेद-परिवर्तन की अनिवार्य आवश्यकता भी ही। इस प्रकार संभ्रम रचना को तीन सखों अथवा परिच्छेदों में विभाजित किया गया है। प्रत्येक परिच्छेद में एक विशेष स्थिति का चित्रण है। उन तीनों में कास और वस्तुस्थिति की निष्पत्ता का संकेत कर दिया गया है।

प्रेमचन्द की कहानी ‘आत्मसमीप’ में परीच्छेद-परिवर्तन की निरकंठता का संकेत क्रिया का चुका है। पाण्डेय बैकन शर्मा ‘सख’ की कहानी ‘उसकी माँ’ में सख-परिवर्तन की स्पष्टता का रूप दिखाई पड़ता है। विभागत संभ्रम चरण की समाप्ति बही

हो जाती है जहाँ अदालत के फँसने के बाद सामा और उसके
 धर्म साथी बुड़ी माँ को सरसाह से स्वर्ग जाने का धामंनक देते
 हैं और वह राजनीतिक व्यवहार के ज्ञान
 परिच्छेद-संकेत से सर्वथा विहीन सरसा वक्र-वक्र उनका
 का अभाव मुँह ताकती रह जाती है और पूँछती है—
 "तुम कहाँ जाओगे पगले !" इसके आगे का

इतिवृत्त सर्वथा नवीन दुस्र का स्पष्ट संकेत करता है और परिच्छेद
 परिवर्तन का भाव उल्लिखित करता है। इस चतुर्थ अष्ट में मुकर्रमें
 क फँसने का प्रसंग है। उक्त स्वप्न के उपरान्त भागे का दुस्र उस
 बुड़ी का ज्ञान करा रहा है जब किन से नेही गई मासा की धर्मिक
 चिट्ठी सरसी माँ को मिलती है और वह उसे लेकर बाबा जी के
 पास पढ़ाने के लिए जाती है। दोनों दुस्रों के बीच काम का स्पष्ट
 व्यवधान पढ़ चुका और परिस्थिति सब प्रकार से परिवर्तित हो
 गई है। ऐसी अवस्था में नवीन अष्ट का उत्पन्न वांछनीय था।

आदि, अत और मध्य

कहानी के समस्त रचना-प्रसार में तीन स्वयं बड़ ही महत्त्व
 पूर्ण होते हैं—आदि अंत और मध्य । हममें भी बिचारको ने सामा-
 न्यत आदि और अंत की विवेचना अधिक
 की है । इन दोनों में आधार-वाक्य-संबंध
 समझना चाहिए । अंत प्रतिपाद्य है तो आरंभ
 उसकी प्रवर्धिका । अंत में जो कहना होता है उसकी सुमिका
 आरंभ में स्थिर कर देनी पड़ती है । ऐसी स्थिति में दोनों
 का अत्यन्त संबंध स्थापित हो जाता है । वैसे अंत होगा
 है, उसी के अनुसृत आदि को सबाधा प्रायः तभी मवेष्ट एकी-
 म्युक्तता सिद्ध हो सकती है । कहानी के इन दोनों छोरों को बिलकुल
 समझना चापना पड़ना ही कहानी की पोसाई में समान पैदा होना
 और मध्य का स्वयं अंत पोसाई का वह मध्यभाग होना जो सारी
 पोसाई को संतुलित रखेगा । इसीलिए सामान्यतः अंत मध्य-बिंदु
 को अरम-सीमा के नाम से समिहित किया जाता है । जिन कहानियों में
 यह अरम-सीमा बिलकुल ही अधिक मध्यभाग में समझती है, उन कहानियों
 का सीमावत्तता ही अधिक अनुमित हो जाता है । पर निर्दुःखा-
 कथन के अनुसार यह कठिनाई की प्रीति योग्यता पर प्रवर्धित
 है कि मध्य बिंदु का अत्यन्त-बड़ा अंत भी प्रायःसर्वी रोचकता
 को अनुसृत बनाए रखे । कहीं-कहीं तो ऐसा भी देखा जा सकता है कि

कहानी के समस्त रचना प्रसार में तीन स्वयं बड़े ही महत्त्व
 पूर्ण होते हैं—प्रादि घंट घोर मध्य । इनमें भी विचारको ने सामा
 न्यतः प्रादि घोर घंट की विवेचना अधिक
 की है । इन दोनों में प्राचार-प्राथम्य-संबंध
 समझना चाहिए । घंट प्रतिपाद्य है तो प्रारंभ
 उसकी बुझपीटिका । घंट में जो कहना होता है उसकी प्रूमिका
 प्रारंभ में स्थिर कर देनी पड़ती है । ऐसी स्थिति में दोनों
 का साम्योन्म संबंध स्थापित हो जाता है । वैसे घंट होना
 है, घंटी के प्रकृत्य जब प्रादि को यथाया प्राय तभी मयेष्ट एकी
 म्पुपता स्थित हो सकती है । कहानी के इन दोनों घोरों को बिलना
 समझना प्रायया उतना ही कहानी की मोलाई में तनाच पैदा होना
 घोर मध्य का स्थान उक्त मोलाई का वह मध्यभाग होना जो सारी
 मोलाई को संतुलित रखेगा । इसीलिए सामान्यतः उक्त मध्य-बिन्दु
 को चरम-सीमा के नाम से अभिहित किया जाता है । जिन कहानियों में
 यह चरमसीमा बिलनी ही अधिक मध्यभाग में समझती है उन कहानियों
 का घोरम उतना ही अधिक संतुलित हो जाता है । वर निर्दोषता
 कथन के प्रभुगार यह कठिकार की प्रीड़ बोध्यता पर प्रवर्तित
 है कि मध्य-बिन्दु को ह्मर उपर ह्मर-बड़ा कर भी प्राथमयी रीचकता
 को प्रकृत्य बनाए रखे । वहीं-कहीं तो ऐसा भी देखा जा सकता है कि

मध्यविन्दु का पता ही नहीं है। यद्यपि यह चरम-शीमा कहानी की प्रतिम भूमिका पर प्रबलित होती है। अर्थात् अंत से संमत्त रहती है।

‘साहित्य’ और ‘अंत’ के आरम्भ में ‘अंत’ की अधिक महत्त्व देना चाहिए, क्योंकि मूलभाव का परिपाक का बही केंद्रविन्दु है। सारी कहानी का प्रभाव उची स्थिति पर आकर समष्टिगत रूप धारण करता है। अविद्यमानता की सारी अंकुश बही पूर्वकल्प से निर्याती है। इसलिए प्रायः सभी कहानी-लेखक अपना ‘अंत’ सुभारणे के लिए बड़े कामकाज करते हैं। उनकी सारी प्रतिभा का मानव्य नहीं निर्यात समझना चाहिए। ‘मध्य’ की उपेक्षा की जा सकती है। ‘आरंभ’ का शीघ्रत्व सहन किया जा सकता है, पर ‘अंत’ बिगड़ा तो सब बुरा समझना चाहिए। जिन कहानियों की बोझ भी प्रशंसा होती है उनका यह पूर्ववर्तन-स्वतन्त्र अवसर ही उत्तम होगा। इसमें संदेह नहीं किया जा सकता।

कहानी के लघु-विस्तारी होने का व्यवहारगत प्रभाव उसके आरंभिक अंश पर बहुत स्पष्ट दिखाई पड़ता है। जिस रूप में भी आरंभ की रचना की जाए उसका छिद्र और बाह्यकीय अविद्यमान होना निर्यात बाह्यकीय है, अर्थात् अन्वया सारी कला-सृष्टि अस्तित्व ही उठेगी। इसलिए अष्ट संज्ञकों की रचनाओं में यह स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ेगा कि आरंभ-स्वतन्त्र एक विशेष कीलक के साथ संचालना जाता है। इसका सर्वोत्तम रूप नाटकीय समावेश में मिलता है। जिसने ही वैदिक-युग और क्रूरुस विद्याया की अमानेबासे संवादों से कहानी का आरंभ होना उठने ही तीव्र आकर्षक से पाठक उस ओर आकर्षित होना। इसका सर्वोत्तम उदाहरण यदि देखना हो तो ‘प्रसाद की नाटकीय कहानी ‘आकाश बीप’ में देखा जा सकता है—

“बग्नी ।”

‘क्या है ? सोने दो ।’

“सुख होगा चाहते हो ।”

“घबरी यहीं—विद्या सुखने पर चुप रहो ।”

“फिर अबसर न मिलेगा ।”

“कहा शीत है, यहीं से एक कम्बल काटकर शीत से मुक्त बनता ।”

“जहाँ भी आये की संभावना है । यहीं अबसर है । घाट सेरे बंधन शिथिल है ।”

“तो क्या तुम भी बग्नी हो ?

“हाँ धीरे धोखे, हल नाव पर बेचक हय बाविक धीरे गहरी है ।”

“कल मिलेगा ?”

“मिलन बाबागा । शीत से घम्बर रम्भ काट सकोमे ?”

“हाँ ।”

समुद्र में दसों बडने जगी । शीतो बंदी आपस में टकराये जगी ।
पहले बग्नी ने घबरे की स्वतन्त्र कर दिया “ ”

“आकाश शीत”—‘प्रसाद’

इसी प्रकार का सामान्य धनुर्वेदकापी सुबाबात्मक समारंभ
जित्त विश्वम्भरनाथ शर्मा कौशिक की प्रसिद्ध कहानी ‘ताई’ में
शोर राजा राधिकारयण सिंह की कहानी ‘दानों में कंबल’ भी देखा
जा सकता है ।

विष द्वारा भी धारम्भ का मध्य विधान हो सकता है । यह
विषय मानव स्व का भी हो सकता है और प्रकृति स्व का भी ।

इन्हीं विषों के भीतर से चूकर अब
आरम्भिक विष कहानी निकल पड़ती है, तो उसका
विषय स्वर्ग में एक प्रभाव उत्पन्न हो जाता
है और उस प्रभाव की धारा में
पाठक कुछ दूर तक चला जाता है । वस्तुतः ये विष कहानी

मध्यविन्दु का पता ही नहीं है। यकथा बहु चरम-सीमा कहानी की प्रतिभा भूमिका पर प्रकट होती है। प्रकटि घंठ से संलग्न रहती है।

'घादि' घीर 'घत' के तात्पर्य में 'घंत' को धार्मिक महत्त्व देना चाहिए, क्योंकि मूसभाव के परिपाक का वही केंद्रविन्दु है। सारी कहानी का प्रभाव उसी स्वतः पर धाकर समष्टिगत रूप धारण करता है। संवेदनशीलता की सारी संकति यहीं पुर्णरूप से बिखरती है, इसलिये प्रायः सभी कहानी-लेखक अपनी 'घंत' सुधारने के लिये यज्ञे आपसक रहते हैं। उनकी सारी प्रतिभा का मानबद्ध यहीं निविष्ट समझना चाहिए। 'मध्य' की ज्येष्ठा की भाँति है, 'घारंभ' का बीजम्य सङ्ग किया जा सकता है, पर 'घंत' बिगाड़ा तो सब दूबा समझना चाहिए। जिन कहानियों की बोझी भी प्रशंसा होती है उनका यह पर्यवेक्षण-स्वतः प्रकरण ही उत्तम होया इसमें संदेह नहीं किया जा सकता।

कहानी के मधु-विस्तारों होने का व्यवहारगत प्रभाव उसके धार्मिक संघ पर बहुत स्पष्ट दिखाई पड़ता है। जिस रूप में भी धारंभ की रचना की जाय उसका शिष्ट घोर नाटकीय मतिशील होना नितांत नाटकीय है। धारंभ धारंभ की कसा-बुष्टि धरनुष्ट हो उठेगी। इसलिये स्पष्ट लेखकों की रचनाओं में यह स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ेगा कि धारंभ-स्वतः एक विशेष कौशल के साथ सजाया जाता है। इसका सर्वोत्तम रूप नाटकीय समारंभ में मिलता है। जिसमें ही वेदगम्य-युग घीर कुसुम विज्ञाना की जगलबासे संघर्षों से कहानी का धारंभ होया जयने ही तीव्र मार्क्यंभ से पाठक सब घोर धारंभित होया। इसका सर्वोत्तम उदाहरण यदि देखना हो तो 'प्रसाव' की नाटकीय कहानी 'धाकाघ बीप' में देखा जा सकता है—

“बग्गी !”

“बधा है ? सामे हो ।”

“सुख होगा चाहते हो ।”

“घानी नहीं—बिना सुनने वा सुप रही ।”

“फिर अबसर न मिछेगा ।”

“बदा शीत है, कहीं से एक कम्बल बाजार शीत से सुख करता ।”

“भौंभी घासे की संभालना है । पहरी अबसर है । घास मेरे बंधन शिथिल है ।”

“ता क्या तुम भी बग्गी हो ?

“हाँ धीरे बोको, इस भाव पर केवल इस नाबिक और पहरी है ।”

“तब मिछेबा ?”

“मिछ जायगा । शीत से कम्बल रज्जु काट सकोये ?”

“हाँ ।”

समुद्र में दहोरें बढने लगीं । शीको बंधी घापस में टफताई करी ।
पहले बग्गी ने घासे को स्वतन्त्र कर दिया*** ”

“आकाश हीप”—‘मसाह’

इसी प्रकार का सामान्य अनुसंधानकारी सवादात्मक तमारेम
बंधित विस्वम्भरनाथ शर्मा कौशिक की प्रसिद्ध कहानी ‘ताई’ में
घोर राजा एधिकारमय सिंह की कहानी ‘काशों में कंधना’ भी देखा
जा सकता है ।

बिच द्वारा भी घारम्य का पक्ष विधान हो सकता है । वह
बिचन मानव रूप का भी हो सकता है घोर प्रकृति रूप का भी ।
इन्हीं बिचों के भीतर से कूटकर जब
आरम्भिक बिच कहानी निकल पड़ती है, तो उनका
विषय स्वयं में एक प्रभाव उत्पन्न हो जाता
है घोर उस प्रभाव की भाव में
गाठक कुछ दूर तक चला जाता है । वस्तुतः ये बिच कहानी

मध्यमिषु का पता ही नहीं है, यद्यपि यह चरम-सीमा कहानी की अतिम भूमिका पर अचरित होती है, यर्थात् अंत से संसन्न रहती है।

'आदि' और 'अंत' के तात्पर्य में 'अंत' को अधिक महत्त्व देना चाहिए, क्योंकि मूलभाव के परिपाक का वही केंद्रबिंदु है। सारी कहानी का प्रभाव सही रूप पर आकर समष्टिकत रूप धारण करता है। संवेदनशीलता की सारी संकति वही पूर्णरूप से निखरती है, इसलिए प्रायः सभी कहानी-लेखक अपना 'अंत' सुधारने के लिए बड़े कामरूढ़ रहते हैं। इनकी सारी प्रतिभा का मानदंड यही निश्चित समझना चाहिए। 'मध्य' की उपेक्षा की जा सकती है, 'आरंभ' का बोधस्य सहन किया जा सकता है, पर 'अंत' बिगड़ा तो सब दूबा समझना चाहिए। जिन कहानियों की बोझी भी प्रचलित होती है उनका यह पर्यवेक्षण-स्वयं अचरम ही उत्तम होगा इसमें संदेह नहीं किया जा सकता।

कहानी के अनु-विस्तारी होने का व्यवहारगत प्रभाव उसके आरंभिक अंत पर बहुत स्पष्ट दिखाई पड़ता है। जिस रूप में भी आरंभ की रचना की जाय उसका अंत और नाटकीय अतिशीघ्र होगा निरंतर नाटकीय है, आरंभ यद्यपि सारी कला-सृष्टि अस्तित्व ही उठेगी। इसलिए अष्ट लेखकों की रचनाओं में यह स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ेगा कि आरंभ-स्वयं एक विशेष कौशल के साथ सजाया जाया है। इसका सर्वोत्तम रूप नाटकीय समावेश में मिलता है। अतः ही वीरमध्य-मूल और कुतूहल विद्यार्थी की अमानेमाने संवादों से कहानी का आरंभ हुआ उठने ही तीव्र आकर्षण से पाठक उस ओर आकर्षित होता। इसका सर्वोत्तम उदाहरण यदि देखना हो तो 'प्रसाद' की नाटकीय कहानी 'आकाश बीप' में देखा जा सकता है —

“बन्दी ।”

“क्या है ? सामे दो ।”

“मुक्त होना चाहते हो ।”

“अभी नहीं—निद्रा सुन्नने पर सुप रही ।”

“किर अबसर म मिसेगा ।”

“क्या शीत है, कहीं से एक कम्बल काकडर शीत से मुक्त कता ।”

“अभी आने की संभावना है । यही अबसर है । आज मेरे बंधन सिमिक हैं ।”

“तो क्या तुम भी बन्दी हो ?

“हाँ पीर बोको, इस मास पर केवल इस बाकिर और प्रहरी है ।”

“क्या मिसेगा ?”

“मिसे आगा । शेत से अम्बल रस्तु काट सहीमे ?”

“हाँ ।”

समुद्र में हथोरें उठने लगीं । हीनों बंधी घापस में इफराने लगी ।
पहले बन्दी ने अपने को स्वतन्त्र कर लिया— ”

“आकरा हीप”—‘प्रसाह’

इसी प्रकार का सामान्य अनुदेवतकारी नृवाशात्मक समारंभ
कवित विस्वम्भरनाथ शर्मा कौटिक की प्रसिद्ध कहानी ‘गार्ड’ में
और रामा राधिकारमय सिंह की कहानी ‘कानों में कंबल’ भी देखा
जा सकता है ।

बिच द्वारा भी आरम्भ का मय विचाल हो सकता है । यह
बिचल मानव रूप का भी हो सकता है और प्रकृति रूप का भी ।
इहीं चित्रों के भीतर से कूटकर जब
आत्मिक बिच कहानी निकल पड़ती है, तो अस्फुट
बिचल स्वयं में एक प्रभाव उत्पन्न हो जाता
है और उस प्रभाव की धारा में
पाठक कुछ दूर तक चला जाता है । वस्तुतः ये बिच कहानी

मध्यविन्दु का पता ही नहीं है। यद्यपि यह चरम-सीमा कहानी की अंतिम भूमिका पर अचरित होती है। यद्यपि अंत से संलग्न रहती है।

यदि धीरे धीरे के आरम्भ में 'अंत' को अधिक महत्व देना चाहिए, क्योंकि मूलभाव के परिष्कार का यही केंद्रविन्दु है। सारी कहानी का प्रभाव उसी स्वस पर आकर समष्टिगत रूप धारण करता है। अन्तर्गतता की सारी शक्ति वहीं पूर्णरूप से बिखरती है, इसलिए प्रायः सभी कहानी-लेखक अपना 'अंत' सुधारने के लिए बड़े आग्रह रहते हैं। उनकी सारी प्रतिभा का मानदंड यही निश्चित समझना चाहिए। 'मध्य' की अपेक्षा की जा सकती है, 'आरंभ' का बौद्धिक सहन किया जा सकता है पर 'अंत' बिपदा तो सब को समझना चाहिए। अंत कहानियों की बोझ भी प्रशंसा होती है। अतः यह पर्यवेक्षण-स्वस अत्यन्त ही उत्तम होगा। इसमें संदेह नहीं किया जा सकता।

कहानी के बहु-विस्तारी होने का व्यवहारगत प्रभाव उसके आरंभिक अंत पर बहुत स्पष्ट दिखाई पड़ता है। जिस रूप में भी आरंभ की रचना की जाय उसका अंत धीरे धीरे ही जाटकीय मतिधीन होना निश्चित वास्तविक है, यद्यपि सारी कला-सृष्टि अत्यन्त ही बड़ेगी। इसलिए अंत लेखकों की रचनाओं में यह स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ेगा कि आरंभ-स्वस एक विशेष कौशल के साथ संचालित जाता है। इसका सर्वोत्तम रूप जाटकीय आरंभ में मिलता है। अतः ही अत्यन्त-मूल और अत्यन्त विद्या की अभाववाले अंतों से कहानी का आरंभ होना अपने ही तीव्र अत्यन्त से जाटकीय अंत धीरे धीरे जाटकीय होगा। इसका सर्वोत्तम अंत अत्यन्त ही बड़े रचना हो तो 'अंत' की जाटकीय कहानी 'आकाश ही' में देखा जा सकता है —

“बन्दी !”

‘क्या है ? सोने दो !’

“मुक्त होना चाहते हो ।”

“अभी नहीं—बिना तुझसे पर चुप रहो ।”

“किर अबसर न मिलेगा ।”

“क्या शीत है, कहीं से एक कम्बल ढाँककर शीत से मुक्त करावा ।”

“सौदागी घामे की संभावना है । यही अबसर है । आज मेरे बंधन शिथिल हैं ।”

“तो क्या तुम भी बन्दी हो ?”

“हाँ धीरे धीरे, इस बाण पर जेबज इस नाबिक और प्रहरी है ।”

“शक मिलेगा ?”

“मिन्न साधया । शीत से सम्बन्ध रम्य कष्ट सकोगे ?”

“हाँ ।”

समुद्र में दूधोंरे बटने लगीं । शीतों बंधी आपस में टकराने लगीं ।
पहले बन्दी ने आपसे को स्वतन्त्र कर दिया ”

“आकाश दीप”—‘मसाह’

इसी प्रकार का सामान्य अनुरजनकारी संवाचालमक समारंभ
पंडित विरबन्धरनाथ शर्मा कौशिक की प्रसिद्ध कहानी ‘छाई’ में
और राजा राजिकारमण सिंह की कहानी कानों में कंगना भी देखा
जा सकता है ।

बिना द्वारा भी धारम्य का मध्य विधान हो सकता है । यह
चित्रण मानव रूप का भी हो सकता है, और प्रकृति रूप का भी ।

इसी बिन्दु के भीतर से फूटकर जब
कहानी निकल पड़ती है, तो उसका
स्वर्य में एक प्रभाव उत्पन्न हो जाता
है और उस प्रभाव की धारा में
वाक्य कुप्य दूर तक बसा जाता है । वस्तुतः ये बिना कहानी

धारमिक बिना
विधान

वाक्य कुप्य दूर तक बसा जाता है । वस्तुतः ये बिना कहानी

के विषय को स्थापित करने के लिए दिव्य ध्यान का काम देते हैं। कुशल सेवक इस प्रश्न की सपुटा का बहुत विचार करते हैं। थोड़े से विस्तार में और सुन्दर पदावली के योग द्वारा इतका जितना स्पष्ट प्रश्न कर सकते हैं उतना ही करते हैं। अनेकित से कुछ भी अधिक विज्ञान सामा को बिगाड़ दे सकता है। मानवकर्म के मध्य विज्ञान द्वारा कहानी का आरम्भ 'प्रसाह' की प्रसिद्ध कहानी, 'दिवस' में दिखाई पड़ता है—

“दो-तीस रेखाएँ भाष पर, कभी पुतलियों के समीप मोरी और काली परीतियों का घेरा, बड़ी आपस में मिठी रहनेवाली यहाँ और नासापुर के नीचे इककी इककी हरिवाली बस तापसी के घोंरे मुँह पर सबल अभिप्रेमिका की प्रेरणा करती थीं।

वीरम काय्य से कहीं क्षिप सकता है ? संसार को हृद्यपूर्ण समझ कर ही तो वह संन की शास्त्र में आई थी। उसके आशापूर्ण हृद्य पर कितनी ही होकरें छाती थीं। तब भी वीरम ने साव न छोड़ा। मिथुनी बचकर भी वह शक्ति न पा सकी थी। वह आन आर्त्यत आशीर थी।

कैत की अमावास्या का प्रयाग या १ अरवत्य रूप की मिठी सी सकेह काओं पर और तमों पर ताज अरव्य कोमक पतिर्वा विडल आई थीं। उनपर अमात की फिरसे बहकर जोट पोट ही जाती थीं। इतनी स्किप्र श्रेय्या उन्हें कहीं मिठी थी।

मुकाम्य सोच रही थी। आन अमावास्या है। अमावास्या तो उसके हृद्य में सधेरे से ही अन्वहार भर रही थी ॥

“दिवस” — “प्रसाह”

इसी प्रकार के मानवीय विज्ञान का एक सूचीक रूप 'मुँहा' कीनक कहानी के आरम्भ में भी देखा जा सकता है।

“बह पचास वर्ष से ऊपर था। तब भी सुबहों से अधिक बलिष्ठ और हृद्य था। अमरी पर सुर्तियों नहीं बचती थीं। वर्षों की कर्तों में,

रूम की रात की बापा में, कमकती हुई बैठ की रूप में, लंगे शरीर
 हमने में वह मुक्त मानता था। उसकी बड़ी मूर्खों विष्णु के बंक की
 तरह, देखने बाबों की धाँसों में सुमती थीं। उसका सर्विदा रंग, साँप
 की तरह बिजना धीर बमकीया था। उसकी बागपुरी पीठी का बाध
 रेयमी किनारा, दूर से भी ध्यान आकर्षित करता। कमर में बजारसी
 सेहदे का फेडा, जिसमें सीप की मूठ का विष्णुभा लुसा रहता
 था। उसके हँसराखे बाबों पर सुनहले पल्ले के साके का झोर
 उसकी भीड़ी पीठ पर फैला रहता। जैसे कम्बे पर डिब्ब
 हुआ भीड़ी धार का रँगाया पह की उसकी बन्न। पंखों के
 बल बल वह बलता, तो उसकी बमें बटकत बौझती थीं। वह
 गुपका था।

२॥

६१ ११

मनोरम प्राकृतिक चित्र-विभाग द्वारा अपनी कहानियों का धारम
 'प्रसार' के विधेय रूप से किया है। जिस प्रकार चरित्र के विकास
 कम के धनुषार ही धारम के मानवी चित्र होते हैं उसी प्रकार
 कहानी की मूलधार की प्रकृति के समुच्चय ही धारम के ये प्राकृ-
 टिक चित्र होते हैं। जिस भाव की व्यंजना कहानी में करती रहती
 है, उसी की ध्वनि धारम के प्राकृतिक वातावरण से भी निकलती
 दिखाई पड़नी चाहिए। इस प्रकार कहानी में एकसूत्रता मुखरित हो
 चली है और इस पद्धति पर किया गया धारम धम्म आकर्षक
 और उद्दीपक होता है। यों तो 'प्रसार' की कहानियाँ 'धपराधी'
 'ग्योतिष्मती' 'बमजारा' स्वयं के धक्कर में इत्यादि में धारमिक
 प्रकृति-निरीक्षण मिलेगा ही पर उनकी प्रसिद्ध कहानी 'पुरस्कार'
 में यह तरह उत्तम रीति से जमड़ा दिखाई पड़ता है। चित्र-विभाग
 के भीतर से कहानी के धारम होने का बड़ा सुन्दर मेल वहाँ
 बँटाया गया है। यह धर्म केवल आकर्षक ही नहीं है, चित्र को ध्व
 प्रकार से प्रारब्ध कर लेने वाला है :-

“आहूतबन्ध, आकाश में आगे-आगे आदलों की धुमक, जिसमें
 बैलदुंदुभी का गंभीर शोक । आधी के एक निराल कोने से स्वर्ण-सुवर्ण
 काँकने लगा था— देखने लगा महाराज की सवारी । शैलमाहा के अंशक
 में समतल उर्बा जूमि से सीधी बाध उठ रही थी । अगर तोरण से
 जप-शोक हुआ मौजू में गजराज का आमरपारी सुख उकल दिखाई पड़ा ।
 वह हर्ष और उल्हास का समुद्र दिखोरे मरता हुआ जाने बहने लगा ।

कहीं-कहीं ऐसा भी देखा जाता है कि कहानी किसी विशेष
 अनुसंधान की सृष्टि करती धारणा होती है । इन धार्मिक स्वर्णों
 में विद्याका आकर्षण रोमांचकता की प्रथम प्रतीकता दिखाई
 पड़ती है । विषय को समतलरूप से
 उल्लेखपूर्ण धारणा उपस्थित करता यथा सहा रोमांच हो
 पाए, इस संय से बात कहना प्रथम वाली
 यानीवाली कहानी की तरह बात को सुदूर धारणा की कहकर
 धारणा करना ऐसी कहानियों में प्रायः देखा जाता है । एक भटके
 के बाद आकर्षण को अंतर्गत कर देना इस प्रकार के धारणों
 की एक विशेषता होती है । रायकण्ठवात की ‘रमणी का रहस्य’
 और ‘प्रसाद’ की ‘बाती’ धीरे-धीरे कहानी के धारणा में यह स्पष्ट देखा
 जा सकता है । इसी तरह चतुरसेन आर्य की रचना ‘जुनी’ में विषय
 बड़े धारणाक संय से उपस्थित किया गया है ।

“उसका नाम भठ रूद्रिण । धातु इस वर्ष से उस नाम को उल्लेख
 से भीर उस सुत को आँखों से दूर करने को सामक हुआ किरता
 हैं । वह वह नाम भीर सुत सदा मेरे साथ है । मैं करता हूँ, वह
 निरत है, मैं रोता हूँ, वह हँसता है मैं भर काँकता । वह जमर है ।

मेरी उल्लेखी कभी की बात पहिचान न थी । किसी में हमारी
 सुत प्रसा थी, सब एक के आहूत जाने थे, वह भी आता था । ”

कहानी के धारम करने का जो सामान्य धीर सामान्य रूप
 वह इतिवृत्त धीर विवरण से युक्त होता है। अधिकतर कहानियाँ
 किसी न किसी इतिवृत्त धीर विवरण
 हतिवृत्तात्मक धारम साम बीधी रहती हैं। इन्हीं धारमिक विवरणों
 धीर इतिवृत्तों में ऐसा भी हो सकता है कि
 सेकड़ अपने मूल भाव को उपस्थित कर दे जैसे प्रेमचंद की 'तला'
 कहानी में। जिन कहानियों का धारम इस प्रकार होता है उसमें रोप
 कथा धीर माटफीयता तो अवश्य कम होती है, पर परिचय-वग सुस्पष्ट
 हो जाता है। प्रेमचंद न इस विषय की धम्मुठ समता थी। उनकी
 कहानियाँ 'ईंगाह' 'दो बीसों की कथा सुजान भगत' इत्यादि में
 विशेषतः इतिवृत्तात्मक धारम का सुन्दर योग मिलता है। वस्तुतः
 इस पद्धति के धपगाने में कौशल अपेक्षित होता है क्योंकि ऐसी रचनाओं
 में पूरी धासका रहती है कि कोई विवरण धीर इतिवृत्त की उमझन में
 न छँसना चाहे धीर इसलिये कहानी की ही छोड़ बैठे। सामान्य धर्मि
 धर्मि का विचार किया जायगा तो इतना धन्य ही स्वीकार करना होगा
 कि तुलाना में इस प्रकार की धारम-पद्धति पाठकों में कम उत्साह धीर
 धारमिक उत्पन्न कर सकेगी क्योंकि इतिवृत्त धीर विवरण में एक प्रकार
 की स्वाता होती ही है, केवल सिद्धहस्त लेखक ही अपने रचना-सौधर्म से
 किसी प्रकार पढ़ने का धाप्रह उपस्थित कर सकते हैं।

(सुजान भगत)

सधे-साधे विज्ञान धन धाम धाठे ही धर्म धीर कीर्ति की
 धीर लुहते हैं। धर्मिक समाज की धीर्ति के पदार्थ धपने धीग विज्ञान
 की धीर धदी धीरधे। सुजान की लेखी में कई धास से कंचन
 धरस रहा था। सेहमत तो धर्मि के सभी विज्ञान करते थे, पर
 सुजान के धंरना धदी थे। ऊपर में भी धाना धीर धाठा तो
 इधु न-इधु पैदा हो ही जाता था। तीव धर्म धगातार धध धगती

गई। उधर गुड़ का भाव लेना था। कोई बो-बाई हजार हाथ में
 था गपु। पत्त, बिच की वृत्ति जर्म की घोर मुक पकी।
 सापु संतो का आदर-सत्कार होवे खगा, हार पर पूनी जलन
 खयी, कानूनागे हवाक में जाते, ली सुमान महतो के बीपाख में
 उधरते, हपके के देह-उत्सैविल, बातेहार शिपा-विभाग के अफसर,
 एक-एक उस बीपाख में पका ही रहता। महतो मारे
 लुगी के पूंके न समाते। अग्य भाग। उनके हार पर जब
 इतने बड़े-बड़े हाकिम आकर उधरते हैं। भिन हाकिमी के
 सामने उनका मुँह न खुलता था, उन्हीं की अन्न महतो-महतो
 कहते जयाव सुखती थी। कमी-कमी मज्ज-भाव हो जाता।
 एक महारमा ने डीख अण्डा देखा तो गाँव में आघन बना
 दिया। गाँवे घीर बरस की बहार बपने लगी। एक डाकक
 आई, मंत्रीरि मँघबाये गये सख्तंग होने लया। यह लप
 सुमान के दम का जलम था। घर में लोको हूब होता, मगर
 सुमान के कंड लखे एक बूँद जाने की थी अस्म थी। कमी
 हाकिम लोग चलते, कमी महात्मा लोग। कियान को हूब-की
 से क्या मठघब, उसी ली रोटी घीर साग आदिपु। सुमान की
 बजता का अन्न पारावार न था। सबके सामने बिर छुआपु रहता
 कहीं लीग यह व कहिये लगे कि अन्न पाकर इसे धर्मक हो गया है।
 गाँव में कुछ लीम ही लुपुं धि, पडुठ से रोतों में पाकी न पहुँचता था,
 खेती मारी काठी थी, सुमान ने एक परम लुपुं घीर पकवा दिया।
 लुपुं का विवाह हुआ, पञ्च हुआ, दसमोज हुआ। जिस दिन लुपुं पर
 पहली बार पुर चखा सुमान को माधो चारों पहार्य मिय गण। जो
 काम गाँव में किसी से न किया था, बाप-बादा के पुख्य-अताप से
 सुमान ने कर दिखाया।

कहानी के बुद्धिज्म में सबसे अधिक महत्वपूर्ण स्थल उद्यम
 पंथ है—बाहे कहानी में चरित्र की भन्नक हो बाहे परिस्थिति

धीरे घटना की । जितना भी विवरण कहानी में प्रसरित
रहता है, उसका साथ सौंदर्य पृथ्वीभूत होकर अन्त में आकर

— एक विशेष प्रकार की 'सुविदमशीलता'

अंत को स्फुरित करता है । विद्वान्त की दृष्टि

से इसी को प्रभावाम्बित और समष्टिप्रभाव

माना जाता है । यदि कहानी का कोई बिना पाठक होगा तो वह

अन्त के रूप को देखकर कहानी की पूर्ण की सारी गतिविधि

को समझ से सकता है । आरम्भ की तरह 'अन्त के विषय में

भी विचारले की अनेकानेक बातें हैं । लेकिन एक बात प्रमाण है

कि आरम्भ और अन्त का पूर्ण अनुमान अत्यंत आवश्यक होता है ।

ऐसा कोई नहीं कर सकता कि आरम्भ करे प्रेमचन्द की तरह और

अन्त करे प्रसाद की तरह । जोअने से भी ऐसी स्थिति नहीं मिल

सकती । इसका मुख्य कारण यही है कि लेखक की अभिरुचि और

आकांक्षा के अनुसार रचना का गठन होता है । कसाकृति के भीतर

लेखक का व्यक्तिगत धना रहता है । इसलिये जैसी जैसी आरम्भ

में दिखाई पड़ेगी उसी का प्रकृत रूप अन्त में भी होगा । इस प्रकार

'आदि' और 'अन्त' में सीसीयत कोई मिस्रता नहीं दिखाई पड़नी चाहिए ।

विषय की पुनरा का शोचन 'अन्त' का प्रयाण सदय है । जो

कहानी कही गई, जिस विचार अथवा भाव का आरम्भ किया गया

जिस अरिभ अथवा घटना की अन्तक दिखाई

पूर्वता-शोचक गई उसका अन्त क्या हुआ ? वह किस

रूप में एक निश्चय पर पहुँची—इसका

आभाव अन्त में साफ-साफ मिल जाना चाहिए । अरिभ और परि

स्थितियों से प्रेरित होकर, किस पाठकवचन में लिखने क्या किया

इस सम्बन्ध में उत्पन्न जो भी अनुभव या जिज्ञासा होती है उसका

पूरानुपूर समाधान अन्त में जाना ही चाहिए । ऐसा भी हो

सकता है कि समाधान अथवा जिज्ञासा-वृत्ति इष्ट न हो तो फिर

'घन्त' ऐसा प्रबन्ध होगा कि कल्पना और अनुमान को इस रूप में बनाए कि घाने के रूप की छाती चिखना स्पष्ट हो जाय। सामान्यतः इस प्रकार के कल्पना और अनुमान को उद्बुद्ध करनेवाले 'घन्त' अधिक भावुक और परिष्कृत पाठकों के लिए ही होते हैं। किसी भी प्रकार की कहानी में 'घन्त' प्रचलित संयुक्त इतिवृत्त का सारमूर्त संघ होता है। यहाँ धाकर कहानीकार और पाठक का सम्बन्ध समाप्त हो जाता है।'

कहानी का समाप्ति-स्वभाव भी सज्ज और सधु प्रसारणापी होना चाहिए। कारण-कार्य के विस्तार से तो पाठक का मन घोर

धियरुपि समी रहनी है, पर परिणाम का

अनुप्रसारी संकेत मात्र पकट होता है उसके

घन्त विस्तार में आक्षेपण की कोई वस्तु नहीं

रह जाती। आत्मस्वकता इस बात की

प्रबन्ध रहती है कि बात साफ हो जाय। घन्त का बोध या

अनुमान होते ही बिना पुस्तक पर छ उचट कर कल्प के फिर की

एक हीतर जसा जाता है। फिर दाहर पश्यन की कोई बात

तो रह नहीं जाती—इसलिए कहानी का घन्त विस्तार ही आकस्मिक

और सधु होना उतना ही रचना-कीर्तन उच्छा मानुम पड़ेगा। इत

रबस पर धाकर न तो किसी प्रकार के विवरण को उपस्थित

करना समीष्ट होना चाहिए, न परिणाम के विस्तृत परिचय देने

की न किसी प्रकार के मनोवैधानिक विस्तोषण के अङ्कुर में

पड़ना चाहिए और न किसी प्रकार के अपेक्ष प्रबंध फैलाने

की ध्यन की जानी चाहिए। साथ ही यह भी ध्यान देने की बात होनी

चाहिए कि कहानी में उठरें पर कोई समस्या प्रथम प्रस्तुत

काई सम्या उत्तर यहाँ धाकर न देनाका जाय। यहाँ तो ऐसा

सीधा और सधु इतिवृत्त हो कि सम्पूर्ण चरित्रों की स्थिति को एकरस

असाकलित कर दे घन्त ही प्रकार के निश्चय प्रथम निरपन

बोधक किसी काय की व्यंजना पात्र के संवाद और चरित्र से व्यक्त होते हैं। यहाँ यह उचित करना मानस्यक है कि कहानी में ऐसे भी कुछ कथानक हो सकते हैं, जिनमें पूजता का उचित करनेबासा कोई सारांश ही अपेक्षित न हो। जिन कहानियों में केवल विशेष प्रकार का कोई पृथक्-विधान ही राज्य होता है, वहाँ अंत में निश्चय किंतु रूप में प्रति फलित विद्याया जायना। मोहनदास महातो 'बियोगी' की कहानी 'पॉथ मिनाट' में इसी प्रकार की बात विस्तार देती है।

सारांश रूप में कहा जा सकता है कि कहानी का एक समाप्ति स्वयं होता है। न तो उद्य बिंदु से माने कहानी का शक्ति है और न उसके पूर्व छोड़ी जा सकती है। इस बिंदु का ध्यान जो लेखक जितना ही अधिक रखता है उसकी कहानी जितनी ही अधिक रूचना चातुरी से पूरा मासूम पड़ती है। इसके लिए यह आवश्यक नहीं है कि लेखक का यद्य और उसकी कीर्ति इस स्थिति को बचाने में योग दे सके। ऐसा हो सकता है कि लेखक वे प्रकृत भी लेखक इस रचनात्मक मानिकता को ठीक से न समझ या पररा सके।

यद्य चोड़ा विचार उन रूपों और पद्धतियों का भी कर लेना बाह्यिक धिनका प्रयोग कहानी का अंत करते समय लेखक कमाकारों ने किया है। जितने भी ऐसे रूप हो सकते हैं उनमें

राष्ट्रीय अंत कहानी की समाप्ति का मातृकीय अंग अपने व्यापक प्रकृत होता है। धारम के मातृकीय

अंत में संवाद-बैतक बैसा मनोरंजक मासूम पड़ता है बैसा अंत नहीं। अंत-ध्वन में विषय की संपूर्णता से संभूत मस्तिष्क और हृदय का जो संघन बनता रहता है उसमें बावैतक्य के लिए अधिक स्थान नहीं रह जाता। वहाँ धावस्थरता इस बात की रहती है कि बात तो बोड़ी हो लेकिन मातृक-अंत क लिए वह तीव्र सहीपन का काम करे। इसलिये मातृकीय अंत का धात्वर्ष संवाधात्मक नहीं

मानना चाहिए। यों तो कुछ श्रेष्ठ कविकारों ने सन्ने संवाद के साथ कहानी का घंठ कथया है। परंतु उस स्थल पर सन्ने संवापों में न तो कोई कमत्कार दिखार्ई पड़ता है न कोई संविदन का प्राग्रह, वैसे मेमर्बद की कहानी 'नया' में।

माटकीय घंठ में रॉरवे की घात चित्र-विधान है। यह चित्र विधान बाहे वियागत हो जसा 'मसाह' की प्रनैकालेक कहानियों—'नीरा' 'नूरी इत्यादि—में दिखार्ई पड़ता है, मयबा बातावरन का ऐसा सजीव चित्रण हो जो मानानुरूप चित्र को स्फुरित करने में योग है वैसे—अजोब की कहानी 'रोझ' में मयबा मसाह की कहानी 'मामगीत' में। घातकिक निरूपण और उसकी अनुभावगत व्यंजना के साथ कहानी की कमत्कारमयी समाप्ति का सिद्धरूप मसाह की दो कहानियों—'पुरस्कार' और 'शुंदा' में देखा जा सकता है।

(पुरस्कार)

मधुधिका सुझार्ई गई। वह पागल-सी आठर पड़ी हो गई। कीशखमेश ने पूजा—“मधुधिका तुझे जो पुरस्कार देना हो मॉप।” वह सुप रही।

राजा ने कहा—“मेर चित्र की जितनी देती है, मैं सब तुझे देता हूँ।”

मधुधिका ने एकवार बंदी कल्प की धोर देखा। उसने कहा मुझे कुछ न चाहिए। अठप हँस पड़ा। राजा ने कहा—“नहीं, मैं तुझे आकरय दूँगा। मॉप ले—”

“तो मुझे भी प्राणबंद मिछे।” कइती हुई वह बंदी कल्प के पास जा लगी हुई।

(शुंदा)

बगदक सिद्ध न बखकार कर चेतसिद्ध से कहा—“जया आप देखते हैं? बखरिये बोंगी पर।—उसठे पावों से रक के फुहारे फूट रहे थे। बखर आरक से तिलंगे भीतर जाने लये थे।

सेवसिंह ने बिड़की से उतरते हुए देखा कि बीसों तिखनों की संवीनों में वह अविचल लड़ा होकर लड़वार खड़ा रहा है। मन्वद के कहान सत्य शरीर से गिरिक की तरह एक की पारा यह रही है। गुंडे का एक एक धंग बन्द कर वहीं गिरने लगा। वह काशी का गुंजा था।

जिन कहानियों में इतिवृत्त की प्रधानता होती है, उनका अन्त भी इतिवृत्तात्मक ही होता है—सामान्यतः यही रूप अधिक प्रचलित है। इसमें या तो चरित्र का उत्कृष्ट स्थापित इतिवृत्तात्मक अन्त कर लेने के साथ कुछ यादों उगी से सम्बन्ध घासे घोर कही जाती है जो कि पुरक इतिवृत्त के रूप में रहती है जैसे—प्रेमकण्ठ की कहानी 'सुत्राम भगत' में मयया प्रसाद की रचना 'मनुष्या' में। इसी तरह यन्त्र कहानी के अन्त में घासे-घासे कोई महत्वपूर्ण चटना दिखाई गई है तो फिर उची चटना के प्रभाव-विस्तार को लेकर इतिवृत्त के रूप में उपस्थित करना सगता है, जैसे प्रसाद की कहानी अर्धवी में घोर राधाकृष्ण की 'मीना' में। विद्यमूरबाय शर्मा 'कर्मिक' की प्रसिद्ध कहानी 'ताड़' में भी यही रूप दिखाई पड़ता है। इस प्रकार इतिवृत्तात्मक अन्त के भीतर कारण रूप से कही चरित्र हो उभरा है और कही घटना। उक्त कहानियों के अतिरिक्त प्रसाद की 'बिजया', कर्मिक की 'दुक्के बाघर' और मुदयन की 'एशेष का सखायी' कहानियों में भी इस प्रकार के रूपों को देया जा सकता है।

इन इतिवृत्तात्मक अन्तों को देखकर ऐसा मानना पड़ता है कि कुछ कहानीकार प्राचीन कविबारी परम्परा का पालन करते हैं—जहाँ अन्त तक घासे-घासे कहानी कहनेवाला कहने सगता है—“तैसे बबका राजगद मीठ बैसे ही सब का लींटे” यथना “राजा राणी के

मिथान से सब लोग बहुत प्रसन्न हो गए और बड़ी धूम-धाम से ब्रह्म निम्नरा और बल्लभ समाजे का प्रबन्ध किया जाने लगा ।^१ वस्तुतः यदि विचार किया जाए तो यह स्पष्ट ही जायगा कि समाधि-रूपस की इन पद्धतियों में बासफोबित विभावावृत्ति के धामन अधिक दिखाई पड़ते हैं, इसलिये विकसित और परिष्कृत पद्धतियाँ पाठकों को यह अधिक प्रिय नहीं भासूम पड़ सक्ता । इस प्रकार के 'घण्ट' न छो पाठ्यक होते हैं और न हृदय में किसी प्रकार की चठना जपानेपाव । निताम्य प्राभुनिक लेखको में घण्ट को बुद्धि उत्तेजक बनाने की पूरी तत्परता दिखाई पड़ती है, परन्तु घनी तक के पुपाने सभी कहानीकारों में विषय की पूर्णता के साथ इतिवृत्त देने की परिपाटी गृहीत होती जाती सा रही है । इस प्रसंग की उल्लेख सभी कहानियों में इसी रूप का विहार मिलेगा —

(१)

“बह साय से जानेवाली वस्तुओं को बटोरने लगा । एक गहुर का और दूसरा कब का, दो बोय हुए ।

धराबी ने पूछा—वू किसे बठायेगा ?

“किसे बूदो ।”

“अच्छा, तेरा भाप की मुखको पकड़े ली ।”

१ 'The story should conclude unless there is special reason why it must not. But it should not be carried far past the climax and smoothed down into dulness and conventionality. And so they were married and lived happily ever after' has gone out of date; but the practice still survive in endings such as these: "In deed, the whole family were delighted to have Robert in their home and he never forgot the debt of gratitude he owed to them

“कोई नहीं पकड़ेगा, चलो भी । मेर बाप मर गए ।”
 शराबी धारचर्च से उसका मुँह देखता हुआ कुछ उदास बन गया
 ही गया । पाकक ने गहरी साँस ली । शोमी कोठरी खोप कर पाठ पढ़े ।”
 “मनुष्या”—प्रसाद

“शामेरवारी एक सप्ताह तक बुलार में पड़ी रही । कमी-कमी
 बोर से विपत्ति उठती थीर कहती— देणो देणो बह गिरा जा रहा है ।
 उसे बचाओ— शीको—मेरे मनोहर को बचा लो । कमी से कहती—
 देहा मनोहर मने तुम्हे नहीं बचाया । हाँ हाँ मैं चाहती तो बचा
 खरूती भी—मने देर कर ली ।—दूसी प्रकार के प्रयाप से किया
 कारती ।

मनोहर की रॉंग उलड़ गई थी । रॉंग बिटा ली गई । बह कमठार
 फिर धारपी असली हासत पर आने लगी ।

एक सप्ताह बाद शामेरवारी का मर कम हुआ । अन्धी तरह होय
 आने पर उन्होंने पूछा— मनोहर कैसा है ?

शामबी हास ने उत्तर दिया— ‘अप्यु है ।

शामेरवारी—उसे मेरे पास ले आया ।

मनोहर शामेरवारी के पास आया गया । शामेरवारी ने उसे बड़े प्यार
 से हृदय से लगाया । आँखों से आँसुओं की कमी खग गई, दिवकिर्षी
 से गया दूँब गया ।

शामेरवारी हृदय दिनों बाद पूर्ण स्वस्थ हो गई । अब वे मनोहर की
 बहन सुन्नी से भी हृदय धरि पूछा नहीं करती । धीरे मनोहर का अय
 अयय प्राणाधार हो गया है । उसक बिना उन्हें एक चय्य भी कम नहीं
 पड़ती ।

में देखा जा सकता है। इन कहानियों में एक ही भूमिका पट प्रथम दृश्य से काम चलाया गया है। अतएव समु प्रसारवासी जो कहानियाँ हेली हैं और जिनमें किसी बरिष्ठ माय प्रकवा बटना की एक मूलक का देना ही राक्य रखा है उनमें विषय के एकत्व के साथ-साथ संकलनत्रय का भी योग देखा जा सकता है। इस योग के कारण एक माय प्रकवा व्यापार की सिद्धि एक ही देश और काम में एक ही पट पर विभित दिखाई जाती है। इसलिये ऐसी कहानियों में केवल उद्दीष्ट प्रभाव का ही रूप मिलेगा। प्रभावों के घनिष्ठ होने की क्रिया का विस्तारक्रम वहाँ दृष्टियोजक न होगा। विचार की बात यहाँ यह है कि ऐसी कहानियों में न तो कथा की घनिष्ठता रहती है न सपर्य-विनयन द्वारा किसी इतिवृत्त के प्रसरित होने का प्रश्न होता है। इसलिये इनमें 'घादि' और 'प्रंत' के बीच की किसी 'अरम-खीना' प्रकवा मध्यविन्दु के विचार करने का कोई अवसर ही नहीं पड़ता। ऐसी कहानियों के कथानक में विफोप का रूप नहीं बनता अपरिच्छिन्न वहाँ 'घादि' और 'प्रंत' के बीच में दूरी नहीं रखी जाती केवल किसी परिस्थिति प्रकवा दृश्य की सिद्धावस्था ही सामने लाई जाती है। यह तो ही सकता है कि इस सिद्धावस्था को विभित करने के पहले कुछ प्रारम्भ का संकेत मिल जाय।

इनसे निम्न कहानियों का द्वारा बर्णन यह होता है जिनमें कथा माय प्रकवा इतिवृत्त घनिष्ठ प्रसारमय होता है, और जिनमें कारण

मध्य माग

काय परिणाम का विविध और प्रसिद्ध संयोजन मिलता है। इनमें कुछ परिस्थितियों से संनद्ध होकर कथानक का स्वल्प तीव्र

पवि से उत्कर्ष की ओर जाता है और वहाँ पहुँचकर अपने पूर्ण रूप का प्रसार करता है। वही पहुँचकर पाठक का चित्त कुछदूर तक विनाशा प्रकवा उद्घापोह से भर जाता है और वह कहानी के पर्यवसान के दिग्गम में कल्पना और अनुमान के बाट पर ताता प्रकार से विगत करने लगता है। अतएव लेखक ऐसे ही स्वयं पर कहानी

के मूलभाव का भी संकेत देते हैं। 'सुजात मगत' में 'जाप चीवन' में वड़े मूल्य की वस्तु है' इसी मूलभाव का प्रतिपादन किया गया है और यह वास्तु तिस स्वयं पर कहा गया है वहीं कहानी का चरम-उत्कर्ष भी मानना होगा। इसी तरह 'दिल्लिमरगाय' पर्या 'कौटिल्य' की कहानी 'तार्क' में भी चरम-उत्कर्ष और भाव-कथन का संक्रमण हो गया है। 'प्रेम से ममत्व और ममत्व से प्रेम की सृष्टि होती है' यह तिस स्वयं पर कहा गया है वहीं कहानी का मध्य-बिंदु है।

मुनिविष्णु धारम और घत के बीच मध्यबिंदु यथवा चरम उत्कर्ष को देखने के लिए उक्त कहानियों के धारितरिक्त इंगार्थक बोधी की मयलीक प्रेमार्थ की 'पेक्ट' और मध्यबिंदु का 'अलि समाधि' यथवा 'प्रसाद' की 'देवरथ' स्थान बिर्सेय और 'मधुवा कहानियों को देखा जा सकता है। इनमें धारम और घत का संतुलन करता

हुआ 'मध्य' शब्दों बंग से निकलित हुआ है। यह मध्यबिंदु यही सृष्टित होता है जहाँ कहानी का धारि और घत प्रायः संतुलित-सा होता दिखाई पड़े लेकिन इसकी स्थापना का कोई स्थिर स्थान नहीं बताया जा सकता। कतिकार की प्रतिभा इतने गए-नए प्रकार के मोड़ निरंतर तिरा करती है कि इस विषय में कोई स्थायी सिद्धांत बनाने से काम नहीं चल सकता। न जाने कितने लेखक हैं जो कि इस चरम उत्कर्ष और मूलभाववाले स्वयं को धारि-नीचे बहुत-कुछ प्रस्ताव करते हैं कि भी धारम में कोई किकति नहीं धारि पायी। घतएव कहानी के समस्त विस्तारक्रम में यह मध्यबिंदु यथवा बिजाता और मुद्रा के पूर्णतया प्रबुद्ध होने का स्वयं कहाँ होना चाहिए और कदा कि स्वयं पर इसकी स्थापना अनुचित हो सकती है—इसका कोई निदधयतमक सिद्धांत नहीं स्थिर किया जा सकता। यन्त कतिकारों की विभिन्न रूप नायों में इनके व्यवहार की धरनी-धरनी पृथक पद्धति मिलती है।

के मूलभाव का भी संकेत देते हैं। 'सुजान भक्त' में 'साध जीवन में बड़े महत्व की वस्तु है' इसी मूलभाव का प्रतिपादन किया गया है और यह वाक्य जित स्वप्न पर कहा गया है वहीं कहानी का चरम-उत्कर्ष भी मानना होगा। इसी तरह विदर्भ-मरनाथ वर्मा 'कौशिक' की कहानी 'वार्द' में भी चरम-उत्कर्ष और नाद-कथन का संक्षेप हो गया है। प्रेम से ममत्व और ममत्व से प्रेम की मूर्ति होती है यह जित स्वप्न पर कहा गया है वहीं कहानी का मध्य-बिंदु है।

मुनिद्विष्ट धारम और घत के बीच मध्यविन्दु धरवा चरम उत्कर्ष को देखने के लिए उक्त कहानियों के अतिरिक्त इगाचंद्र जोशी की 'मपलीक' प्रेमचंद्र की 'ऐक्य' और मध्यविन्दु का 'अग्नि समाधि' ममता 'प्रसाव' की 'देवर' स्थान विवेक और 'मयुवा कहानियों को ऐसा जा सकता है। इनमें भारत और घत का संतुलन करना हुआ, 'मध्य' पक्षों के बीच निकलित हुआ है। यह मध्यविन्दु वहीं स्फुटित होता है जहाँ कहानी का अन्तिम और अंत प्रायः संतुलित-आ होता दिखाई पड़े लेकिन इसकी स्थापना का कोई स्थिर स्थान नहीं बताया जा सकता। कठिनाई की प्रतिभा इतने नए-नए प्रकार के मोड़ निरंतर सिखा करती है कि इस विषय में कोई स्थायी सिद्धांत बनाने से काम नहीं चल सकता। न जाने कितने शेषक हैं जो कि इस चरम उत्कर्ष और मूलभाववासे स्वप्न को धार-धीरे बहुत-बहुत पसका लते हैं फिर भी सौंर्य में कोई विकृति नहीं आने पाती। पठएण फदापी के समस्त विस्तारक्रम में यह मध्यविन्दु धरवा विज्ञाता और कुतूहा के पूरातया प्रबुद्ध होने का स्वप्न कहाँ होना चाहिए और कहाँ जित स्वप्न पर इसकी स्थापना अनुचित हो सकती है—इसका कोई निष्पत्तात्मक सिद्धांत नहीं स्थिर किया जा सकता। धष्ट कठिनाई की विभिन्न रच नाओं में इनके व्यवहार की अपनी-अपनी पृष्ठ पद्धति मिलती है।

इस विषय में सामान्य दो बातें बही ना सजती हैं। पहली बात का सम्बन्ध कहानी के कथानक तथा से है। इसमें धारम्भ और अन्त के बीच का सारा प्रचार बरम-सीमा प्रथमा मध्य

मध्यविन्दु
का धीमन्वं

विन्दु का श्रीकृष्ण मानना चाहिए इस बीच का सारी बीड़ में बही भी उक्त मध्यविन्दु की स्वानता हो सजती है। उचित तो यही

है कि धारम्भ और अन्त के मध्य में उक्त का कन सजु हो। धारम्भ से बमन्तर कहानी का मूल विषय बाहे बह बरिय हा बाहे अन्तमा धीर प्राय—एक मन्त्र से धीर एवनिष्ठ होकर प्राय बज्जा है। इस बज्जे में सनै-सनै बस पनि तीव्र होटी जाती है, उनी प्रकार प्रभाव भी सिमित कर बनीमूठ होना जाता है। इस विस्तारक्रम में कथानक त्रिष समय तीव्रतम पनि स पयवसात की धीर मोड़ लेता है, उनी को कहानी का मध्यविन्दु समझना चाहिए। इस हम कहानी के मरन की उष्णता

बुझि कह सजत हैं। जो परिष्कृत बुद्धिमान सहज होते ब इसके उष्ण स्वरूप को पहचान कर उसके महत्त्व का ज्ञान कर सजत हैं। सामान्यता सेवेरी के लेखक भी इस मध्यविन्दु क महत्त्व-निष्पन्न में कुछ धानाकारी कर गए हैं। लेकिन उनके कथानक के इस अय का महत्त्व बन नहीं

समझना चाहिए। बसुन्त मयाप तो यही है कि कुञ्ज समीपक का ध्यान कहानी के सम्पूर्ण प्रसार में इसी मोड़ की धीर प्राकट्य होना है। इस बुयाव प्रथमा मोड़ क ऊपर गड़े होकर हम पूर्व में बुद्धिमान को स्थिर होठे भी देखते हैं धीर साथ ही अन्तमूग नियति का साथ

धीमन्वं हमारे सामने सज हो जाता है। यदि इस सदा का मन्त्रा म्प्र अमन्त्रे का मोय मिस सजे तो यह सज ही सजता है कि इनक पूर बना ना क्या धीर कंया कन र्हा होया धीर ध्या का कन कंय

बसेबा। यदि बरिय स कहानी का धारम्भ हुआ है तो मध्यविन्दु मन्त्र उय स्वय पर धाना चाहिए बही पर्वण कर बह बरिय मन्त्र पूर्व क संपूर्ण संविध बन को लेकर विपुलमति ग सज की सज सज

है भयका मुक़ता है—जैसे 'प्रसाद' की कहानी 'गुप्ता' में। यदि कहानी का प्रतिपाद्य क्रिया भयका क्रम की बस्यता में नहीं है और केवल स्थी भावगत विनांकन में ही कहानी का पर्यवसान होना है, तब मोड़ के उपरान्त क्रिया का वेप ही बिधुत्वपति से फ़ैसता नहीं मिलेगा बल्कि कर्म-विहीन उची भाव की छाया का ही विस्तार होता प्रस्त तक जमा प्राणा भिसका आभोरूपूर्ण रूप पूर्ण शरम सीमा भयका मोड़ पर विजाई पड़ रहा होगा—जैसे पदिय वैचन शायी 'जय' की कहानी 'जसकी मा' में भिसठा है। अब विषय को स्पष्ट करने के अभिप्राय से उन लोगों कहानियों के सम्बन्धियों का निरूपण करके यहाँ देना चाहिए।

“तुझारी मन्दाक के पास पैठ गई। मन्दाक ने कहा—“क्या तुमसे डर लग रहा है ?”

“बही मैं कुछ पज़मे घाई हूँ।”

‘क्या ?’

“क्या” “बही कि कमी तुम्हारे रूप में ।”

“उसे न पूछो तुझारी। टरुष को बेकर समझ कर ही तो उसे हाप में बिध फिर रहा हूँ। कोड़े तुम कर वेता—कुबलता—धीरता—उदाकता। मर जाने के बिध सप तुम तो करता हूँ। पर मरने नहीं पाता।

“मरने के बिध भी कहीं छोड़ने जाना पड़ता है। आपको कधी कब हास क्या मात्सुम। व जाने कधी मर मैं क्या हो जाय। उकर पसद होने याका है कबा; मकारस की घबिषी जैसे कदने सीपती है।”

‘कोड़े मरु बात इपर हुई है क्या ?’

“कोड़े इस्टिंग साहब आया है। मुबा है कि उसने सिपाठायाद पर सिबंगों की कपनी कब पहरा पैठ दिया है। राजा वेतसिंह और राजमाता पका बही है। कोड़े काई कदता है कि उनसे पड़ कर कसकसे भेजने ”

‘क्या पका भी ‘रबवास भी बही है।’ “मन्दाक अभीर हो उठ बा।

"क्यों बाबू साहब आज शमी पत्रा का नाम सुनकर धाप की धौंधी में धौंस क्यों धा गए ?"

सहसा मन्हेरू का मुख भयावह हो उठा। उसने कहा—"बुप रहो, तुम उलझे जानकर क्या करोगी।" वह उठ खड़ा हुआ। वहिग्व की तरह न जाने क्या खोजने लगा। फिर स्थिर होकर उसने कहा—
"दुबारी ? जीवन में आज यह पहला ही दिन है कि पूर्वात रात में एक की मेरे पसंग पर धाकर बैठ गई है, मैं शिरकुमार ! अपनी एक प्रतिष्ठा का विनाश करने के लिए सैकड़ों असुरय, अपराध करता फिर रहा हूँ। क्यों ? तुम जानती हो ? मैं कियों का घोर विरोधी हूँ और पछ ! किन्तु उसका क्या अपराध ? धापाचारी बखरमठ सिंह के कंधे में दिवुधा मैं न उतार सता। किन्तु पत्रा ! उसे पकड़ कर घोंरे कंधे पर भेज दोगे ! बही ।

मन्हेरू सिंह उमंग ही उमंग था। दुबारी ने देखा मन्हेरू धीपकर में ही बट बूझ के नीचे पहुँचा और गंगा की उमकती हुई धारा में धौंगी खोस ही—उसी क्षणकार में। दुबारी का हृदय धँप उठा।

"गुंका"—प्रसाद

'गुंका' पीपंक कहानी में केवल तीन पन्च अपना परिच्छेद है और उक्त उद्धरण द्वितीय खण्ड का अन्तिम स्पस है। इसके पूर्व का समस्त प्रसार केवल प्रधान पात्र मन्हेरू सिंह के व्यक्तित्व के धनूटेपन को उभाड़ने में लगा है, उसके चरित्र का मम क्या है इसे वहाँ सोसा गया है—उसके मुग्धापन की मीन में धौर उसकी निर्भीक साहसिकता के भीतर किसी नारी के प्रेम की निर्मम निकलता परी हुई है। धारमिक जीवन की उची पीड़ा से पीड़ित होकर वह अपनी जान को हथेली पर लिए फिरता है। जिसने इस पीड़ा को दिया है उसी का आज भयंकर नाश होने जा रहा है—इसका जब उसे अनुमान होगा है तो वह उदीप हो उठता है उसका समुधा धन्यर्नपठ होताइत कर उठता है। यही है उसका चरित्र और जीवन

का वह खूब प्रारम्भ होता है जो उसे घमर बना देता है जिसके कारण वह दुर्बल बीरता के लिए प्रस्तुत होता है और घातमन्त्रियों द्वारा अपना और राजमाता पद्मा के दारुणिक प्रेम को उत्सवमय बनाने के लिए उन्मत्त होता है। यही पर किम् यह निश्चय के आभास पर वह पल्ल में टुकड़े-टुकड़े होकर कटता है फिर भी पत्ता को बचाता है और अपने प्रेम की भावना को पूर्णतः प्रदान करता है, अपने चरित्र को निखारता है। इस स्वस से कहानी का शायद वैय तीव्रतम रूप कारण करता है और यहाँ से अन्त तक पारिविक विकास भी विद्युत् प्रान्तों से भर उठता है। इसलिए कहानी के इसी अंश को सम्मिलित मानना चाहिए।

x

x

x

“मगर, उस दिन उसकी कमर टूट गयी, जिस दिन खैरी अदाकत ने भी छाक को, उस वंगक बैठे थे तथा दो और बहनों का फौसी और दस को इस रूप में सात वर्ष तक जी कड़ी सजाएँ थीं।

वह अदाकत के बाहर मुझी पड़ी थी। बच्चे बेधियाँ पमाते, मस्ती से झूमते, बाहर भापे। सब से पहले उस वंगक की गजर उस पर पड़ी—

“मैं! वह मुझभापा—“मैं ही तो इच्छा दिला बिना कर देने गबे-सा लगा कर दिया है ऐसा कि फौसी की रस्ती हूँ जाय और इस घमर के घमर बने रहें। मगर तु स्वयं मृत कर फौसी हो गयी है। क्यों पगली—तेरे किए घर में आना नहीं है क्या ?—

“मैं!” उसके आक से कहा—“तु ही बकरी बर्ती भाभा, जहाँ हम लोग जा रहे हैं। जहाँ से थोड़ी देर का रास्ता है मैं। एक फौस में पहुँचानी। जहाँ, हम स्वतंत्रता में मिलेंगे। तेरी गोद में लेनी। तुझे अपने पर बस कर इपर छे-उपर दीवते किरेंगे। समझती है ? जहाँ बड़ा आनन्द है।’

“आवेगी न माँ ?” बंगल ने पूछा ।

“आवेगी न माँ ?” आख ने पूछा ।

“आवेगी न माँ ?” पॉली-वूड-मास बो दूसरे बहकों ने भी पूछा ।
धीरे बह बकर बकर उनका मुँह ताकती रही—“तुम कहाँ जाओगे
बचो ?”

‘उसकी माँ—पाबलेक बेचन शर्मा’

‘उस’ की इस कहानी में माँ की मातृ भावना की तीव्रता और
सहज सरसता का स्वल्प प्रतिक्रमिक उभाड़ा गया है । पूरी रचना
चार बच्चों में विभाजित है । प्रस्तुत संघ चौबे सख्त का है । यहाँ तक
पहुँचने के पूर्व तक के विस्तार में सेखक न केवल माता के सरल हृदय
का यथार्थ चित्रण किया है । सास और उसके धर्म्य सुवक मित्र किसी राज
नीतिक पक्ष में इतनी तीव्रगति से भागे बड़ गए यह उसे नहीं मालूम
पड़ा । उसके प्यारे बच्चे ऐसा क्रुस कर सते हैं—यह संसार माने पर
सबका निष्कपण और प्रेमात्र बिना स्वीकार ही नहीं कर सका और उसे
दुःख विश्वास या कि मुकदमे में कुछ बम नहीं है । वे बच्चे नितांत रूप
के बोए हैं और उन पर किसी प्रकार की धाँक नहीं या सकती—यही
उसकी निश्चित धारणा थी । वह सरसा और अपक समाज और
राजनीति की बतबिबि से बिसकुस छोरी थी । बिपय और परिस्थिति
की गहनता का उस कोई ज्ञान नहीं था । सास और उसके धर्म्य सुवक
साथी जो मोला-मोसी या बन्दूक की धारें करते हैं, उसे वह ममतामयी
माता केवल पढ़े सिलों की दृष्ट-दृष्ट बकबक मात्र समझती है ।
बाबाजी के अभावह कथन और दासका प्रकट करने से भी वह निपीह
कुछ समझ नहीं पाती और मुकदमा के बीचन में भी अपने बच्चों की
केवल धारणी ही समझती है । ‘मसा फूस-से बच्चे हत्या कर सकते
हैं !—ऐसा कुछ उसके मस्तिष्क में था ही नहीं सकता । उसकी धन्त
तक नहीं विश्वास रहा कि यह सब पुलिस की जासबाजी है । अद्यतन

में जब दूध का दूध और पानी का पानी किया जायगा तब वे बच्चे बकर बेदाग हुए जायेंगे। परन्तु घंट में प्रत्यक्ष सिद्ध हुआ। फिर भी वह सरला कुछ समझ ही न सकी और बच्चों की उस्तास एवं उत्सर्ग मरी ध्वंम्योच्छ्वियों का मकार्य बोध उसे नहीं हो सका। वह बकर-बकर घनका मुह ताकती रही और सरस-सा प्रश्न करती रही—'तुम कहीं जाओगे पमसे ?'

यदि रचना-विधान का यथार्थ रूप समझने की चेष्टा की जाय तो बिना विशेष विचार के समझ जा सकता है कि इस स्थल पर घंट की समाप्ति हो जानी चाहिए और घागे की सारी कथावस्तु के लिए पाँचवें टंड का निर्देश होना चाहिए। यदि ऐसा कुछ नहीं भी होता तो भी कहानी का मध्य और परम सत्य का स्वप्न यही है क्योंकि उस गरीब सरला माता के ममत्व की निरीह स्थिति इससे बढ़कर और क्या हो सकती है। उसके प्यारे बच्चे फोटी के लिए पसे जा रहे हैं, वह न उतकी हुई, उस्तास और उस्ताह के स्वल्प को समझ पाती और न उसे स्थिति की गम्भीरता का ही बोध हो पाता। इसके धागे की कथाय उस बूढ़ी माता के ममत्व की विवृति मात्र है। भास का पत्र पाकर और सुनकर किछ प्रकार उसे धक्का लगा और किछ प्रकार उसके प्राण पक्षेक उड़ गए इती का धागे विवरण दिया गया है। घंट को स्थिर कर पाठक माता के संहृदय और सच्चे स्नेह की पुष्ता से धबाव रह पाता है। मध्य की भावापघटा घंट में धाकर पूर्णतया संतुलित दिखाई पड़ती है।

इस प्रसंग में जो दूसरी बात विचार करने की है वह है चरम सीमा और कहानी के दूधमास का संबंध। यों ता पहले कहा जा चुका है कि

कभी-कभी अतुर सैसक इन दोनों का संबन्ध
मध्य भाग और और दीक्षितपूर्व संयोग एक साथ ही बैठ
दूधमास का पार्थक्य लेते हैं परन्तु सिद्धांत की दृष्टि से इस प्रकार
की संगति को अनिवार्य नहीं समझना चाहिए।

मूखल दोनों ही धन्य-अन्य बातें हैं। चरम-सीमा का संबंध

कहानी के कथानक से है और प्रेरकभाव बनना मूलभाव का संबंध कहानी के प्रतिपाद से है। इसलिए ऐसा भी हो जा सकता है कि दोनों विशिष्ट हो जायें। सामान्यतः मूलभाव का छाया कथन कहानी के बीच में होता मिलेगा, पर इस विषय में कृतिकार की धर्मिकता ही निर्णायक होगी निवम नहीं। ऐसी भी कहानियाँ हैं जिनमें धारम करते ही मूल भाव का संकेत दे दिया गया है जैसे—प्रेमबंध की रचना तथा में। साथ ही ऐसी भी कहानियाँ हैं जिनमें लक्ष्य कथन घंटा में आकर दिया जाता है, जैसे—बुधवारतसाम बर्मा की कहानी 'परमात्म' में। धारम कहने का यह है कि बरमतीमा का मध्यभाग में स्पष्ट होना कहानी के संतुलन के लिए आवश्यक है, पर मूलभाव की स्वायत्ता अधिष्ठाति और विषय प्रसार के अनुकूल किसी प्रकार पर भी की जा सकती है।

कहानी रचना के सिद्धांतों का विचार करते समय एक बात प्रायः समझमत रूप में विचार्य पड़ती है कि मध्यभाग की अपेक्षा धारि और घंटा के महत्व की विवेचना बहुत अधिक की मध्य का महत्व पर है। इसके यह नहीं समझना चाहिए कि धारि और घंटा को पूर्वतया उभा देने के बाद बीच की सारी चीज़ को केवल कूड़ा-कचड़ा से भर दिया जा सकता है। मस्तुता बात इसके ठीक विरुद्ध है। धारम और घंटा का संयुक्त धारम व्यवसम्बन्ध रहता है मध्य की प्रसार-व्यक्ति पर। एक बस्यावनी कहानियों के विषय में तो नहीं कहा जा सकता परंतु प्रसिद्ध इतिवृत्तवाली जो कहानियाँ होती हैं जिनमें यह आवश्यक होता है कि धारम से बरमतीमा तक की संयुक्त बरमतीमा व्यवसा परिस्थिति योजना इस प्रकार सीढ़ी की तरह उभाई जाय कि कथा के विकास में प्रकृतत्व का पूर्ण समिन्ध हो सके और प्रभाव-समिति का रूप निरूपणा

1 *Maehowchie D: The Craft of the Short Story*

बने। इसके लिए अनिवार्यतः किसी प्रकार की सिद्धिदाता व्यवस्था या अतिरिक्त बातों के भरने की विष्टा इस अंत में नहीं करनी चाहिए। कहानी के उतारबासे स्वतः पर और अधिक सावधान रहने की आवश्यकता पड़ती है क्योंकि अरमसीमा से लेकर अंत तक की शीघ्र अपेक्षाकृत कुछ छोटी होती है। यहाँ अविचलनीयता का आग्रह अधिक निर्णयात्मक अथवा प्रभावशाली दिखाई पड़ता है। ऐसी स्थिति में अति निगमिता संज्ञ में इस बात के और भी बचाव की आवश्यकता रहती है कि निरर्थक अथवा अनावश्यक विषय न प्रवेश पा सकें।

संक्षेप में कहा जा सकता है कि आरंभ से अंत तक का अंतराल भी प्रसार कहानी में होता है। अंत में कोई स्वतः ऐसा नहीं रहता जिसमें निरर्थक और अनावश्यक बातों के लिए कहीं स्थान मिले। आरंभ से अरमसीमा तक की कड़ियों का तर्कपूर्ण अंत से अंत में और अरमसीमा से अंत तक के अंत को आशयपूर्ण बनाने में कहानीकार का अधिकतम लक्ष्य रहना चाहिए। अशुभप्रचारवासी रचना होने के कारण कहानी में एक भी अनावश्यक की बात बिना सीधे और सीधे ही उचित किए नहीं जा सकती। अतिरिक्त कहानी 'अंत से कहा या' में जो मुख्यभूमि का विवरणात्मक वर्णन बीच में फैल गया है, वह मात्रा से अधिक होने के कारण अतिरिक्त-सा हो उठा है। इसी प्रकार जब भी अंत का अन्तर्भाग कुछ अधिक विवरणात्मक बातों से भर जाता है, तब कहानी की एकनिष्ठता में कुछ-कुछ बाधा अथवा व्यवस्था लगता है।

चरित्र-चित्रण

साहित्य नाम है अभिव्यक्त होनेवाले जितने भी रचना-प्रकार अपनी स्वभाव-भेद हैं, उनका प्रधान उपजीव्य मानव है—अपने संपूर्ण सामाजिक

जीवन के साथ और अपने जीवन के विविध साहित्य में इन्हें-संचयों सुख-दुःख चरित्र-अपचरित्र के मातृक सहित । सभी प्रकार के कालों नाटकों उपन्यासों इत्यादि में मनुष्य के ही जीवन की

रक्षा एवं आलोचना का प्रतिबिम्बीकरण रहता है । मनुष्य की संपूर्ण आत्माओं और उनकी विविध भावनाओं का विकास साहित्य में ही पूर्णतया विवक्षित और स्थित होता है । साहित्य में उसके जीवन के संपूर्ण हास-विलास, सुख-दुःख की ही व्यवस्था अनेक रूपों में पाई जाती है । इस प्रकार वही मानव साहित्य का उपजीव्य है वही साहित्य उसका मूलतः सामाजिक विषय भी है, क्योंकि साहित्य की संपूर्ण संरचनाओं का सन्तोषित आस्वादन मानव ही करता है । साहित्य में अपने ही को अभिव्यक्त और प्रतिबिम्बित पाकर वैसे वह अनुसृत होता है और संतोष का अनुभव करता है उससे साहित्य और मानव का अयोम्य भाव प्रकट होता ।

एक बात ध्यान रखनी है कि साहित्य के विभिन्न रचना-प्रकारों में मानवीय सुख-दुःख का चित्रण और अनुकरण मिश्र-भिन्न प्रकार से

होता है। ये रचनाएँ अपने रचना-विधान और योजना प्रसार के अनुसार विषय को प्रस्तुत करती हैं। कहीं मानव-जीवन का उगमोत्थ और विवरण-आत्मक चित्रण दृष्ट होता है, कहीं रचना-भेद और उसके भीषण-वृत्त के केवल प्रमुख और महत्व-पूर्ण स्थलों का ही प्रकाशन होता है, कहीं ऐसा भी हो सकता है कि उसके महत्व के केवल एक ही घासोक-विन्दु पर घासी दृष्टि केंद्रित कर ली जाय। इस प्रकार रचना-विधान के प्राग्रह को मानते हुए विविध रचना-प्रकारों में व्यापक मानव का विविध रूप में और विविध दृष्टिकोणों से दर्शन होता है। उपन्यास में मानव-जीवन की नीला को जितना सुस-सेमने का प्रबन्ध प्राप्त होता है उतना रचना के अन्य प्रकारों में संभव नहीं। इस दृष्टि से मानवीय दृष्टि का जितना विस्तारमय रहस्य वहाँ उद्घाटित हो सकता है उतना अन्य किसी घासक संमत रचना-भेद में नहीं। अन्य विषय अपने क्रिया-रूप (Technique) संबंधी ढंठनों में ऐसे बरुके रहते हैं कि मात्रा से प्रतिक्रिया-धीर नहीं फेंक सकते। मानव-जीवन और चरित्र के चित्रण के प्राधार पर भी कहानी नाटक के घास जा पड़ती है क्योंकि नाटक में मानवीय इतिवृत्त के प्रसार में घाए हुए जितने महत्वपूर्ण और प्रभाव-घासी स्थल हैं उन्ही का वृंजन होता है और कहानी में ऐसे विघी एक घंघ को पूर्णता प्रदान की जाती है। इस तरह कहानी और नाटक की उद्घेस्य-धीर-धीर है। जीवन के किसी विशिष्ट घासोकमय स्थल के निर्वाचन की प्राकांसा रोगों में रहती है। तत्पठ घंठर यही रहता है कि एक घपने भीतर घनेक महत्वों को समेटता है और दूसरी किसी एक ही महत्व में सब वृंघ पा लेती है। घपने लक्ष्य की इगी भेदकता को लेकर एक नाटक कहा जाता है और दूसरा कहानी।

कहानी में घाकर मानव और उसका संघार बहुत महत्वपूर्ण हो उठते हैं, क्योंकि वहाँ उसकी रसकता ऐसी एकत्र विघायक ही

जाती है कि सभ्यतम में महत्तम निरुद्ध उठता है। बोझे से बोझे में अधिक से अधिक का कथन वहीं मिलेगा और साथ ही यह प्रकट होता रहेगा कि सपु से सपु भी अपने में कितना पूर्ण और कदाही में मायब मनोरञ्जक हो सकता है। जैसे ही कहानी में विषय का एकत्रण भयना एकदेशीयता रहे पर जब उठका विषय मनुष्य भयना उसका चरित्र होता है तो फिर उसका निरुद्ध भी ऐसा सुन्दर होता है, जैसा भय कित्ती बड़ी साहित्यिक रचना में हो सकता है। इस भय में कहानी का मानव कित्ती भय रचना के मानव से कम दर्शनीय भयना प्रभावोत्पादक नहीं होता।

कहानी में सबसे पहले विचार की बात यही उभय होती है कि उसका प्रेरक भाव क्या है। भय ही मनुष्य भयना उसके जीवन की खोजकर प्रेरणा और मिस ही कहीं से उठती है। ऐसी स्थिति में सबसे अधिक कहानी में अभ्ययन का विषय मनुष्य और उसका चरित्र ही है। इसलिए अधिकतर कहानियों में मनुष्य और उसके संभव विषयों का ही उद्घाटन प्राप्त होता है। इस विषय में कहानीकार धारम में विचार कर लेता है कि कहानी का मूलभाव मनुष्य रहेगा भयना मनुष्य द्वारा संवर्धित कोई विशिष्ट कर्म भयना मनुष्य से संभव कोई विशेष पन्ना भयना मानव चरित्र में भयना प्राचीन विचरती कोई भावना। इसकी यदि दूसरे कर्म में कहे तो कहा जा सकता है कि कहानीकार की रचना की प्रेरणा कहीं से प्राप्त हुई मनुष्य से भयना उसके संभव कित्ती विशिष्ट पन्ना से भयना कित्ती वातावरण विशेष से। यदि प्रेरणा का स्रोत कोई विशिष्ट पन्ना भयना वातावरण होगा तब भय ही मानवचरित्र भीम कर्म ही उठेगा फिर भी उस पन्ना भयना वातावरण की सुधार करने के लिए भयना उसे प्राप्तमप बनाने के लिए उसके भीतर मानव की शक्ति उठाने ही पड़ती।^१ इस तरह मूल विचार कर हम इसी निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि कित्ती न कित्ती कर्म में मानवचरित्र और

जीवन ही कहानी का प्रधान प्रविपाद्य रहता है—यह दूसरी बात है कि कहीं उसका सीधा संबंध विषय से रहता है और कहीं प्रकारांतर रूप में ।

मनुष्य और उसके जीवन को अपना लक्ष्य बनानेवासा कहानीकार सभी कुशल चित्रकार ही संकेता और अपनी रचना में संवेदनशीलता

की प्राथमयी मूल्यांकना उत्पन्न कर संकेता जब

चरित्र का

वह अपने चतुर्दिक फसे हुए व्यापक मानव

चिरीचय्य

जगत् को प्रकृष्टी तरह देख और समझ चुका

रहैगा, जब उसे मानवजीवन की अतिरिक्त

विविधियों का अनुभूतिमूलक ज्ञान होया और मानव चरित्र की अतिरिक्त अधिक भूमिमात्रों का छात्र ही उनके समस्त छतार चक्राव का पूरा परिचय हुआ रहेया । मनुष्य स्वयं में एक रहस्यमय प्राणी है उसके किसी कामों और भावनाओं में किसी रूप की शक्तियाँ और प्रेरणाएँ काम करती रहती हैं इसका उसे पूरा बोध और ज्ञान होना चाहिए । इस विषय में शास्त्र और अनुभव का ज्ञान रखनेवासे चित्रकारको से संकेत दिया है कि भाषी कहानीकार अपने चतुर्दिक भित्तनेवासे दृष्ट मित और परिचितों के स्वरूप बेहोशियात्त उनके सांस्कृतिक पटल और उनके छूम-सहम ज्ञान-ज्ञान बोध-ज्ञान सबकी बड़ी बारीकी से देखमान करणा रहे सभी उसे विविध परिस्थितियों में पड़े हुए मानव को पूर्वतया समझने के लिए सज्जी पकड़ मिला संकेती । जितने जितन कहानीकार, किसी भी भाषा और साहित्य में मिलेंगे उनमें मानव-जीवन के अध्ययन की पूरी सामग्री मिल सकती है ।

इस स्थान पर एक तात्त्विक बात का विचार आवश्यक है । एक प्रकार से इसी स्थान पर आकर साहित्य निर्मात्राओं में विच्छांतमत्त भेद हो जाता है । कुछ यथाव्य चित्रक जीवन और यथाय की अपनी इति का दृष्टिकोण मानते हैं और कुछ तोय विषय को अपने प्रतिपाद्य के अनुस्य उचाने बनाने के अविभापी दिखाई पड़ते हैं । एक फोटोग्राफ

वैसा करता है दूसरा चित्र तैयार करता है परंतु इस प्रकार का भेदभाव व्यवहारतः बहुत स्पष्ट होता है। मूल बात तो यही है कि क्या-तथ्य चित्रण न विषय को उस-वज्रा तक पहुँचा सकेगा और न अनुसूचित कर सकेगा। वैसे वस्तुतः जीवन में पटित होता है यदि उसका उद्देश्य कथन हम भाषा के माध्यम से कर भी दें तो उसमें सार्वभौतिक और सार्वकामिक सुबेदन की सामग्री नहीं मिल सकेगी। सारांश यह है कि कलाकृति के समस्त घाटकों के अनुसूच्य मनुष्य के संपूर्ण व्यवसायों और अन्य बातों की काट-झाँट और संबंधन-संकोचन करना आवश्यक होता है।

घंटेबी के प्रतिष्ठित कहानीकार बेन्स घोपेनहेम से किसी मितने वाले व्यक्ति ने पूछा कि क्या वे अपनी कहानियों के पात्रों को कुछ ज़सी कप में चित्रित करते हैं बिना कप में वे जीवन में दिखाई पड़ते हैं? इस पर उन्होंने स्वीकार किया कि बात इससे सर्वथा भिन्न है। वस्तुतः कोई भी साहित्यकार अपने अपनी चीजों से देखता है प्रकृत-वैसा ही साहित्य में प्रहण नहीं करता अपनी कल्पना और प्रतिभा का योग लेकर अपने विषय के अनुसूच्य किसी न किसी रूप में उसका संस्कार प्रकट करता है।¹

ग्रेमरबंद जी ने भी इस तथ्य को स्वीकार किया है। उसका कहना है कि 'कला बीखती तो यथार्थ है पर यथार्थ होती नहीं। उसकी सुवी यही है कि वह यथार्थ न होते हुए भी यथार्थ मामूला हो। उसका मापदंड भी जीवन के मापदंड से समान है। जीवन में बहुधा हमारा घंटा उस समय हो जाता है जब वह बाष्पनीय नहीं

1 "When you build a story around a character do you use the character about as you find him in real life?"
"Practically never things and people as they are in real life won't do for short stories They are only starting points spring board"

Clean Clark A. M., A Manual of Short Story Art
1926 pp 118

होता। जीवन किसी का बांधी नहीं है, उसके कुछ-कुछ हानि-नाम जीवन-मरण में कोई कम कोई सर्वप नहीं ग्राह होता कम से कम मनुष्य के लिए वह प्रत्येक है। लेकिन कथा-साहित्य मनुष्य का रचा हुआ व्यवस्था है और परिमित होने के कारण संपूर्णता हमारे सामने आ जाता है, और वही वह हमारी मानवी स्वायत्तुति का मनुष्युति का प्रतिफलन कथा हुआ पाया जाता है, हम उसे बंध देने के लिए तैयार हो जाते हैं। कथा में अंदर किसी को कुछ प्राप्त होता है तो इसका कारण बताता होता, कुछ निमित्त है तो उसका भी कारण बताता होगा। यही कोई चरित्र मर नहीं सकता जब एक नि मानव स्वायत्तुति उसकी मीठ न माने। सत्ता को बनाने की प्रयास में अपनी हर एक इच्छा के लिए बकाब देना पड़ेगा। कथा का रहस्य भाति जिस पर मनाप का आवरण पड़ा हो।¹

अब यदि विचारपूर्वक देखा जाए तो प्रत्येक सफल और कथा पूर्ण पात्र या चरित्र में कोई-न-कोई धार्मिक एवं प्रकाश का एक बिंदु धारण रहता है—उसी प्रकार जैसे चरित्र का किसी भी उत्तम कथानक में कोई न कोई कैरिक्टिस्टिक एक मुख्य प्रभाव का स्वप्न होता है। जैसे कथाओं के अन्त मयपूर्ण स्वप्न पर पहुँच कर पाठक के भीतर धार्मिकमूलक उत्तेज का स्फुरण हो जाता है, उसी प्रकार चरित्र के संपूर्ण प्रसार में जब वह सर्वस्वक सामने आता है तो उस पात्र की चरित्रिक मतिमा उत्कर्षमयी और धार्मिक हो उठती है ऐसे चरित्रगत धार्मिक स्वप्नों पर पहुँचने के पहले सभी अज्ञान विषय उसके पूर्व की बंधनों का बंध ही बुद्धि-संशय विनाश करते हैं। मान देखा जाता है कि चरित्रगत सीध-दर्शन वही स्फुटित हास्य है वही कहानी की चरमसीमा होती है। प्रेमचंद की कथा 'मुबारक' अथवा चरित्र प्रभाव कहानी है। मगध के चरित्र में निवार वही

घाटा है प्रकथा मर्मकेंद्र उस स्वप्न पर दिखाई पड़ता है, वहीं उसके संशुद्धरण में साग की भावना आती है। लेकिन साग की भावना जिस मानव में आती है, उस मानव का आरंभिक चरित्र-गठन कैसा है, इसकी कुसुम श्रेष्ठ ने कहानी के प्रथम खंड में पहले दिखा दिया है। इस प्रकार जिस कहानी में चरित्र के सर्वाधिक महत्वपूर्ण घंघ को बृष्टि के सम्मुख लाने के पूर्व बिलगा ही प्राकृतिक विकास-क्रम उपस्थित किया जायगा उतना ही वह महत्त्व का केंद्र उद्घोषित होगा। जिन कहानियों में चरित्र का सौम्य छंद से संबंधित रहता है उनमें चरित्र वहाँ अधिक परस्परमय दिखाई पड़ता है वहाँ प्रथम घोर द्वितीय भाव घापस में टकराते हैं और घपस-घपने अनुस्य क्रियाओं की घोर पाश को प्रेरित करते हैं। 'प्रसाद' की कहानी 'आकाश-सीप' प्रकथा 'पुरस्कार' में चरित्र-विकास का बीजक देखा जा सकता है।

कहानी में रचना विस्तार की सर्वांगीण परिमिति दिखाई पड़ती है। इस लक्ष्य का प्रभाव चरित्र और उसके विकासक्रम पर भी पड़ता है। कहा जा चुका है कि कहानी के लक्ष्य में कहाबी में घन्य साहित्यिक रचनाओं का विश्व विज्ञान चरित्रक स्वच्छंद घोर उन्मुक्त रहता है। कहानी घपनी मौसिक परिमिति को लिए हुए विभिन्न लक्ष्यों को लाना प्रकार के प्रतिबंधों में बाध होती है। सबसे अधिक प्रतिबंध पात्रों के चरित्र-विकास पर दिखाई पड़ता है। इसलिये मह घावद्वक होता है कि चरित्र की किसी मौसिक संगीता घोर बृष्टि को कहानी लेखक पहले से ही निरिष्ट कर से। चरित्र के उस प्रेरक घनका बीजमान को बिना किसी प्रकार के विवरणात्मक घोर परिघमात्मक विस्तार के घीमे उपस्थित करना बचित रहता है। बर्धन-प्रसार के लिए भी कहानी में कोई विघेय घनसर नहीं रहता। इसलिये कहानी के पात्रों क स्वरेण घेपमुपा, कुतरीत घि-भरुधि, इत्यादि का कोई बर्धन विस्तार से नहीं उपस्थित किया जा सकता।

निदान्त भावबलकटा होने पर इन चीजों को परिस्थिति और व्यवहार का विचार करके कुछ सैद्धिक अर्थों संश्लिष्ट पर सारगर्भित पद्यावली में कुछ कह देता है । विचारकों का तो यहाँ तक कहना है कि ऐसे स्वप्नों का विस्तार से ही लेखक करते हैं जिनमें विषय की कमी रहती है ।

यहाँ चरित्र के चित्रण में मुख्यतः ध्यान देने की बात यह होती है कि चरित्र की विशेषताओं को कमजोर पनीभूत और प्रभावमय बनाया गया है कि नहीं । चरित्र के विषय में चरित्रांकन-विधि कहानीकार का जो कथन हो उसे एक ही स्वप्न और समय में नहीं कह देना चाहिए ।

चरित्र-विकास की सारी बीड़ कहानी के कथानक में घाँट फँसी रहनी चाहिए, अन्यथा कहानी का सौंदर्यबाहक संतुलन बिपङ्ग जायगा । पात्र की मूलवृत्ति और उसके संबद्ध विविध मानुषविक उत्तर-व्यवहार की बातें अर्थों सिद्ध पर अभावपूर्ण रूप में उपस्थित की जानी चाहिए । 'प्रसाद' की 'मुन्ना' शीर्षक कहानी में व्यक्ति-वैशिष्ट्य की मानुषविक अनेक घटनाओं की पूरी सजावट पहले कर ही गई है और ठग उसके भावना-प्रेरित उत्तर का अध्ययन सामने लाया गया है । इस उत्तर के मुख में बीठी जो उत्साहमयी बुद्धता है उत्तर दिव्य रूप उस समय दिखाई पड़ता है बिना समय लम्बू सिंह को सूचना मिलती है कि रानी को अंधरेज पकड़ कर कलकत्ते से पार्यवे और लम्बू सिंह प्रांशरिक प्रेरणा से विह्वल होकर दुसारी को भटक देता है और बाढ़ की धंगा में डूबी छोड़ देता है ।

चरित्र-विकास का पूरा विस्तार कम और सूक्ष्मातिशूषम व्योम उपस्थित करना तो उपन्यास का काम है । कहानी मुख्यतः चरित्र के किसी अस्कार-विद्यु को किसी संघर्षयुग चरित्र और इन्हें परिस्थिति में रत कर सामने लाती है । इच्छीनिए चरित्र प्रदान कहानियों में किसी-न-किसी प्रकार का इन्हें विधाना परिभाष हो चट्टा है । इन इन्हें

का विशेषण पहले किया जा चुका है। इनमें से किसी प्रकार के दम्प में पड़ा मानव बहुत ही धार्मिक होता है। अपने क्रम में बसकर 'आकाशबीप' की संघा भारी दंड में पड़ गई है। बूझरी धोर देता जा सकता है कि अपने स्वस धीर भौतिक इतिवृत्तक्रम में बसकर 'सुबात मगत' भी दंड में पड़ गया है। दंड में पड़ी जया क्यार निकालकर भी बुधगुप्त को मार न सकी फिर एक निरवय पर पहुँचकर उसे समुद्र के गर्भ में तिराहित कर देती है। कहानी में उचका यही निरवय व्यक्त है। बूझरी धोर अपने ही राज्य में अपना अपमान देखकर 'सुबात मगत' में जो दंड सठठा है वह उसे विवश कर देता है कि वह अपना लोया हुभा राज्य पुनः प्राप्य कर ले। सुबात का यही निरवय कहानी में अमकार का विषय बन जाता है। इस प्रकार देखा जा सकता है कि संघर्ष में पकड़कर पात्र का अरिभ उस समय तक नहीं निररता जब तक कि वह किसी विचाररत्मक या क्रियारत्मक निरवय पर नहीं पहुँचता। जिन कहानियों में संघर्ष में पड़ किसी मनुष्य का विषयमान होता है धीर संघर्ष की लया में पड़ा हुभा वह मनुष्य केवल अपनी समस्या के महावायर में हाथ वीर मारता देया जाता है उसमें अरिभ का ज्ञान अपूर्ण रह जाता है, केवल यह उचित मिस जाता है कि मझाई बल रही है। ऐसी स्थिति में अरिभ-विजग अपूर्ण ही माना जायगा। ऐसी कहानियों में अरिभ संघर्षी प्रमावात्तिति सिद्ध नहीं मानी जायगी जैसे राजावृष्य की गिण्टी कहानी 'अवसंब' में है।

अरिभ का संघर्ष जहाँ तक किया से है, उसमें विचार की एक बात प्राथम्य है कि किसी क्रिया में संसन्न किसी पात्र को देखकर यह नहीं कहा जा सकता कि उसके अरिभ की कौन सी अरिभ में प्रेरक मात विरोपठा इधसे मकित होती है यमवा किछ कोटि की प्ररया उस उरसाह प्रवान कर रही है अरिभ की यतार्थ संमिया का यदि स्वक्य संममता होया तो वह देयना धारवपक होगा कि जिछ क्रिया में वह पात्र संसन्न है उस क्रिया के मूल

में चरित्र की कौन सी बृत्ति काम कर रही है। तभी यह निर्णय हो सकेगा कि पात्र के चरित्र की किस विशेषता का परिणाम यह क्रिया है। इस तरह क्रिया का प्रेरक जो भाव होना बहो व्यक्ति-वैशिष्ट्य का रूप निश्चित करेगा। किसी को तसवार खींचे हुए देखकर स्वसत्ता केवच इतना ही जाना जा सकता है कि वह क्रोध के आवेग में अपना धारममपीस स्थिति में है। उसके तसवार खींचने में चरित्र की बात क्या है इसका ठीक पता तो उस समय बनेगा जब यह निश्चय हो जाय कि वह क्रोध प्रतिहिंसासूचक है अथवा कस्या से प्रेरित। प्रेम की प्रवृत्तियों में पड़कर भी तसवार खींचने की गोबत जा सकती है और अपने मित्र के सम्मान और शरीर की रक्षा में भी इसकी आवश्यकता पड़ सकती है। इसलिए कहा जा सकता है कि कहाजियों में केवल क्रिया को प्रकट करनेवासे प्रभावों को ही समझने की शैष्टा नहीं होनी चाहिए, बल्कि उसके मूल प्रेरक भाव की खानबीन करनी चाहिए। बरतुत वहीं तक पहुँच कर ही कहा जा सकता है कि पात्र में प्रतिहिंसा का भाव अधिक है अथवा कस्या अथवा कर्तव्य का।

सामान्यतः जन पात्रों का चित्रण सरल होता है जिनका चरित्र समगति से विकसित होता है अर्थात् जिनकी चारिदिक गतिविधि एक रस, एक रूप धारि से अंत तक अभी समगति-चरित्र बलवी है, किसी प्रकार की उन्मादकता उसमें नहीं दिखाई पड़ती। ऐसे पात्र को केवल विविध स्थितियों और घटनाओं में पड़ा हुआ दिखा दिया जाता है। इन्हें हम एकरस सरल यथिवासे चरित्र कह सकते हैं। विवेचना में ये पात्र सम और सरल होते हुए भी चित्रण में कठिन होते हैं। कठिन इस अर्थ में कि चरित्र संबंधी प्रभावोत्पादकता उत्पन्न करने के लिए, लेखक को किसी प्रकार का विविष्ट कोयल दिखाना पड़ता है। ऐसे चरित्राचन में धार्यन और मनोरंजन का अधिक रस न होने के कारण रोचकता का निर्वाह कठिन रहता है।

इसलिए ऐसी कहानियों में पात्र के अनुदिक कैंसी हुई विभिन्न परिस्थितियों की ही सजीवता प्रदान करने की चेष्टा की जाती है— जैसे प्रेमचंद की कहानी 'ईसाहा' में। उस बासक के चरित्र में उदार बड़ाव बिसाने का कोई धक्का नहीं मिला। इसलिए एक विशेष प्रकार की परिस्थिति में पड़ा करके हमारे की एक कोमलवृत्ति का क्रियाशील रूप दिया दिया गया है। इस प्रकार के चरित्रांकन में कौशल और पकड़ की बात कुछ होने पर भी कहानी रचना के क्षेत्र में पदार्पण करनेवाले नए लेखक के लिए कार्य करना सरल होता है।

दूसरे प्रकार के पात्र प्रथम चरित्र के होते हैं जो कि निरंतर परिवर्तनशील होते हैं, इस अर्थ में कि उन्नावच प्रेरणाओं के अनुस्यू असम पति से कमी ऊपर और कमी नीचे होते उन्नावच चरित्र रहते हैं। उगक गति-विस्तार में समय-समय पर मोड़ के रूप में घाते रहते हैं। जिसको हमने पहले सामान्य रूप में देखा फिर परिस्थितियों के प्रवाह में उसी को एक ऐसे परिवर्तित और नूतन रूप में देखते हैं कि आश्चर्य अभिन्न रह जाते हैं। प्रेमचंद का 'सुजात भयत' पहले सीपा-शाखा परिपक्वी और बर्तनीय गृहस्थ के रूप में हमारे सामने आता है, पर धीरे धीरे कर परिस्थितियों के घात-प्रतिघात में पड़कर उसके चरित्र के भीतर से एक तीव्र वृत्ति प्रस्फुरित होती है। उसके व्यक्तित्व विधायक रूप के भाव को देखकर सभी अभिन्न रह जाते हैं। ऐसे चरित्रांकन का सम न कह कर असम ही कहना होना पर इस असमता में भी एक सरलता से समझ लेने की बात तो है ही कि एक ही मोड़ के बाद विषय स्पष्ट हो जाता है।

कुछ व्यक्ति प्रकृत्या चरित्र और स्वभाव से कुछ संस्कारमय और बटिस होते हैं, जिन्हें उनके समीपवर्ती मिन भी नहीं पहुँचाने पाते। अन्य लोगों को भी वे बहुत देर में प्रकट नहीं ही समझ में आते। ऐसे लोग बाहर से कुछ और भीतर से कुछ अन्य ही होते हैं। ऊपर के

बड़े सात घीर स्मिर भासुम पड़ते हैं, भीतर बाड़े बाबी घीर तुच्छन ही क्यों न बनता हो । इनकी बबार्ब पांवरिक प्रेरणाओं की समझना बड़ा कठिन होता है । प्रायः ऐसे पात्रों में ही मन्त्रे कर्माणीकार पांवरिक संघर्ष घीर दंड का पुनः मीम स्थापित करते हैं । यह हम उमके व्यक्ति-बिचित्र में समझ कर ऐसा महत्त्वपूर्ण हो उठता है कि उमके बिचित्र में बड़ी प्रभावोत्पादकता बिचारी पड़ती है । प्रेमपत्र की कर्माणी 'सोहाय के शर्ब' घीर 'एक्ट्रेस' मन्त्रा प्रसाद क 'पुरस्कार' घीर 'माकाधरीय' सीपक कर्माणीकों में इस प्रकार के बटिष्ठ बरिनाम का रूप देखा जा सकता है । ऐसी कर्माणीकों में बरिनाम की बिचित्र भंगिमार्य मिथी-नुसी रहती है, इसीलिए मिचनेबाजे की भी साबधानी बरतनी पड़ती है घीर पड़नेबाजों की भी अधिक जागरूक रहना पड़ता है ।

इस तरह की बिचित्रता एक ठूसरी पद्धति के भी हो सकती है । बरिनाम प्रायः ही क्यों न किया जाता है । कहीं कोई व्यक्ति किसी बर्ब बिसेप मन्त्रा जातिविसेप का प्रतिनिधि बनकर सड़ा किया जाता है घीर कहीं कोई व्यक्ति इस रूप में मया जाता है कि हमारा सारा ध्यान उमके व्यक्ति-बिचित्र बुचबर्मी की घीर धाकूट हो जाता है घीर हम उमके बतुर्बिक मरे हुए समाज घीर स्थितियों की घीर ताकते भी नहीं । पहले प्रकार की पद्धति सीबी घीर सरब होती है । इस क्षेत्र के मबीम रचनाकार प्रायः इसी पद्धति को अपनाकर अधिक सफल होते हैं । पर ठूसरी प्रकार के व्यक्ति-बिचित्र से मरे पात्रों की सजीवता प्रदान करने में केवल ठिठठुस्त लेखक ही सफल हो सकते हैं क्योंकि उमके धनुस्व स्थितियों घीर बटनार्यों की संबोधित करने में बेतन धनुस्व की बड़ी मावस्वकता होती है । इसीलिए निर्माण-साधना की दृष्टि से रचनाकार को पहले बबबठ बरिनाम-बिचित्र का मन्त्राध करना चाहिए घीर सतत प्रयोग के अनंतर ही व्यक्ति-बिचित्रपूर्ण बरिनाम की चेष्टा

पद्यति के विचार से कहानीकार अपने पात्रों के कुसदीस का उद्घाटन यथा शक्ति-विवरण से प्रकारों से कर सकता है—प्रत्यक्ष और प्रत्यक्ष रूप से। प्रत्यक्ष रूप में तो कहानीकार पात्र के स्वरूप केवमुदा उसके शरीर और स्वभाव की बनावट सीधे उपस्थित करता है। इस प्रकार के बनावट में ऐसा भाव्य पड़ता है कि लेखक की सीधी जान काटी इन विषयों से है, और उसका परिचय वह अपनी ओर ही देता है। इसमें पात्र को कुछ कहने पड़ना करने का

परिष्कारण की

प्रत्यक्ष प्रयाची

भवसर नहीं रहता क्योंकि कृतिकार स्वयं उस कुछ जानता है यथा वह उसकी सजीव रूपना कर लेता है। इसमें पात्र के प्रत्यक्ष शक्ति की

कोई भावनायुक्तता नहीं रह जाती। प्रेमचन्द की कहानी 'सुजान भगत' में यथा 'प्रसार' की कहानी 'गुंदा' में इसका प्रत्यक्ष रूप दिखाई पड़ता है। धारण में ही गन्धर्व सिंह की सत्रयज का बीसा सीमा कथन 'प्रसार' में किया है यथा 'सुजान भगत' का बेता परिचय धारण में प्रेमचन्द ने दिया है वह शक्तिशाली की प्रत्यक्ष प्रयाची है।

पात्र के शक्ति का उद्घाटन प्रकाशंतर से भी हो सकता है, लेखक स्वयं न कुछ कहें और न उसका व्यक्तिगत सम्बुद्ध धारण—ऐसा भी हो सकता है। कहानी का कोई दूसरा पात्र ही पहले पात्र की भावनायुक्त करे यथा उसकी विशेषताओं का परिचय दे। सामान्यतः यह पद्यति विस्तार-परिमिति के कारण अधिक भोग यथानाते नहीं क्योंकि एक विशेष प्रकार की परिस्थिति उत्पन्न करनी पड़ती है जिसमें यह भवसर या सके कि एक पात्र दूसरे की व्यक्तिगत शक्तियों और कार्यान्वय का भावनायुक्त परिचय दे।

कहानी की सर्वाधिक उदाहरणों और व्यवहारोपयोगी शक्तिशाली-पद्यति यह होती है जिसमें नाटकीय विधि का उपयोग होता है।

1 (a) Albright E M : *The Short Story* pp. 118

(b) Macneachie D. : *The Craft of the Short Story*
pp 30

कमी उसे जाग होता और कमी नहीं भी होता । इस प्रकार के मनोबैला
 निरु मापारों से संबंधित व्यक्ति को भी परिश्रम विधेयताएँ मिलती
 हैं उनका यथार्थ स्वरूप और पूरा प्रसार उक्त
 परिश्रम की समय देखने को मिलता है जब उसके सामने
 मनोबैला निरु किसी प्रकार की संघर्ष की स्थिति उत्पन्न होती
 है । जब तक जीवन की बधि सम रहती है
 और उसे किसी विधा में विशेष क्रियाशील होने की आवश्यकता नहीं
 होती तब तक उसकी पूर्ण सांत्विक वक्रताओं एवं क्षतियों का बेमर
 देखने में नहीं आता । किसी प्रकार के विरोध और संघर्ष के संमुख
 उपस्थित होवे ही व्यक्ति जिस तत्परता से अपने घारे काम का उपयोग
 करता है उही से उसके शारीरिक विकास का उच्चा बोध होता है ।
 यही कारण है कि साहित्य नाम से अभिहित होनेवाले विभिन्न रचना
 भेदों में किसी-न किसी रूप में संघर्ष को ही प्रधानता दी जाती है ।
 अविरोध और संघर्ष को संमुख पाकर पात्र में जो पहली प्रतिक्रिया
 मणित होती है वह उसका संघर्षोचित चिंतन । इस काम में वह परिस्थिति
 की गंभीरता प्रकट चिंतन का बोध करता है और उसकी तुलना अपनी
 व्यक्तिगत बलु स्थिति से करता है । अपनी इन्हीं सांत्विक क्रियाओं के
 द्वारा उस साह्य संघर्ष का सामना करने के लिए अपने को प्रस्तुत करता
 है । उक्त समय कुछ देर के लिए उसके चिंतन में उचित अनुचित प्रकटा
 कठमार्कट्टक का विचार चलता है । इनी बात को यदि प्रकाशितर से
 कहा जाय तो कहा जा सकता है कि पात्र सामान्य-व्यक्त को पहले स्थिर
 कर सेवा है, उसके बाद अपने विरोध के अनुसार उसके शीघ्र की
 सीमांता करता है । प्रायः जतनर जिस समय माचरक की तीसरी भूमिका
 धारणी है उस समय पूरा के सांत्विक चिंतन के अनुकूल प्रती की मात्स्यक
 नियम पर सब पर्युत्तना विगाई पड़ता है । मूलविरोध और संघर्ष के विषय
 में वह कुछ टोम करम उठाकर एक बूढ़ निरक्षर पर पर्युत्तता है और उक्त
 निरक्षर का सन्तुष्टि-संभव करता है—उक्त रूप में प्रकटा क्रियाएँ ।

ये तीनों भूमिकाएँ संभव है एक ही कहानी में एक से अधिक बार आती दिखाई पड़ें। पात्र के सामने एक ही कहानी में बिलकुल बार-बार ऐसी परिस्थितियाँ उत्पन्न होंगी जतनी ही बार इन तीनों भूमिकाओं की प्राप्ति होगी। किसी भी सुस्पष्ट-स्थित सिधी हुई कहानी में जब कभी कोई विरोधमूलक परिस्थिति नायक अथवा नायिका के सामने आती दिखाई देती तो उक्त तीनों भूमिकाएँ दिखाई देनी चाहियें। लेकिन इस प्रकार के विरोधनाश निर्भयात्मक नहीं माने जाने चाहियें। ऐसा भी हो सकता है कि केवल मुख्य विषय से संबंध रखनेवाली तो पूर्व की दोनों भूमिकाएँ दिखाई दें और इसके पूरा के बिलकुल प्रातुर्विधिक निर्भय हों उनमें पहली और दूसरी भूमिका तो दिखा ली जाए और चिंतनवाली भी न की भूमिका अनुमान के आधार पर जोड़ ही जाए।

प्रेमबंध की 'एक्ट्रेस' अपने मिथ्याचरण से संबंध करती हुई बिलकुल समय आती है तो उसमें चिंतन की भावना उत्पन्न होती है। उसकी बुद्धियाँ धँस-धँसी हो जाती हैं। वह अपने बचपन के कारण आत्ममत्तमि से भर उठती है। उसके बाद विचार-निर्णय के क्रम में कुमार के सामने से और साहू की संसार के ताने से वह हट जाती है। इसी छोटी सी स्थिति में तीनों बातें दिखा ली गई हैं। इतना व्यापार कहानी के एक परिच्छेद में बिना ही सकता है। इसी तरह का क्रम प्रचार की 'पुरस्कार कहानी' में भी देखा जा सकता है। जब मञ्जुलिका को अनुमान हो गया कि अरुणकुमार कोसल राज्य को हस्तगत करके उसे अपनी राजधानी बनाएगा तो वह आत्मसंतुष्ट और प्रसन्न दिखाई पड़ती है। उसने अपने लिए यही कर्तव्य ठीक समझा कि आत्मसमर्पण बाप वह अरुणकुमार को स्वीकार कर ले। उसके बाद उसके मन में आत्मचिंतन की भावना लगी और यह विचार करके कि कोसलनरेश ने क्या कहा था—सिंह मित्र की बगला! सिंह मित्र कोसल का हीर रत्नक बली की कन्या प्राप्त क्या करने जा रही

है ? नहीं। नहीं। इस विचार के उपरांत जो किमासीब निर्णय सामने आता है वह उसके चरित्र की सर्वप्रधान शक्ति का उद्घाटन करता है और कहानी में ईद का रूप दिखार देता है।

कहानी में नायक के चरित्रांकन को मुख्य सध्य बनाने के कारण और रचना के लघुपसारी होने के कारण धन्य पात्रों को अधिक प्राकृतिक

नहीं होने दिया जाता। इस प्रकार के निर्माण

प्रधान पात्र की अधिक प्राकृतिकता तो सामान्यतः उपन्यासों

में देखी जाती है पर उसका रूप कहानियों में

भी मिलता है। एक प्रकार से देखा जाय तो कहानी में इसकी अधिक प्राकृतिकता मासूम पड़ती है क्योंकि यहाँ बौद्ध चोड़ी रूढ़ी है और यदि उसी के भीतर धानुपातिक योग में नायक का चरित्र अधिक न उमड़ सका और उसकी बुझना में दूसरा कोई धन्य पात्र भी प्रमुख हो उठा तब तो कहानी ही मर जायगी। ऐसी स्थिति में एक बार इस बात के गिराव होते ही कि कहानी में कुछ व्यक्ति का कृतित्व प्रभावाम्बिति का कारण होगा उसके घटिरिक्त धन्य दूसरे सब पात्र महुरब में मोड़ा कम कर दिए जायेंगे। इसके बिना काम चल ही नहीं सकता और कहानी का प्रतिपाद्य सिद्ध नहीं हो सकता। ऐसा ही सकता है कि नायक धन्यवा मायिका के घटिरिक्त भी धन्य एक धन्यवा दो पात्र प्रमुख रूप धारण करते मासूम पड़ें जैसे प्रयास की 'रूप' के साथ बुधसुन्द का चरित्र भी बहुत उमड़ा हुआ मासूम पड़ता है। प्रेमचंद के 'पयास' के साथ 'रुदिमन' का भी व्यक्तित्व व्यक्ति-वैचित्र्य से संसुक्त मासूम बढ़ता है। पर नायक के घटिरिक्त जो पात्र भी प्रमुखता ग्रहण करते दिखाई पड़ते हैं उनमें प्रमुखता का धानास मात्र रहता है, मुसत ये प्रतिपाद्य के सहायक धन्यवा साधन मात्र रहते हैं।

इस स्वान वर चरित्र-विश्रम के कुछ सामान्य सिद्धांतों को धीरे संवेष्ट कर देना प्राकृतिक है। ऐसा प्रायः देखा जाता है कि कोई लेखक

एक विशेष प्रकार के परिवर्तों के निर्माण में पट्ट होता है और दूसरा किसी दूसरे प्रकार के। कोई जीवन के चतुर्दिक प्राप्त होनेवाले सामान्य मनुष्यों की अवधारणा में यद्वा रस होता है, खेपक का अपना हीय दूसरे इस प्रकार के भी संसृष्ट हो सकते हैं जिसकी कल्पना सुदूर प्रतीत की और अधिक उन्मुक्त होती हो। कुछ लोग जीवन की सरल सामान्य यथार्थ स्थितियों के अनुवादन की ओर ध्यान बढ़ते हैं इनके प्रतिरिक्त दूसरे संसृष्ट प्रस्तुत से दूर हट कर धार्मिक और विपन्न परिस्थितियों के अनुवादन में विशेष अभिरुचि दिखाते हैं। उदाहरण के लिए प्रेमबंध और प्रसाद की मिया का सन्ता है। एक हमारे जीवन के लिए सहर के रूप में जाता है। वह हमारे जीवन को यथावत बना रहनेवाला और नित्य के पुनः-पुनः संसृष्ट-विषय को ही हमारे सामने रखता है और उसे क सामान्य से हमें कुछ मम की बातें सुझा जाता है दूसरा प्रतीतिमय मानकाल में प्रवेश कर घबरा सुदूर प्रांत की जीवन-पारा सामने उपस्थित कर हमें उसमें यथावत करने का निर्माण करता है। एक 'सुजाग भगत' और 'पयाय' को प्रकृत 'हुसाकी' और 'रुमिण' को भारतीय साम्य वातावरण में उपस्थित करने में विशेष पट्ट है, दूसरा नहीं हमें स्वर्ग के खंडहर में प्रसार देता है कही हमारे सामने 'सालवती' और 'रुपा की कल्पना को सजीव कर देता है। जोड़े में कहा जा सकता है कि किसी एक सत्त संसृष्ट की वृत्ति किसी एक विशेष प्रकार के ही विषय यथा परिभाषित में संकलता प्राप्त करती है। इससे वह तात्पर्य नहीं समझना चाहिए कि वह अपने चरे के बाहर जा ही नहीं सकता। अपनी सीमा के उसके प्रतिफल में धार्मिक यथा संवेह नहीं किया जा सकता पर यह निश्चय है कि अपनी परिधि के भीतर वह संसृष्ट होता है।

इस प्रकार के एकांगी परिवर्त-विषय के अपने गुण भी हैं और अपने हीय भी। मुझ तो यह है कि अपनी परिधि के भीतर रहने

ये उस विविध क्षेत्र की सुरमातिमूर्तम वारीक्रियों धरणा विविष्टताओं पर उतका बड़ा धरिधार रहता है—यथार्थता के विचार से और सत्यनिष्पन्न के विचार से भी ; ऐसे लेखक के विषय में न तो प्रति धरणा का मन रहता है और न किसी प्रकार की छुट का । उसके पाठक भी विषय से वितात परिचित होते हैं । अतएव अपने क्षेत्र की धारीक्रियों की छानबीन में नर हो जाते हैं । इस प्रकार के एक्यसीय लेखक अपनी कला में जितने कुशल ही सकते हैं उतने दूसरे प्रकार के नहीं पर एक धरं में ऐसे रासक हानि भी उठाय है । विषय और पात्र की एक्यसीयता के कारण उनकी रचना उभास पैदा करती है और एक विषय प्रकार के पाठकों से पूजित होने के कारण ऐसे एक्यसीय लेखकों का सति-सीश्वं धरिध प्रसार नहीं पत्ता—एक सीमा में रंधा रह जाता है । जो यहाँ पुप की बातें मानी धार्यपी दूसरे प्रकार के लेखक के लिए बड़ी धरपुन सिद्ध हो सज्ती है और जो यहाँ धार्या है वही दूसरी धोर कला के प्रबाह में स्वच्छता प्रदान करती है । इस विषय में यदि निष्क्य निकला जाय तो कहा जा सकता है कि प्रसार 'सुगत मयत' और 'पयात' की सृष्टि कर ही नहीं सकते थे साथ ही यह भी स्वीकार करना होगा कि प्रमर्धर 'सासबती और सीरी' की कल्पना नहीं कर सकते थे ।

दूसरी बात विचार करने की यह है कि धरिओं की सृष्टि में यथार्थता का बहुत विचार रचना चाहिए । बांकी सी धूमि पर जिसकी ताकत नृत्य रिसाता पड़े उसके धरिध की यथार्थता लिए धार्ययक हो जायता कि वह विषय प्रकार का कोशल प्रकृत करे धर्यया सीश्वंसिद्धि संभव नहीं हो सज्ती । जहाँ क्लामी के धरिधों में पयौष्ठ पवित्रीसता होनी चाहिए, वही यह भी धार्ययक रहता है कि यथार्थ जीवन के धर्यों में प्रसरित इतिवृत्त की यह घटों के इतिवृत्त में परिमय करता जाय । जो काम यथार्थ वीरम में कई

बर्षों में संपादित हुआ होया धीरे छोटे-बड़े सभी प्रकार के उतार-चढ़ाव से संयुक्त रहा होगा उसका लक्ष्य विजय ही बुद्धिकाय उपन्यास में भी संभव नहीं हो पाता कहानी की शक्ति है। इसी तरह यहाँ चरित्र के बुद्धिक्रम के विस्तार में भी बन्दबन्द उत्पन्न करने की विशेष आवश्यकता पड़ती है। किसी प्रकार की कृति विशेष प्रथम चारित्रिक भावना को किसी बात में बर्षों में लठिल हुई होनी उसे कहानी में लाकर कुछ जोड़े ही समय में विकसित करना पड़ता है। यह एक विचार का ऐसा पक्ष है जहाँ बड़े-से-बड़े यथापवासी को भी अपने सैद्धांतिक हिमात्म्य से नीचे उतरना पड़ता है और यथार्थ और कलाकृति की दृष्टि को स्वीकार करना पड़ता है।

सामान्यता को कहानी-लेखक सर्वना की क्रिया में सिद्धांत नहीं होते वे चरित्रांकन में दो प्रकार की भूमि करते दिखाई पड़ेंगे—यै वा तो चरित्रांकन के स्थान पर कथियों और सिद्धांतों के पुतले पढ़न सगले हैं या पात्र और घटनाओं की कथियों को ठीक नहीं मिला पाते। इस विषय में पहले कहा जा चुका है पर यहाँ पुनः संक्षेप में उसका संक्षिप्त करना आवश्यक है कि पात्र की सिद्धांतों की प्रतिमा बना देने से उसका चारित्रिक सौंदर्य सुसंगत नहीं हो सकता। उसके लिए तो आवश्यक होगा कि कृति विशेष के समुदाय के अनुक्रम पूर्व-योग्यता मिश्रित हो और उसके प्रत्येक उत्कर्षार्थक्य को प्रकट करती के लिए उपयुक्त सीढ़ियाँ प्रस्तुत हों। यदि ऐसा नहीं होगा तो सारा चरित्र-लेखन निर्जीव पत्थर की मूर्ति बन जायगा। उसमें श्रावण वाकनेवासी समीचता नहीं दिखाई पड़ेगी। इस प्रकार का शेष यदि दिखाई पड़े तो कृतिकार की अपरिपक्वता प्रकट होगी। इसी तरह का कौशल उन कथियों के बनाने में भी देखा जायगा जो चरित्र और घटनाओं को बाँधती हैं। घटना और परिस्थिति के साथ पात्र के चरित्र का सम्बन्ध होने से उनके संबंध का स्पष्ट प्रकट होना चाहिए, नहीं परिणाम यह होता कि न तो कहानी में एकरसता उत्पन्न होगी और न प्रभाव ही उत्पन्न हो सकेगा।

चरित्रचित्रण के विचार से प्रायः के पुप की अपनी विशेष
 प्रकृतियाँ और प्राकृतियाँ हैं। प्रायः के बौद्धिक पुप का पाठक
 विशेष प्रकार के चरित्र से नरै व्यक्ति
 आधुनिक चरित्रकार का स्वल्प समझना चाहता है। प्रथम
 में भावों और विचारों के उच्च विकास
 और संघर्ष की कहानी सुनने में उसे विशेष आनंद का अनुभव होता है।
 अतः ही अधिक मनोवैज्ञानिक और इन्द्र-प्रधान कृतियों का चित्रण
 होगा उतना ही अधिक आधुनिक ग्रन्थों का बौद्धिक अनुकरण होगा।
 कुछ समय पूर्व तक स्थिति यह थी कि पाठक और ग्रन्थों में इतना
 बौद्धिक परिष्कार नहीं उत्पन्न हुआ था इसलिए कुतूहल एवं जिज्ञासा
 को अपने और परिशुद्ध करनेवाले सामान्य चरित्र एकरस मानकों को
 एक निश्चित माग से बनाकर एक सुस्थिर और समीप्य फल तक
 पहुँचाना ही चरित्रकार कहानियों का सत्य रहता था। धीरे-धीरे जब
 सिद्ध-सकनेवालों में विषय और चरित्र को सूक्ष्मता से उपस्थित करने
 और समझने की कला उत्पन्न होती गई तो व्यक्ति चरित्र को अधिक
 अधिक उभाड़कर सामने लाने की चेष्टा होने लगी। प्रायः की कहानी
 कला इतना विकास पा चुकी है कि अब रचनात्मक सीखने की प्राकृतियाँ
 स्वाभाविक हो गई हैं। प्रायः की स्थिति यह है कि साधारण, बौद्धिक
 और स्तूल से तृप्ति नहीं होती अब तक विशेष और सूक्ष्म चरित्रिक
 रचनाओं के पास हमारे सामने नहीं आते अब तक हमारी विवेचना की
 बुद्धि पूर्ववत् परिशुद्ध नहीं होती। इसीलिए प्रायः की कहानियों में
 चरित्र की वैयक्तिक कृतियों की विवृति में अधिक धर्मरसि बढ़ती जा
 रही है जैसे लच्छक पात्रों की व्यक्ति-विषयिणी मनोकृतियों के
 परिष्कार में सदा दिखाई पड़ता है वही तरह पाठकों की धर्म
 रसि भी ऐसे विषय के ग्रहण की ओर निरंतर बढ़ती जा रही है।
 प्रायः के समूचे कथा-साहित्य में और भागों में भी व्यक्तिचरित्र
 को अधिकधिक उभाड़कर संमुख लाने की चेष्टा की जा रही है।

ऐसा भासूम पड़ता है कि पात्रों के जीवन-वैधर्म्य का क्रियाकलाप और सामान्य स्तुत प्राचरण भी हमें पूरी पूरी सह-तृप्ति नहीं दे पाते जो हम चाहते हैं। हमारी प्रायः इच्छा होती है कि हम कृतिकार की सृष्टि के भीतर पाए हुए मानवों के मनोसोच में प्रवेश करें और उनके स्तुत तथा भौतिक संसार के मूल में निवास करनेवासे जो मूल भाव और विचार हैं उनका आसक्ति करें। प्राचुरिक कहानीकार भी इसी में अपनी सर्वना-सक्ति की सकलता मानता है और पढ़नेवासे भी इसी से अधिक परितृप्त होते हैं। अपने ही समान दूसरे मानव के बाह्य के साथ-साथ धरत की भूमी भी जब हमें मिलती है तब एक विशेष प्रकार की तृप्ति का अनुभव होता है। यही प्रायः के मनोवैज्ञानिक परिच-विभव और मनोवैज्ञानिक तथ्यनिर्णय के मूल में मुख्य प्रेरणा है।

इसी विचार के समर्पक प्रेमचंद भी थे। एक से अधिक बार इस विषय पर उन्होंने विचार प्रकट किया है—

“सर्वमान आख्यायिका मनोवैज्ञानिक विशेषण और जीवन के मर्चाय और स्वाभाविक विभव का अपना ध्येय समझती है। उसमें कल्पना की मात्रा कम अनुभूतियों की मात्रा अधिक होती है इतना ही नहीं कि वह अनुभूतियाँ ही रचनाधीन भावना से अनुसृत होकर कहानी बन जाती हैं।”

‘सबसे उत्तम कहानी वह होती है जिसका आधार किसी मनोवैज्ञानिक तथ्य पर है।’

“ जब हम कहानी का मूल्य उसके पटना विन्यास से नहीं लयाते, हम चाहते हैं पात्रों की मनागति स्वयं चरित्रों की सृष्टि

१ प्रेमचंद : ‘सुख विचार’, पृ० ३० ।

२ वही, पृ० ५३ ।

करे। बटनामों का स्वतंत्र कोई महत्व नहीं रहा। उनका महत्व केवल पात्रों के मनोभावों को व्यक्त करने की दृष्टि से ही है।^१

इस प्रकार मानव के मानव की युद्ध-भूमि बाहर नहीं भीतर है। भीतर के ही उमस-मुदम और इंद्र-संघर्षों की बात जितनी अधिक कहानी में कही जायगी उतनी ही अधिक समझदार पाठक के विचार और हृदय को स्फूर्ति मिलगी। इन्हीं प्रांतिरिक द्रव्यों के अनुरूप बाहरी बटनामों और क्रिया-व्यापार इस रूप में सामने आते हैं कि वे मनो-बैज्ञानिक फल मान्य पड़ें।

मनोबैज्ञानिक परिष्कार के साध-साध कहानीकार से आज के युग की मांग होती है कि पात्र इस रूप में हमारे सामने आएँ कि हमारे ही समान सुख-दुःख हासि-नाम और उत्कर्ष-अपकर्ष से भरे हों। यथावता वास्तविकता और यथातथ्य—सबका मही उकाया है कि अधिक से अधिक ईमानदारी से आज का कहानीकार अपनी कलाकृति में मानव की अवतारणा करे। मनुष्य-मनुष्य की तरह हो—अपने सु-असु दोनों रूपों में भरे ही कोई सर्वगुण संपन्न व्यक्ति हो पर यदि परिस्थिति और संस्कार विसर्प के कारण उसमें चरित्र विषमक कोई दीर्घत्व भी दिखाई पड़ता हो तो लेखक को चाहिए कि उसे सपाईं से बहाँ रहने दे। प्रच्छन्न हो यदि वह इसी उच्चावचता को उभाड़ कर सामने लाए, इसी को चरित्र विषमक अभ्ययन का कारण बना दे तथा इसके व्यक्ति-बैधिम्य को कला के रूप में परिणत कर दे। इस प्रकार का यथाय धार्दर्याय के उतना विकृत नहीं पड़ता जितना रोमांचवाद के। धार्दर्याय तो फिर भी बहुत कुछ सभी युगों में अपनाया गया है और उसके प्रति लोगों का धारर किसी न किसी रूप में बना रहता है।

सामान्यतः सर्वाः कहानी लेखक एक स्वर से कुछ पात्रों को अपनी कहानियों का नायक बनाते हैं। इसमें बहुत कुछ स्थिति अनुकूल इच्छाएँ ही जाती हैं कि उस प्रसंग में भाकर पात्रों का चारित्रिक बहाना अधिक स्पष्ट होने लगता है। वे किस वर्ग के पात्र हो सकते हैं अथवा उनके चरित्र और स्वभाव के कौन से अंग सम्भवतः और काले हैं इसका ठीक से पता लगने लगता है। इसी प्रसंग में भाकर पात्रों में विवेक-विचार तथा ज्ञान-अज्ञान का स्वभाव दिखाई पड़ने लगता है और उनके किमा-कलापों की विविध प्रेरणाओं और भावनाओं की तीव्रता का रूप अधिक साफ होने लगता है। पर इस विषय में बहुत कथन को किसी ठोस और निर्णय के रूप में नहीं स्वीकार करना चाहिए क्योंकि प्रथा का 'मधुवा' और प्रेमचंद का 'हामिर' भी हमारे भाकर्यज और अभ्यस्य के रूप में ही विषय नहीं हैं पर वे युक्त नहीं वास्तव हैं। इसी तरह कोई कुछ ही चरित्र के अनुष्ठान को लेकर उपस्थित हो सकता है जैसे प्रेमचंद का 'भुजान भगत'। इसलिए यह कहना कि कहानियों के पात्र प्रायः युक्त होते हैं, अधिक उल्लेख के रूप में है।

कहानी के पात्रों के अनुष्ठान का निरूपण अथवा व्यक्ति-वैशिष्ट्य का उद्घाटन करनेवाली कृतियों का विशेषण तब तक पुनः नहीं हो सकता जब तक हम उनके नामों के पात्रों के नाम परिचित नहीं हो जाते। शास्त्र के अर्थों में जाने-बुझे भी निरर्थक और विषेय होने लगता कोई न कोई सिद्धांत पक्ष प्रवश्य रहता है, अथवा वे समीचा-शास्त्र के विषय नहीं बन सकते। इसीलिए पात्रों के नाम निर्धारण में कोई बुद्धिसंगत स्थापना प्रवश्य होनी चाहिए। शारी-शारी वाली जो कहानियाँ होती हैं, जिनमें 'एक राजा रहता है, उसकी दो पत्नियाँ होती हैं बड़ी पत्नी के एक लड़का होता है और छोटी के दो।' इतना प्रयाची ही जाते हमारे विज्ञान और अनुष्ठान अ

समाधान कर सकती हैं—बिना किसी नामकरण के। जिस समय तक बुद्धि परिपक्व नहीं हुई रहती और कथा के प्रवाह में बहना ही वरम धामेंद्र का विषय रहता है, उस समय तक इस प्रकार वैलाभ भाव के पास बल सकते हैं लेकिन बुद्धि जब साहित्य को जीवन का प्रतिबिम्ब धारणा धारणोचना मानने लगती है और जहाँ के पशु बंध पटीका के मानदंड बंधन आते हैं तो अधिक तबीय और प्रकृति बार्धों की कल्पना प्राथमिक हो जाती है। इस समय हम यह जानने की धारणा रखते हैं कि उस राजा का क्या नाम था? वह कहाँ का राजा था? उस नू प्रदेय का इस विषय में क्या भौगोलिक और सांस्कृतिक स्थान है? इन बातों को जाने बिना सारी बातें हमें हवाई तर्ज की मातृम, पहुँची और हमारे भावभोक में कीई संवेचना नहीं उत्पन्न करेंगी। उनके अस्तित्व को न तो बुद्धि स्वीकार करेगी और न हृदय ही मानेगा। ऐसी स्थिति में कहानी की सारी उपादेयता प्रस्तुतबाची निह्व बंध कर रह जायगी।

पार्श्वों के नाम प्रथम होने चाहिये। इस प्रकार के पाठ में भी मुख्य धारण्यकृतियों का अनुभव होता है। पहली धारण्यकृता यह है कि इतिवृत्त में धर्मीयता उत्पन्न हो उनके और सारा वास्तविक प्राथम्य हो उठे तथा अन्वेषण के अंतःकरण में सुस्पष्ट और निश्चित छाप लग सके। दूसरी धारण्यकृता वेद-अस-संबंधी है नामों से यह संज्ञान लपने लपुता है कि हम किस जाति देय कास के मानव-समूह के बीच में हैं। इसके इतिवृत्त का हम ज्ञान प्राप्त कर रहे हैं। तब जहाँ तक यथार्थ जगत का है इसका सामास नामों से होना चाहिए। जोड़े में कहा जा सकता है कि बिना पार्श्वों के नामकरण के हम ठोस भूमि पर खड़े हैं—देखा विस्वाद्य नहीं होता। वह नामकरण भी ऐसा न हो जैसा कि हिलीपट्टेय इत्यादि संघों में दिखाई पड़ता है। उनके नाम-निर्धारण की पद्धति कहीं तो प्रतीकरक है और कहीं कल्पित और सारीपित ही मातृम

पढ़ती है। पात्रों के नाम धमिक से भमिक यथार्थता की दृष्टि उत्पन्न करने में सहायक होते हैं। इसलिए यह ध्यात्मक समझना चाहिए कि कहानी में एक प्रकार की सामूहिकता का भाव उत्पन्न करने के लिए सब पात्रों और स्थानों का नामकरण आवश्यक हो। यदि कहानी के प्रसार में किसी मौक़े पर यथा सामान्य से सामान्य पात्र का कुछ भी व्यक्तिगत स्वतन्त्र रूप में बड़ा हो सका है तो उसके नामकरण की ज़रूरत नहीं होगी चाहिए। यद्यप्य ही ऐसे पात्रों का नाम न दिया जाय तो काम बस सकता है जो प्रसंगपर एक क्षण के लिए घात हैं और अपना कोई सामान्य-सा कर्तव्य-पालन करके जैसे जाते हैं। कहानी में न तो उनके कोई प्रमाण पढ़ने की बात उठती है और न उसकी फिर कोई कथात्मक सम्बन्धिता रह जाती है। इसलिए यदि उनका नाम न भी दिया जाय तो कोई छूट नहीं मान्य पड़ेगी।

नामक के नियम में कुछ श्रेणियों का विचार है कि उसका नाम सामान्य न होकर विशेष हो। इससे नामक का व्यक्तिगत कुछ विधिष्ट हो उठेगा। नामक के व्यक्तिगत नामक का की छाया कहानी के अन्य पात्रों पर भी नामकरण कहानी के सारे विस्तार पर छाई रहती है। इसलिए यदि यह सामान्य नामकामा है तो उसके चरित्र से प्रतीकित विधायक बातें नहीं सिद्ध होनी चाहियें न उसमें कुछ प्रसङ्गगत की महत्त्व उत्पन्न की जा सकती है। इसके यह ध्यात्म्य नहीं समझना चाहिए कि विशेषता सरास करने के विचार से भारतीय धाम में निवास करनेवासे किसी जमान के विचार का नाम 'निर्मलकांत' रख दिया जाय। इसका नाम ही ठीक ठीक सचेतना जब कुछ बीता होया वैसा कि हमारे यहाँ के जमानों का नाम होता है जैसे सरजू महती कर्मिणा जमान, मंगरु जमान वरतु इसी प्रकार की प्रकृत नामावधि में 'बतुरी जमान' और 'गुजाम

मकल भी हो सकते हैं। प्रथमे वर्ग के पचास के देस में होमे पर भी ये बीनों नाम कुछ बिधेय मामूम पड़ते हैं। कल्पना-प्रसूत घोर भावात्मक कहानियों पर आधारित कहानियों में भी नायकों का नामकरण कुछ बिधेयता-विशामक होना चाहिए। यों तो किसी राजकुमार का नाम रामसिंह, शरत्सिंह घोर निर्मलकाल हो ही सकता है पर जब उसका नाम 'अस्मकुमार' रखा जाता है, तो वह कुछ अधिक प्रभावशाली वातावरण उत्पन्न करने में सहायक होता है। नाम से ही कुछ राजकीय वैभव व्यंजित होता है, इसमिद उसका नायकत्व न तो धरती विस्तृत हो सकता है घोर न तो उसके प्रभाव को किसी प्रकार मध्यमाना जा सकता है। इस प्रकार, प्रभाव-व्यधिष्टय स्थापित करने की धार्कशा बिधिष्ट नामकरण के प्रयोग में प्रकट होती है।

पार्श्वों के नाम ऐसे होने चाहिये जिनकी बचनीनी में संमति हो घोर उच्चारण करने में मुक्त की किसी प्रकार का व्यावाम न करना

बड़े को सुनपूर्वक उच्चारित घोर व्यवहृत
 पार्श्वों और स्वारों हो सके। कचकट्ट घोर संयुक्त बर्णों के
 के नाम नाम अधिक नहीं रहे जाने कहीं उपहास

घोर व्यंज्य के प्रसिद्धाम में दिल्ल बर्णोकाँत
 उचपटाँव घोर सुनने में कचकट्ट नाम मते ही प्रयुक्त हों पर
 कामात्मक बिष्ट घोर बर्णोव प्रभाव की कहानियों में नाम ऐसे होने
 चाहिये जो उच्चारण करने में सरल घोर सुगुणक हों। इनके धनिरिक्त
 कहुलीकार को वह भी ध्याव रखना चाहिए कि एक ही कहानी में
 एक नाम की ध्वनि के अनुस्य ही ध्वनिवाँत दूसरे पात्र न हों। ऐसा
 न मामूम बड़े कि एक नाम की ध्वनि का संतुलन दूसरा नाम कर रहा
 है मक्का एक ध्वय का तुक दूसरा नाम पुरा कर रहा है। बकि किसी
 कहानी में 'सुपजन' नाम के पात्र के साथ 'दुपजन' नाम का दूसरा पात्र
 बैठा बिना ध्याव तो धरणा नहीं मामूम पड़ेगा। ऐसा करने से न ही

यह प्रकृत माहूम होना और न इसके प्रभाव ही संवीर हो सकेगा । इसी तरह स्वार्थों के नाम के विषय में भी समझना चाहिए । यदि एक पात्र जिस भाव में रचता है, उसका नाम 'बेधा' है तो दूसरे पात्र का भाव 'अपेक्षा' नहीं हो सकता, 'कटहरी' भले ही हो चाय । साध्य करने का यह है कि एक ही कहानी में प्रकृत होनेवाले कई नाम धारण में न तो तुम्हारी की संजी स्थापित करने वाले और न उनकी उच्चारण शक्ति में किसी विशेष प्रकार का प्रयासपूर्ण संतुलन स्थापित किया जाय । यदि इसका विचार नहीं रखा जायगा तो स्वाभाविकता और यथार्थता की दृष्टि से धारण होगी । इसलिए कोई अनुसूची और सिद्धांत सेनाक इस प्रकार का प्रयोग नहीं करता ।

नामों के नामकरण के विषय में प्राथमिक भवना परिवारों प्राथमिकता यह होनी चाहिए कि उसका नाम आधिकारिक विधिपूर्वक के अनुक्रम हो । पात्र का नाम परिवार हो नाम और परिवार सभी के अनुक्रम नाम देना देना । जहाँ का नाम पात्र अपने सामान्य जीवन की स्थितियों में पढ़ा दिखाना नाममात्र भवना जहाँ परिवार की कोई मोटी विशेषता का उद्घाटन अभीष्ट होना जहाँ पात्र का नाम भी अपने रूप में उच्चरित हो सकनेवाला, बसता और व्यावहारिक रखा जाना चाहिए । पर जहाँ कोई आधिकारिक-विधानिकी परिवार की सुव्यवस्था प्रकट करनी अभीष्ट होती जहाँ अनुक्रम की यथावश्यकता के अनुक्रम ही पात्र का नामकरण भी यथावश्यक करना पड़ेगा । परिवार की किसी सुव्यवस्था की तरह देना करनेवाला पात्र भी कोई विशेष नाममात्र ही हो सभी यथावश्यक संतुलित और प्रकृत माहूम पड़ेगा । मातृभा के उद्घाटन परिवार का आधिकारिक उद्घाटन-बढ़ाव देना होना तो फिर पात्र का नाम 'नवसिद्धा' और 'सातवती' भवना 'धीरी' और 'धारणा' रचना पड़ेगा । 'सुजात बरत' और 'किसन' नाम के ऐसे स्वतंत्र पर काय नहीं कर

सकता। धाराय कहने का यह कि सामान्य और मोटे कर्म में निरत पात्र का नाम सरस और व्यावहारिक होना चाहिए और चरित्र के धार्मिक अमलकार और बायीं कृतमता को ध्यान करनेवाले को पात्र ही उनके नामों में भी अमलकार और धार्मिकता का समावेश आवश्यक है। यथार्थता और प्रकृत के नाम वर ऐसा करना जरूरी है।

कहानी में पात्रों को प्रवेश करते समय लेखक को बहुत सजग रहना पड़ता है। वही विचार की बात यह घाती है कि कहीं पात्र

के नामों का प्रवेश किसी विशेषता विनामक

नाम-अनेक संभव है तो नहीं किया गया। किसी ऐसी

निरत प्रभाव के साथ नाम जब सामने सामा

आया तो इसमें बड़ा बनामटीपन मासूम पड़ता है। साथ ही इस

में यह भी विचार रखना चाहिए कि नाम उपस्थित करते समय

व्यक्ति के प्रभाव का प्रायः ध्यान न हो। ऐसा न मासूम पड़े कि

नाम कहानीकार हमारे ऊपर साब रहा है। सिद्धांत की बात यह है कि

समय अवसर पर नाम का उल्लेख करते समय लेखक को किसी

प्रकार के अमलकार का प्रयोग नहीं करना चाहिए। कथा के प्रकृत

प्रवाह में ही पात्रों के नाम का उदय हो जाना चाहिए। इस संबंध

में यदि उदाहरण के द्वारा काम लिया जाय तो बात सरलता से

स्पष्ट हो जा सकती है। "कोठी क्योंकि यही नाम कहा जाता है यथार्थ

मान लीजिए यही उसका नाम है।" इसी प्रकार की पद्धति से नाम

उपस्थित करना अनिवार्य होना चाहिए क्योंकि एक तो इससे यह धारणा

प्रकट होता है कि बात सब नहीं है, कल्पना के अनुसार बात मान लेने

की है और दूसरी बात यह भी कलकली है कि पात्र को उपस्थित

करनेवाला कथिकार वस्तुतः अपने पात्र से संबंधा दूर है और उसकी

व्यवस्था का व्यावहारिक ज्ञान भी उसे नहीं मासूम पड़ता।

इसने निपेचारमक विदमों और विधानों के बाद अब जोड़ा विशेष

पत्र का भी विचार करना आवश्यक है। अभी तक कहानी में पात्रों

का नाम निर्धारित करते समय क्या नहीं होना चाहिए इसका तो विचार किया गया था इसका भी विचार आवश्यक है कि नामकरण किस

ठिकाण पर होवे चाहिए । इस विषय में एक

सामकाल्य का
विशेष-पत्र

व्यापक व्यावहारिक और सुनिश्चित नियम यह है कि देश, काल और सांस्कृतिक गठन के समुह्य ही पार्श्वों का नाम स्थिर किया जाय ।

यदि कहानी में भारत का कोई प्रायः सुनिका रूप में ही प्रहीत हुआ है तब तो पात्र का नाम 'पयाय' अथवा 'सुजान मय्य' बहुत ठीक है, पर यदि देश दिस्ती का कनाट सङ्घ है तो फिर वे नाम सामान्यतः घोषित विहीन मान्य पड़ेंगे । इसी तरह यदि नीर्यकालीन सांस्कृतिक गठन के भीतर प्रतिष्ठित कोई पात्र हूँ विचार पड़ता है तो उसका नाम 'साधवती' और 'धर्मकुमार' जितना उचित मान्य पड़ता है उतना 'सिधिया' और 'भूरी' नहीं उपयुक्त होगा । यदि पूर्व-बीठिका के रूप में राजस्थान और मारवा का प्रांत है तो पात्र के नाम 'भारतेंद्रासिंह' और 'नरप्रासिंह' जितने उपयुक्त मान्य पड़ेंगे उतने 'संतोष मुखोपाध्याय' और 'संतुष बनर्जी' नहीं । इस प्रकार बुद्धकास के किसी पात्र के नाम 'बुद्धपुत्र' और 'भक्तिपत्र' जितने समुक्त होंगे उतने 'सुधी मराठी बाबू' और 'विर्मवकांत' नहीं । इसी तरह सांस्कृतिक गठन की भी बात सामने आ सकती है । एक विशेष प्रकार की संस्कृति के पार्श्वों के नाम उसके समुह्य ही रखे जायें तभी सकार्यता प्रभावित हो सकेगी । एक अठ-अमृत जीविका के अपना अरज-पोषण करनेवाला भी ब्राह्मण परिवार होना चाहते किसी धारमी का नाम ऐसा नहीं रखा जा सकता जो उस विशेष प्रकार की बनावट के सर्वथा भिन्न हो । सादाँच कहने का यह है कि पार्श्वों का नाम स्वीकार करते समय देश काल, संस्कृति और वारिष्य का बहुत ही ध्यान विचार रचना चाहिए । यदि इसमें कहीं भी त्रुटि हुई तो कहानी के वातावरण सर्वथी प्रभावोत्पारण में व्यापत पड़ता ।

नाम निर्धारण के साथ-साथ इस विषय में एक और महत्वपूर्ण बात यह बतानी है जिसका बिचार कहानी लिखने और पढ़नेवाले के मन में प्रायः धाता है। पात्र के कठिन बेव-बिन्वास और स्वामीय रहन-सहन के अनुसार वेप विम्यास और परिधान का व्यवहार भी होना चाहिए। मासवा के जैसी में हूय जोतते हुए क्रिद्यान का परिधान सज्जनता टोपी और घबकन मही हो सकती। बड़े ली घुटने तक बुकम्बी बोनी और मिर्बाई मधवा बपसबम्बी के साथ एक पयड़ी में ही सितामा धतिक प्राकृतिक और व्यापहारिक मातृम पड़ेगा। इसी तरह बंगाल का कोई क्रिद्यान मासवा के क्रिद्यान की तरह दिता विद्या बान तो रसोडोवन में बबरीय उत्पन्न हो बामना। संखेनतः इस विषय में यह मानना चाहिए कि वेप-बिन्वास के विषय में भी देश और कास का पर्वीय बिचार रक्षना चाहिए। मबाचता और प्रकृतर के बिचार से पात्र के ब्यक्तिर-निकरान में वेप-परिधान का बड़ा महत्वपूर्ण स्थान मानना चाहिए।

इसी तरह बरिन-निकरान में नापा का बिचार और प्रयोग भी अनिवार्य है। ब्यानहारिक जीवन में यह बिचार है पढ़ता है कि प्राचीन पद्धति से संस्कृत की शिक्षा बाए हुए पंडितों याच-प्रयोग और मातृनिक शिक्षा-बीसा के बातावरण में पले हुए ब्यक्ति में ग्राम में निवास करने वाली सामान्य जनता और सुधिक्षित नागरिक में माया-प्रयोग के बिचार से बड़ा धनर बिचार है। हिन्दी का प्रयोग इमाहाबाद और काठी के सुधिक्षित घने बोलबाल में बीठा करते हैं, उस प्रकार के ह्वाये बिहारी बबरा बंगाली भाई नहीं करते। ऐसी रिबति में जो पात्र सम्यता की बिस धीड़ी पर रहना है पवना शिक्षा-नीता बिपबक उसकी वीसी बनावत होनी उही प्रकार की उजड़ी नापा भी होनी और उसके बंगाली पढ़ने में भी धनर होगा। स्वामीय बातावरण की बरीरता

प्रकाश करने में इन विविध तत्वों का बलि संचित उपवीन किया जायगा तो किसी कहानी में रचना-कौशल अधिक मुखरित मिलेगा। इसी पद्धति से संबोधन-विधि के महत्त्व को भी समझना या समझना है। बातावरण और पात्र-भेद से संबोधनों के अर्थ भी ऐसे हो सकते हैं जिनसे ज्ञात हो सकता है कि कहानी में बलि कब-काल कँसा है और इनमें प्रकटित भाव का झुम-झीम कँसा है। बुधवारमहाल वमी की कहानी 'अरभावत' में प्रायः हुए एक संबोधन 'बाहरी ने व्यक्ति और वेस का प्रायःक संकेत उपस्थित कर दिया है।

सवाद

11

साहित्य रचनाओं में घम्य तत्वों की अपेक्षा संवाद तत्व का महत्व अधिक प्रत्यक्ष रहता है। कथानक के बिन्यास में कहीं-क्या सीदर्य होता है, इसका उद्घाटन तक बितरु और संवाद तत्व का प्रतिपादन से किया जाता है भयवा परिचाइन महत्व में किस मनोवैज्ञानिक पृष्ठभूमि में किस प्रकार की वृत्ति का सामोप छिद्र होता है इसको हमें कल्पनाजन्य अनुभूति से समझने की चेष्टा करनी पड़ती है, परंतु संवाद अपने प्रकृतत्व धौबित्य और व्यावहारिक रचना से ही घनने सीदर्य और धाकपन को समझ देते हैं, जसमें तक्र-वितर्क बितन-मनन की लतनी अपेक्षा नहीं होती। यदि ऐश-कास और संस्कृति विषेय का कोई प्राणी किसी से भी किसी प्रकार की बात-बीठ करता है तो उसकी बातबीठ की प्रांजलता और बिशग्यता धम्य और वाक्य के प्रयोग भाषा और पदावली से हमें प्रत्यक्ष भासूम होता है कि ब्यक्ति किस कोटि, बर्न ऐस और काय का है। संवाद से घम्य सभी तत्वों का सीबा संबंध होता है। संवाद जहाँ एक ओर कथा के प्रसार का मुख्य साधन होता है वहीं चारिभ्योद्घाटन का भी साध ही ऐस-कास का भी पर्याप्त बोध कर देता है। इस प्रकार साहित्य नाम से धमिहित होनेवासे रचना के बितने भी रूप हैं, जसमें संवाद तत्व धनिबाध होता है।

इस तत्व की सख व्यापहारिक भावस्यकटाधी के कारण उसके प्रयोग, कोसल और सिद्धिबों की विवेचना गिताठ भावस्यक समझनी चाहिए । इस तत्व के स्वरूपमलन के विषय कहानी में संवाद में सुश्लेषिका के साथ विचार करने से सिद्ध होता है कि विन्न-विन्न रचना-प्रकारों में इस तत्व का विन्न विन्न सिद्धांतों के साथ प्रयोग होता है । बों तो मूलतः यह नाटक का प्रधान साधन है, पर सामान्यतः अन्य सभी रचना-प्रकारों में भी इसका विघ्न प्रयोग अनिवार्य होता है । क्या साहित्य के अंतर्गत उपन्यास में इसका स्वच्छंद, अनिर्दिष्ट और अपरिमित विहार मिष्टता है, परंतु कहानी में इसका मनु प्रसादी-बैलाध्यपूर्ण आकर्षक और जमत्कारी प्रयोग ही द्रष्ट होता है ।

बों तो जहाँ भी कहानी में इसका उपयोग किया जायगा वहाँ अपने-अपने ढंग के परिणाम सिद्ध उठके पर जहाँ इस तत्व का विन्न और हुत प्रयोग क्या भाव को अक्षयैम्मुख करेगा वहाँ एक प्रकार का विशेष जमत्कार दिखाई पड़ेगा । कहानी में विन्न संघ में संवाद-सौंदर्य निश्चय मिलेगा वह अंश अपनी संयुक्त शक्ति के साथ समझ पड़ेगा । यदि कहानी का धारम मनु और नविशील पर प्रकृत और धौचित्यपूर्ण संवादी से किया गया है तो पाठकों का ध्यान विषय की ओर उठी प्रकार सौंदर्य हो उठता है जैसे रंजमंथ पर होनेवाले किठी धचिनक की धोर ।

इस तत्व का कोसलपूर्ण प्रयोग प्रवाद की कहानी 'आकाश दीप' में देखा जा सकता है जहाँ विषय का नाटकीय समारंभ बड़ा कुतूहलपूर्ण और जमत्कारमय दिखाई पड़ता है ।

“बही !”

“क्या है ? सोचो दो ।”

“मुक्त होना चाहते हो ?”

“जमी नहीं, बिना बुझने पर, चुप रहो ।”

“फिर अचरत न मिलेगा ।”

“बंदी गीत है, कहीं से एक कम्बल बांध कर कोरें गीत से मुक्त करता ।”

“घोंबी की संभावना है । यही व्यवहार है । घाघ मेरे बंधन शिथिल है ।”

“तो क्या तुम भी बंदी हो ।”

“हाँ बरि बोली, इस बाध पर देखकर इस नाविक धीर प्रहरी है।”

“शक मिथेगा ?”

“मिथ जायगा । पोत से संबन्ध रगु ब्यट सकोगे ?”

“हाँ ।”

समुद्र में दिखोरेँ उड़ने लगीं । बोरी बंदी घापस में इकराये लगी पहले बंदी से बचने की स्वतंत्र कर दिया । दूसरे का बंधन खोलने का प्रयत्न करने लगा ।

“आकाश हीर”—बसाह

एक छोटे-से संवाद से सभी आवश्यक बातों का ज्ञान हो जाता है । बिजाया धीर कुतूहल को बगाते हुए कहानी का धारम नाटक की तरह किया गया है । परिस्थिति के साथ-साथ पात्रों का सामान्य परिचय संवाद के द्वारा स्वयं मिल जाता है । इसी रचना में घाने बतकर प्रायः स्वसों पर प्रांतिरक नाव-ग्रंथ और विविध प्रकार की मनोवृत्तियों के अन्वयान में संवाद-सीदर्य ने प्रच्छा योप दिया है ।

कहानी के विषय में कुछ विचारक तो इस सीमा तक जाते हैं कि उसे संवादात्मक चिन्त-विधान मानते हैं । उनका कहना है कि कहानी एक चित्र होती है और उस चित्र की कड़ियाँ धीरे धीरे संवाद से बाँध दिए जाते हैं । यह कथन प्रांतिरक रूप में सत्य है, क्योंकि जब कहानियों में संवादात्मक सीदर्य सामान्यतः सिद्ध ही हो ऐसी बात मही है । कुछ इतिवृत्त-मपान ऐसी भी कहानियाँ मिलेंगी जिनमें संवाद की बहुताता न हो प्रयथा संवाद विस्तृत न हों । पिबपूजन सहाय की ‘कहानी का प्याट’ धीरेक रचना में यह बात देखी जा सकती है । इस

संघ की रचनाओं में ऐसा भी बिताई पड़ेगा कि प्रसंगपर ही संघार
 आएँ भी वे ऐसे हो सकते हैं जिनमें न कोई आकर्षक हो और न किसी
 प्रकार का वैदग्ध्य । अतस्त ही ऐसी कहानियाँ रचना-सीधर्य के विचार
 से कसात्मक नहीं मानी जायेंगी पर उनके कहानी होने में कोई संदेह
 नहीं किया जा सकता । इसलिए इस-रत्न की धनिधारिता तो नहीं
 स्वीकार की जा सकती ।

संवाद-रत्न को प्रभावशून्य, आकर्षक और पूर्वतया साक्षिप्राय
 बनाने के लिए मुख्य दो बातों का विचार आवश्यक होगा है । पात्रों की
 परिस्थितियों का सम्यक बोध और उनके
 संवाद के धर्म व्यक्तित्व का सूक्ष्म परिचय कठिनाकार को
 धारण होना चाहिए और उसे अपने पात्रों का
 संपूर्ण लक्षिकिषि पर दृष्टि जमाए रखनी चाहिए । अभी यह संभव होया
 कि संवाद प्रकृत और सजीव हो सकेंगे और साथ ही उनमें चमत्कार
 और आकर्षक उत्पन्न हो सकेगा । उक्त उद्धरण में विपरीत सजीवता
 और संवादात्मक कथा मनुष्य प्रवाह देखा जा सकता है । कथानक होने
 सहज रूप में सरकता और विस्तार पाता गया है कि परिस्थिति और
 पात्रों की धरस्था क विचार से यह बड़ा प्रकृत माधुम पड़ता है । उक्त
 संवाद संक की समस्त योजना से माधुम पड़ता है । उक्त संवाद संक की
 समस्त योजना से माधुम पड़ता है कि संभवता संक की कल्पना में
 सारा बिना और बातावरण सजीव रूप में मुञ्चरित था । उसे अपने
 यथार्थता से संवाहों में व्यक्त कर दिया है ।

इस रत्न के प्रयोग-कर्ता को प्रकृतत्व की रखा के विचार से
 यह समझ रखना चाहिए कि इसका प्रयोग केवल विद्वान्त-प्रतिपादन
 के निमित्त न करवा जाय । ऐसा प्राय देखा जाता है—कहानी
 और उपन्यास दोनों में—कि कथा-व्युत्पन्न धरणा परिचयन धरणा
 देस-काल की धनिधरिता के धरिधरित केवल परिस्थिति-विचय
 धरणा विद्वान्त प्रतिपादन और विवेचन के निमित्त भी संवाहों का

प्रयोग सिद्धक कण्टा है। भाषा और धीर्य के विषय में तनिक भी प्रभावशाली होने पर ऐसे स्वयं सर्वथा अप्राकृतिक भाववत् और असंतुलित हो जाते हैं। इस प्रकार के संवाद कश्मी की प्रभावशालिता के लिए सामक न होकर बाधक ही घटते हैं। इसीलिए सेवक को चाहिए कि वह अपने बोलनेवाले पात्रों के अंतःकरण में क्रमशः प्रकृति तरह प्रविष्ट रहे और बारी-बारी से जितने भी पात्र संवाद में योग्य रहे हों उनकी चित्ता-दीक्षा देस-कास और सांस्कृतिक पठन के अनुकूल बातचीत कराए। इस विषय में वहाँ सजीवता नहीं उत्पन्न हो सकेगी वहाँ एक पात्र की कही हुई बात का प्रभाव—अनुभावों के रूप में दूसरे पात्र पर न दिखाई पड़े और दूसरा पात्र एक विशेष प्रकार की प्राथिक चेष्टाओं और मुद्राओं के साथ पहले वा अन्तर रीति दिखाया जाय। इस प्रसंग में कुछ सामान्य सिद्धांतों का विचार रखना आवश्यक है—

(क) संवाद बहुत धीरे धीरे प्रारम्भिक हो क्योंकि प्रत्येक सीजन में जब दो-चार व्यक्तियों में बातचीत होने लगती है तो एक ही व्यक्ति बहुत देर तक नहीं बोलता रहता।

(ख) बीच-बीच में, संवाद को सजीव बनाने के प्रयत्न से या तो बोलने वाला बोलता-बोलता कुछ क्षण के लिए रुक जाएगा, अथवा परिस्थिति के अनुकूल पहले की बात को अन्तर्-द्वारा स्वयं बोल देगा। इस प्रकार के व्यवधान स्वाभाविकता का अर्थ बड़ाहरण उपस्थित करेंगे।

(ग) कभी-कभी ऐसा भी हो सकता है कि एक पात्र के अन्तर में जब तक दूसरा पात्र कुछ बोले इसके पहले ही दूसरा पात्र दूसरा प्रत्येक अथवा अन्तर्-द्वारा उपस्थित का है अथवा बात की बात ही बरह दे।

(घ) ऐसा भी हो सकता है कि पहले पात्र की कुछ कही हुई बात की सुनकर और उसने छोड़े की बात की अन्तर्-द्वारा

करके दूसरा पात्र बीच ही में बीच बड़े, और पहला जो कुछ भागें कहनेवाला हो उसका भी अनुमान करके वह भागें का भी उत्तर जोड़ दे ।

परिच प्रमाण कहानियों में संवाद-रत्न का विशेष महत्व होता है, क्योंकि व्यक्ति विशेष की व्यक्तिगत-विधायक प्रवृत्तियों और प्रतिधियों का इसके द्वारा बड़ा सामाजिक परिचय प्रकाशक परिचय दिया जा सकता है । जो व्यक्ति संवाद अपनी परिचयित विशेषताओं के कारण अन्य से कुछ मान्य पड़ता है उसकी भाषा और संवाद-प्रणाली में भी कुछ अन्तर्भाव होता आवश्यक है । उसकी बातचीत करने की पद्धति भी उसके व्यक्तित्व को उभाड़ने में पूरी सहायता कर सकती है । भाष्यों में उनके उतार-चढ़ाव में उनके विभिन्न धर्मों पर पड़नेवाली स्वभावों में अथवा व्यक्तित्व का स्वल्प निहित करनेवाली प्रवृत्तियों के अनुरूप परावसी के प्रयोग में बोलने वाले का एक अन्तर्भाव रहता है । अतएव उसकी बातचीत के अंग में अपना एक स्वतंत्र निरूपण ऐसा स्पष्ट दिखाई पड़ना चाहिए कि वह उस व्यक्ति की अपनी हक़ाई को स्पष्ट कर दे । एक ही पात्र विभिन्न विभिन्न स्थितियों में पड़ने के कारण अथवा विभिन्न सांस्कृतिक और सामाजिक भूमिकाओं पर स्थापित रहने के कारण तबमुख्य रंग-रंग से ही अपने विचार और भाव प्रकट करता है । परिस्थिति और सांस्कृतिक भावों के अनुरूप उसकी भाषा का उतार-चढ़ाव बिल्कुल बदल सकता है । अतएव अपनी सांस्कृतिक और बाह्य परिस्थितियों के अनुरूप वह विविध रूप में बोलता और बात करता दिखाया जाना—वही ठीक मान्य पड़ता है । लेकिन इन संपूर्ण परिवर्तनों में परिवर्तनशीलता रहते हुए भी उसकी संवाद-प्रणाली पद्धति एक विशेष प्रकार की बनी ही रहकर उसके व्यक्तित्व को उभाड़े रहे—ऐसे काम का निर्वहण करना चाहिए । निम्नलिखित उदाहरण में एक ही पात्र विभिन्न-विभिन्न स्थितियों

में निम्न-निम्न पद्धति का संवाद करते हुए भी किस प्रकार अपने वैशिष्ट्य को बनाए रखता है और साथ ही अपनी मानसिक बला के संपूर्ण उदात्त-पक्ष का कंसा परिचय देता है इसका रूप देखा जा सकता है। कहीं ता संवादों से पात्र की प्राथमिक बेवना व्यजित होती मिलती है, कहीं निवेदन विषयक विनति प्रकट होती है और कहीं प्राथमिक उद्योग परबता मिलता है।

उदाहरण—१

“यत्रे ? तुम्हीं न कब के उत्तर की संवाधिक रही हो ?

“उत्तर ? हाँ, उत्तर ही तो था।”

“कब इस सम्वाद ”

“क्यों आपके कब का स्वप्न घटा रहा है ? अत्रे ? आप क्या मुझे इस अवस्था में संतुष्ट प रहने देंगे ?”

“मेरा हृदय तुम्हारी इस क्षिति का भक्त बन गया है वैधि !”

“मेरे बस अधिपत्य का—मेरी किंवदन्ता का। धाह ! मनुष्य कितना निर्बंध है, अपरिचित ! जमा करो, जाओ अपने मार्ग।”

“सरलता की वैधि ! मैं मगध का राजकुमार तुम्हारे अग्रिम का प्राणी हूँ—मेरे हृदय की धारणा धरगुण में रहता नहीं थावती। इमे ”

“राजकुमार ! मैं कृपक वाधिका हूँ। आप मंदन बिहारी और मैं पृथ्वी पर परिग्रम करके जीने बाधी। आज मेरी स्वैह की भूमि पर से मेरा अधिपत्य हीन किया गया है। मैं तुम्ह से किच्छ हूँ, मेरा उपहास न करो।”

“मैं कौरव-वरेण से तुम्हारी भूमि तुम्हें दिखवा दूँगा।”

“वही, वह कौरव का राष्ट्रीय नियम है, मैं उसे बदलना नहीं चाहती—बाहे उससे मुझे कितना ही दुःख हो।”

“तब तुम्हारा रहस्य क्या है ?”

“यह रहस्य मानव-हृदय का है, मेरा नहीं। राजकुमार, जिसमें से परि मानव-हृदय बाध्य होता, ती आज मगध के राजकुमार का हृदय किसी राजकुमारी की धोर व खिचकर एक कृष्ण काष्ठ का रूपमान करने व जाता।”

“मन्त्रिक्य बड कही हुई।”

महाराज — २

“महाराज ने स्थिर दृष्टि से बसन्ती धोर देखा और कहा—
‘तुम्हें नहीं देखा है।’

“तीन वरस हुए देव ! मेरी भूमि खेती के लिए बनी गई थी।”

“ओह तो तुमने इतने दिन बड में बिताये, आज बसका मूल्य माँगने आई हो, क्यों ? अथवा, अथवा तुम्हें मिथेया। पतिहारी !”

“नहीं महाराज तुम्हें मूल्य नहीं चाहिए।”

“मूल्य ! फिर क्या चाहिए।”

“तबही ही भूमि, दुर्ग के दक्षिण बाड़े बाड के समीप की बंगली भूमि, नहीं मैं अपनी खेती करूँगी। तुम्हें एक सहायक मित्र मया है। वह मनुष्य मेरी सहायता करेगा भूमि की समतल भी तो बनाना होगा।”

महाराज ने कहा—“कृष्ण काष्ठिके ! वह नहीं कृष्ण-काष्ठिक भूमि है, तिसपर वह वह दुर्ग के समीप एक सिमिक महत्व रखती है।”

“तौ फिर मित्तय और बाडें ?”

“भूतिसिद्धि की की कथा। मैं क्या कहूँ, तुम्हारी वह मार्थन।

“देव ! जैसी आज्ञा हो।”

“आधी, तुम धमकीयों की बसनें बगानो। मैं धमाल्य को आशा-वन्न देव का आदेश करता हूँ।”

“अप ही देव !” कष्टकर प्रत्यास करती हुई मन्त्रिक्य राजमंदिर के बाहर आई।

उदाहरण-३

“रमयी जैसे दिक्कारप्रस्त स्वर में पिचका उठी—‘बाँब को मुझे बाँब को, मेरी हत्या करो। मैंने अपराध ही ऐसा किया है।’”

सेनापति हँस पड़े बोले “पगळी है।”

“पगळी ! नहीं, यदि वही हो तो उठनी दिक्कार वैदना क्यों होती ? ‘मुझे बाँब को। राजा के पास ले चलो।’”

“क्या है ? स्पष्ट कह !”

“घाबस्ती का दुर्ग एक महर में वस्तुओं के इस्तगत हो जायगा। इतिनी बाबू के पार उमका घाबमय होगा।’

सेनापति चौंक उठे। उन्होंने भारभर्य से पूछा—“तु क्या कह रही है ?”

‘मैं सत्य कह रही हूँ शीघ्रता करो।’

प्रसाद—‘पुरस्कार’

इसी प्रसंग में यह भी दिक्कार कर सेना चाहिए कि मित्र-भिन्न स्वामी भावों के अनुकूल संवादों की भाषा वाक्य-योजना और परावली के प्रयोग में बिशिष्टता बतनी चाहिए। अग्यबा भावानुकूल संवाद उस भाषा का ऐकाधिक और खंड प्रभाव ठीक से बम नहीं पाएगा। साधारण बातचीत बतते बतते किस प्रकार मारपीट तक की बात या सकती है, इसको मृन्दावन लाल बर्मा की कहानी ‘छरणावत’ में देखा जा सकता है। इसी प्रकार क्रांतासंमित धरेसु बातचीत का रूप देचना हो तो बिदबन्धरनाथ बर्मा की ‘ठाई’ कहानी में देखा जा सकता है। रेंठ और भफड़ की बात देखनी हो तो प्रसाद की ‘बुंवा’ या ‘सतीम’ नामक कहानियों में देखा जा सकता है। इस प्रकार यह घाबस्पक समझना चाहिए कि वही बिन्न प्रकार की परिस्थितियों में बिन्न भाषा की सिद्धि दिखानी हो वही उसी प्रकार का संवाद कराया जाय।

सजीवता और यथावता को सुधारित करने के अभिप्राय से प्रायः सभी खेप्ट लेखक संवादों में स्थानीय वातावरण की ध्वनि देने की अभिवार्य अभिलाषा या खेप्टा करते हैं। संवाद और वातावरण यदि कथानक सुदूर मठीठ का हुआ तो तत्कालीन समाज और व्यवहार में प्रकुल होनेवाली यथावती के व्यवहार से काम की दूरी का धाकाठ उभाड़ा जा सकता है। 'प्रसार' यथा बंबीप्रसार 'हृष्येय' की कहानियों में इस प्रकार के संवाद प्रायः देखे जा सकते हैं। उनमें संवाद-मदति से ही कथा-काम का परिष्कार हो जाता है। अभिवार्य संबोधन इत्यादि से भी सुधानुसूयता की कलक उत्पन्न की जा सकती है। इसी तरह संवादों के माध्यम से स्थानीय वातावरण का पूरा-पूरा प्राभास दिया जा सकता है। खेप्ट के किस संद और बर्ष का कथा-काम कहानी के वस्तु-प्रसार में प्रकुल हुआ है—इसका ज्ञान इस माध्यम से अन्धी तरह स्पष्ट हो सकता है। लसिका जाति और जीवन की कहानियाँ विपठे समय 'मन्नेय' में तद्देशीय प्रकृति-चित्रण के साध-साध वहाँ के निवासियों के संवाद में अक्की यथनी बोली के बहुर से स्थानीय रस्य ऐसी सुदरता से प्रकुल किए हैं कि साठ वातावरण सजीव हो उठता है। रंगैयरायण की 'सुधम' कहानी में भी इस प्रकार की विवेपठा मिलेगी। प्रसार की कहानी 'सुधा' और 'सतीम' में यथा अक्की की 'बाबी' दीर्घक कहानी में इस प्रकार के संवादों का अक्क्य-सा रूप देखा जा सकता है। सुन्वाचनमात बर्षा कुन्दैलसंबी सुदूर, अभिवार्य और संबोधनों के अतिरिक्त वहाँ के मुहावरों और लरुपाठों का भी अक्क्य प्रयोग कर लेते हैं। कहने का अभिप्राय यह है कि लरु उपायों से संवाद-रत्न रचना के लिए बहुत उपादेय हो उठता है। अक्क्य ही इस विषय में दीक्षित की सीमा का विचार कड़ाई से होना चाहिए। मात्राविषय होते ही यही जो सुध की बीज है वह रचनाकार के लिए बोल बन जायगी और पाठक का व्यावहारिक प्रापतिर्षा होने लगेगी।

तबिक धीर धारो बड़कर बाकर ने कहा—“सब कहता हूँ, धीररी, इस मिसी सुंदर सांडनी सारी मंडी में दिखाने नहीं ही।”

धरु से बंदू का सीना तुगाता हो गया, बोला—“आ एक ही के हद ठां सगली फूटरी है। हूँ तो इन्हें बाय फर्बोमी बारिया करके।”

धरि से बाकर ने पूछा—“बेचोगे इसे ?”

मंदू ने कहा—“बेचने आई तो मंडी माँ आई हूँ।”

“तो फिर बटाओ कितने बने होंगे ?” बाकर ने पूछा।

बंदू ने बख से सिख तक बाकर पर एक दृष्टि बाकी धीर हँसते हुए बोला—

“तबे बाही मैं का तेरे धनी बेई मीख खेती।”

तुम्हे बाहिए—बाकर ने हदता से कहा।

बंदू ने बपेचा से सिर दिखाया। इस मजदूर की यह बिसाव कि ऐसी सुंदर सांडनी मीख खे—“तू कि खेती ?”

बाकर की बंध में पड़े हुए बेइ सौ के मोट बैले बाहर उबख पहने को धम्म हो बडे, तबिक धीर के साथ उसम कहा—“तुम्हें इखले बया कोई खे तुम्हें धपनी कीमठ मे गरज है, तुम मीख बटाओ।”

बंदू ने बखके बीच धीर्य कपड़ों, छुटकों से बडे हुए तहमद धीर जैसे पूर के बख से भी तुगाने पूरे को बेचते हुए बाखने की गरज से कहा—“आ आ तू इसी बिछी खे आई, ईसो मीख तो आठ बीसी रूँ पाट के बाही।”

‘बाही’—उर्दूभाषा ‘भरक’

१ यह एक ही बया बहू तो सब ही सुंदर है मैं इन्हें बाय धीर कर्बूती (पकारा धीर मोट) बैठा हूँ।

२ तुम्हे बाहिए या तू धरने भातिक के सिए मास से रहा है ?

३ आ आ तू कोई ऐसी बँधी सांडनी धरीह से इसका मूल्य तो (१०) से कम नहीं।

रूपमन्वीय प्राकपञ्चवाले प्रबन्ध व्यक्तित्व विधायक संघर्षों के
अतिरिक्त उसके अन्य अनेक भेद हो सकते हैं—व्यक्त बौद्धिक

संघर्ष के अन्य व्यक्तित्वक व्यावहारिक भावार्थक इत्यादि।
व्यक्त संघर्ष उद्ये कहना चाहिए जिससे सर्व
विशेष का वैचित्र्य उद्घाटित होता हो।
संघर्षों का ठाकुर जिस प्रकार घोर कठोर

हथ से पेंठ कर बीजता है वैसे दूसरों में नहीं दिखाई पड़ेगा। प्रबन्ध
नगर के स्वर्ण में रहनेवाले पेरिहर किसान की बातचीत में वैसे
बौद्धिक संघर्ष और संघर्षमय मिलेगा वैसे अन्यत्र नहीं हो सकता। कुछ
कोई श्रेष्ठ कृतिकार उसका औचित्यपूर्ण प्रयोग करे तो कुछ दूर तक प्रबन्ध
बन सकते हैं। उपन्यासों में इसका उपयोग प्रायः दिखाई पड़ेगा जैसे—
प्रेमचंद के नोबल में—नेहुता और माकली का बिलकपूर्व संघर्ष उत्तरार्द्ध
में मरा-पड़ा है। इस प्रकार के संघर्ष प्रसारी बौद्धिक संघर्ष का सफल

प्रयोग 'भोजन' की कहानी 'सन्धु' में मिलता है। वह कहानी छोटी है और
संघर्ष प्रायः बड़े नहीं है परन्तु मार इनका होने के कारण मजबूत नहीं।
भावार्थक कहानियों में संघर्षों का प्रयोग भी सामान्यतः नाब
प्रधान और काम्यार्थक ही होना चाहिए तभी शिष्यानुकूल संघर्ष

भावार्थक-संघर्ष
बैठ सकेगी। ऐसी रचनाओं में व्यंजना की
सहायक हुई तो बातावरण की मनोरमता में

में योग मिलता है। कुशल और नाबप्रबन्ध कृतिकार अपनी ऐसी
रचनाओं में संघर्ष-सीधों के बस पर मनुष्यी मानिकता की मूर्ति
कर देते हैं। ऐसे काम्यार्थक संघर्षों में मार्तकारिक प्रस्तुत विधान
वक्ति-वैचित्र्य एवं विदग्धता की सारी सजावट ऐसी औपम्यपूर्ण रूप
से घामने प्राप्ती कि साग प्रसव चित्रवत् संसृष्ट पूरा उठता है और
निर्वात चित्ताकषय और मुरविपूर्व मासूम पड़ने लगता है। इती

के साथ यदि बन्ध-विषय भी किसी प्रकार की मोझोत्तरता से संयुक्त हुआ तो उस समय इस प्रकार के संसार विशेष मनोरम और प्रिय मादूम पड़ने लगे—प्रेमबन्ध की भाष्म-संगीत कहानी में । इस प्रकार के संसारों के राजा हैं प्रताप भी । यों तो 'घोड़ाघ डीप' संग्रह की पत्रिकाएँ कहानियों में प्रायः ऐसे कुछ काष्माण्ड संसार देखे जा सकते हैं, पर विशेषतः इनका ब्याप और कुछ कम स्वयं के लड़हर में यद्यपि 'समुद्र संचरण' पीबक कहानियों में प्राप्य होता है ।

बोहर बाका आकर लड़ी हो गई बोली—“मुझे किससे पुकारा ?”

“मैंने ।”

“क्या कहकर पुकारा ?”

“सुन्दरी ।”

“क्यों मुझ में क्या सीर्ष्य है ? और है भी कुछ तो क्या तुमसे विशेष ?”

“हाँ मैं आज तक किसी को सुन्दर कहकर नहीं पुकार सका था, क्योंकि वह सीर्ष्य विशेषता मुझमें भवतक नहीं थी ।”

“आज अकस्मात् वह सीर्ष्य-विशेष तुम्हारे हृदय में क्यों से आया ?”

“तुम्हें देखकर मेरी सोई हुई सीर्ष्य लुप्ता जाग गई ।

“परंतु आपा में विशेष सीर्ष्य करते हैं, वह तो तुममें एवं है ।”

“मैं यह नहीं मानता, क्योंकि फिर सब मुझी को चाहते, सब मेरे पीछे भावते वने चूमते । वह तो नहीं हुआ । मैं राजकुमार हूँ, मेरे पैरों का प्रभाव चाहे सीर्ष्य का सुख कर देता हो । पर मैं उसका श्वागत नहीं करता । अब प्रेम-निर्मय्य में बाष्मबिकृता हुआ नहीं ।”

“हाँ, तो तुम राजकुमार हो । इसी से तुम्हारा सीर्ष्य साधेह है ।”

“तुम कीच हो ?”

“धीर-वाकिया ।”

“क्या करती हो ?”

“मन्त्री बँसाती हूँ ।” कह कर उसने बाक की बहरा दिया ।

“जब इस अमलत पक्षों में बहरियों के मित्र प्रकृति अपनी हँसी का निज दृष्टि होकर बना रही है, तब तुम उसी के अंश में ऐसे विप्लव कम करती हो ?”

“विप्लव है तो, पर मैं विचर हूँ । हमारे हीप के राजकुमार का परिचय हीमैबाबा है । उसी उत्सव के लिए मुमहबी मन्त्रियों बँसाती हूँ । ऐसी ही बाबा है ।”

“परंतु वह क्या ही होगा नहीं ।”

“तुम कीच हो ?”

“मैं भी राजकुमार हूँ । राजकुमारों को अपने चक्र की बात विदित रहती है, इसलिये करता हूँ ।”

“धीर बाबा ने एक बार सुदर्शन के मुख की ओर देखा, फिर कहा—“तब तो मैं इन गिरीह जीवों को छोड़ देती हूँ ।”

सुदर्शन ने सुसहस्र से देखा बाधिका ने अपने अंश से मुमहबी मन्त्रियों की मरी हुई मूठ समुद्र जल में विलीन हो

‘समुद्र-संतारण’—प्रवाद

इस सती के संवाद का एक बृहत्तर रूप भी हो सकता है, जिसमें अज्ञान के अंतर्करण की ओर विशेष प्रकृति दिखाई जा सकती है ।

यहाँ कोई तप्यमूलक और परिष्कृत चिंतन अर्थात् संवाद ही विषय बन जा सकता है । यहाँ

कथा-प्रसार और व्यक्ति-वैचित्र्य का उद्घाटन संभव नहीं रहेगा, इसलिए उसमें प्रवाह और तटस्थता नहीं रहेगी । यहाँ अन्य बातों को त्याग कर सैदास केवल गद्य-नाम्य की सर्वता में घम जा सकता है । आधुनिक युग में इस प्रकार के

प्रयोगों की धीरे धामाम्यता अभिव्यक्ति नहीं है। अतएव कहा जा सकता है कि इस प्रकार के संवाद केवल कल्पना-प्रवाह, सिद्धांत निष्कर्ष और सांकेतिक रचनाओं में ही चल सकते हैं। कहानी स्वभावता जन साधारण में साहित्यिक अभिव्यक्ति का विस्तार करने के लिए है। इसलिए उसे वर्णन की धीरे धीरे झुकावट—क्रिटी भी रूप में धीरे धीरे ही कुछ काव्य-गठति से मान्य नहीं हो सकती। हिन्दी में इस प्रकार के संवाद का प्रयोग केवल बड़ी-प्रसार 'हृदय' ने 'पर्यवसान' इत्यादि कहानियों में किया है। नंदन-निर्दुःख पीपल कतकी रचना में इस प्रकार के संवाद कहीं भी देखे जा सकते हैं। सब बात तो यह है कि कुछ सिद्धांत विवेचन में मूलतः व्यक्तिवादी रचना की प्रकृतियों को आलोच्य विषय नहीं बनाया जा सकता। इसलिए इस प्रकार के संवादों के लिए कोई घसम कोटि निर्धारित नहीं होती चाहिए।

संवाद का अति प्रचुर और अनिर्वाय प्रयोग यह होता है जिसे और कुछ न रहकर हम व्यावहारिक कह सकते हैं। सभी प्रकार के

व्यावहारिक	एक व्यावहारिक धीरे दैनिक जीवन में कुछ ऐसे विषयों पर धीरे ऐसे सहज ढंग से बातचीत करते हैं कि संवाद का सहज धीरे व्यावहारिक
संवाद	सात-संपुक्त रूप बढ़ा हो जाता है धीरे व्यावहारिक की पतिविधि और बोझिलता से बनावट कैंसी है इसका उद्यम पूरा संकेत मिल जाता है। इस प्रकार के संवाद से कथा विषय और व्यक्ति का बोध बड़ी सरलता से कल्पना जा सकता है। यही कारण है कि प्रायः सभी इतिवृत्त प्रमाण कहानियों में इत्यन्त मिश्र-ध्रिय रूपों में प्रयोग मिलता है। इन संवादों में कहीं एक धीरे व्यावहारिक जीवन का सुसा नाम मिलता है वहीं देश-काल का आभास अन्धे ढंग से हो जाता है। प्रेमचंद व्यावहारिक संवादों के लिए धमर रहे। सामान्यतः उनकी सभी कहानियों में इस प्रकार के संवाद मिलते हैं। मुहावरों का प्रयोग दुकड़ों-दुकड़ों में बातचीत की

व्यावहारिक संवाद सात-संपुक्त रूप बढ़ा हो जाता है धीरे व्यावहारिक की पतिविधि और बोझिलता से बनावट कैंसी है इसका उद्यम पूरा संकेत मिल जाता है। इस प्रकार के संवाद से कथा विषय और व्यक्ति का बोध बड़ी सरलता से कल्पना जा सकता है। यही कारण है कि प्रायः सभी इतिवृत्त प्रमाण कहानियों में इत्यन्त मिश्र-ध्रिय रूपों में प्रयोग मिलता है। इन संवादों में कहीं एक धीरे व्यावहारिक जीवन का सुसा नाम मिलता है वहीं देश-काल का आभास अन्धे ढंग से हो जाता है। प्रेमचंद व्यावहारिक संवादों के लिए धमर रहे। सामान्यतः उनकी सभी कहानियों में इस प्रकार के संवाद मिलते हैं। मुहावरों का प्रयोग दुकड़ों-दुकड़ों में बातचीत की

प्रकृति और धर्म्य-वैश्य इस प्रकार के संवादों में सर्वत्र दिखाई पड़ता है। मध्यमवर्गम जीवन की कहानी 'राम' में यथवा प्रसाद की कहानी 'मधुबा' में भी इसी प्रकार के संवादों का प्रयोग हुआ है। इसे केवल उदाहरण का अंकित समझना चाहिए, नहीं तो यह संवाद का ऐसा प्रकार है जिसका प्रयोग भारतम करनेवाले से लेकर प्रौढतम लेखक तक करता है। इसलिए इस कोटि के व्यावहारिक संवादों का कम किसी भी कहानी में बसा जा सकता है।

अंत में यदि उक्त संपूर्ण विवेचना का हम साध-सबह् चाहें तो संक्षेप में कहा जा सकता है कि केवल किञ्चिन्तक पठिनीय और भावोद्बोधन करनेवाले संवाद ही कहानी में आना चाहिए। केवल चपत्तार-अवर्धन और सिद्धांत-विवेचन करनेवाले संवाद ही उपन्यासों में ही बस सकते हैं। यदि उनका प्रयोग कहानी में होना तो अपनी परिस्थिति-परिधि में होकरनामा कहानी का भी अयामक होगा वह आवश्यक हो पड़ेगा और तब, छिद्र और नाटकीय तत्ति संवत्तवामी कहानी ठीक मही उतर सकेगी। प्राचुनिक कहानियों में संवाद-वत्त के सूदर प्रयत्न की और विशेष प्रकृति दिखाई देती है। सब पूछा जाय तो संवाद-सौदस का निर्वाह, भाव की कहानी की प्रमुप विद्येयता है।

शीर्षक

कहानी के बाह्य एवं स्तूय पक्ष का विचार करते समय 'धीरक' को मीमांसा बड़ी महत्वपूर्व माधुम पड़ती है। इस महत्व को दो रूपों में देना जा सकता है। पहली बात विचार की वह रहती है कि कहाना के रचना-काम का संकेत इससे मिल जा सकता है।

धीरक का महत्व

जि 'राजा भोज का सपना' और 'भायसियो का पर्वत' धारमिक युग की ही कहानियाँ हो सकती हैं। रचना-सौंदर्य का विकास हो जाने पर इस प्रकार के विवरणमय धीरको का प्रयोग समब नहीं होगा। ऐसे धीरकों से तो कहानी की सारी बीड़ ही सामने पड़ी हो जाती है। कोई भी प्रौढ़ सेबक ऐसे मिराकुष धीरक में धीर्य नहीं मानेगा। वह तो बिना बने-ठले कुछ कहने को तैयार नहीं होगा। इसलिए कहा जा सकता है कि धीरक से कहानो प्रपवा कहानीकार के विकास-क्रम का प्रामास मय जाटा है। ईषापस्तायी की 'रानी केवरी की कहानी' में 'कहानी' शब्द ही उपस्थित है, इसलिए ऐसे धीरक में जाठर के लिए किसी प्रकार के अनुमान-प्रसार के लिए कोई भूमि नहीं पड़ जाती।

दुसरी महत्व की बात 'धीरक' में यह बिध्याई पड़ती है कि जससे इतिहास की ध्वनियत प्रकृतियों का पूरा परिचय हो जाटा है। लेसक को धमिदधि दिग प्रकार के दिषयों की ओर है प्रचना वह विषय के प्रागयन में नहीं तक ध्यावहारिक है प्रपवा नहीं तक काध्यात्मक इषरा

भी संकेत दीपक से मिल जाता है। निरय के सामान्य एवं व्यावहारिक जीवन की कथा कहनेवासे कृतिकार प्रेमचन्द की प्रकृति जैसे मर्दान् विषय विषय की घोर अभिक रचती है उसी प्रकार उनकी कहानियों के शीर्षक भी नितांत चमत् और धर्मकारविहीन मिलते हैं। कृतरि घोर प्रसाद साधारणत जीवन घोर अयत् से कुछ दूर हटकर विषय को बुझते हैं घोर अतीत के संस्कार में रमणीय भाठाकरण की कल्पना करते हैं। घरा विषय-जनन का बीजा उनका धपना शेष है उसी प्रकार उनके शीर्षकों में भी कुछ दूरी और कुछ भावप्रवण कल्पना का प्रयोग मिलता है। इस प्रकार के बहुत से उदाहरण सामने रहे जा सकते हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि 'शीर्षक' का रूप देखकर यह कहा जा सकता है कि कहानीकार किछ बर्ष का है और उसकी धपनी व्यक्तिगत अभिषिष किछ प्रकार के शीर्षक की ओर विद्येय है।

कहानी-रचना का अधिकाधिक विकास हो जाने पर और निरंतर अनेकानेक रूप रंग की कहानियों और उनके संग्रहों के प्रकाशित होते रहने से पाठक के सम्मुख ऐसी स्थिति उत्पन्न हो जाती है कि वह कौन सी रचना पढ़े और कौन सी न पढ़े। यह शोचता है कि उसके सामने विभिन्न प्रकार की कहानियों का संग्रह पड़ा है उसमें से पहले वह कौन सी कृति पढ़े जो उसे अधिक प्रच्छी मने। ऐसी स्थिति में कोई पाठक तो किसी कहानी के प्रसार में जो बिनो को देखता-समझता और विचार करता है कि उसे पढ़े कि नहीं। कृतरि एतक अपने मन की बात बुझता है और कहीं से जो बार पकिया पड़ता है अथवा सी-रुक संवादात्मक स्थलों का सहारा लेकर निरचय करता है कि उस कहानी की धारण करे कि नहीं। उससे धमीस्थित धनुरजन उसका हा संकेत कि नहीं। कुछ ऐसे ही लोग दिखाई पड़ते हैं जो केवल धारण और अत का धंध पढ़कर विनिमय करते हैं कि उन्हें यह कहानी पढ़नी है कि नहीं। इनके अतिरिक्त जो धनुर और प्रवीण कहानी-प्रेमी हैं वह केवल शीर्षक की ओर ध्यान देता है।

या तो वह धीरे-धीरे की भाव्यता के साथ ही घाबरा जाता है या अचानक ही घाबरा जाता है। इसकी सहायता से अनुमान लगाए जा सकते हैं कि रचना की गति क्या है। सफ़ाई है धीरे-धीरे अनुमान-परिष्कार के साधन पर वह या तो कहानी पढ़ेगा या बचवा छोड़ देगा। इस प्रकार के पाठकों के लिए धीरे-धीरे का विशेष महत्व होता है। उत्तम कोटि के धीरे-धीरे से पाठक के अनुमान क्षमता धीरे-धीरे भावप्रवणता को उत्तेजन प्राप्त होता है।

अंगरेजी के कई समीक्षकों ने एक स्वर से बैरेट (Barret) के एक वाक्य को उद्धृत किया है। उसमें धीरे-धीरे विषयक विज्ञापन का बोझ में अत्यन्त विभाग उपस्थित किया गया है।

धीरे-धीरे
आकर्षक

उसके सारवचन-रचन के अनुसार उपरोक्त धीरे-धीरे बही कहा जाएगा जो 'विषयानुक्रम मिश्रणबोधक आकर्षक नवीन एवं सज्ज हो। ऐसा कहकर लेखक ने धीरे-धीरे के प्राय सभी आवश्यक गुण धर्मों का उल्लेख कर दिया है। धीरे-धीरे से कहानी के विषय की विज्ञापित तो ही बाठी है साथ ही उसकी ओर आकर्षक बढ़े ऐसी भी आकांक्षा होती चाहिए। कभी कभी कृतिकार की ऐसी भी अभिप्राय प्रकट होती है कि विषय का संकेत मिले चाहे न मिले आकर्षक अनस्य उत्पन्न हो जाना। इसलिए वह धीरे-धीरे को मितांत संवीन धीरे-धीरे कुतूहल-वर्धन बना देता है। The Girl Who Was Behind the Moon' ऐसे धीरे-धीरे से असाधारणता धीरे-धीरे विस्मय कहानी पढ़ बनता है। इस प्रकार के धीरे-धीरे का एक मात्र नहीं उद्देश्य होता है कि कुतूहल की शक्ति को समाझे धीरे-धीरे अत्यन्त एक शैक्षिक विस्मय में पाठक को डाल दे। हिंदी में भी इस प्रकार के अनेकानेक उदाहरण मिलते हैं। ऐसे सुंदर धीरे-धीरे में सबसे कहा जा

1 "A good title is apt & specific attractive new and short."
—Charles Barr 1: Short Story Writing, pp 67

प्रसाद भी ऐसे श्रेष्ठ लेखक जो भाव प्रधान कहानियों के लिखने में बड़े पट्टू माने जाते हैं, उनमें भावात्मक शीपक अधिक मिलते हैं। अधिकतर उनकी कहानियाँ घटमर्तवीभूषि-

भावात्मक शीपक निरूपक दिखाई पड़ती हैं। प्रतिपाद्य-संतर्वृत्ति के अनुस्यू ही बाह्य बातावरण भी चित्रित

किया जाता है। इसीलिए कहानी की सामूहिकता किसी न किसी प्रकार के भाव को जवाबी मिलती है। ऐसी कहानियों में विषय के अनुस्यू या तो प्रतिपाद्य को चित्रित करता हुआ भावात्मक शीपक हो या उसी भाव की चरित्र बहानेबासा कोई कल्पना-प्रधान शीपक हो। प्रसाद की कहानी 'अठ मंय' 'प्रलय विष्णु' समुद्र संतरण' और 'ममता' में ये विशेषताएँ देखी जा सकती हैं। इसी तरह अन्य श्रेष्ठ लेखकों में भी इस प्रकार के शीपक लिए हैं—'अवसंब' 'अवसेय' 'प्रायश्चित्त', 'अपलौक' 'अन्तर्दृष्ट' आदि शीपक इसी कोटि में आये। इस प्रकार के लिखने में शीपक होने जगका मेव इतिवृत्तात्मक प्रववा करिब निरर्थक शीपकों से नहीं बैठ सकता।

इस भाव के अतिरिक्त कुछ शीपक ऐसे दिखाई पड़ते हैं, जिनमें किसी न किसी प्रकार के तप्पोद्भाटन की धोर संकेत होता है

प्रववा कहानी के घट में धाकर विषय की तप्पोद्भावक शीपक अल्पिधि किसी न किसी धाधारिक सत्य से संलग्न दिखाई पड़ती है। प्रेमचन्द की कहानी

'आत्मसंवीत' और 'वैदेगद्रकुमार की रचना 'बाहुनधी' में इस सिद्धांत का प्रतिपादन हुआ है। बंटीप्रसाद 'हृदयेध' की कहानियाँ काव्यतरण के मयी-युगी होने पर भी मूलतः तप्पोद्भाटन की धोर ही प्रबुध रहती हैं। उनके शीपकों से यह बात अलग नहीं रहती है। तप्पनिर्वेधक इस प्रकार के शीपकों में प्रायः एक प्रकार का शीवापन मिलता है। अग्या पदोद्यक कहानियाँ भी प्रायः इसी कोटि में रखी जायेंगी। इनके शीपकों में भी जीवन-वर्षान का कोई एक पक्ष प्रतिबिम्बित रहता है। शीपक

प्रतिपाद्य तथ्य का उद्घाटक अथवा परिचयदाता होता है। सामान्यतः इस प्रकार की कहानियाँ किसी भी माया में कम होती क्योंकि कथारमक साहित्य के लिए यह सीमा अधिक उपयुक्त नहीं होती। इसमें एक प्रकार की बाधमिकता उभर उठती है।

इतिवृत्तात्मक कहानियों के धीरे-धीरे समझने में अत्यन्त सरल होते हैं। ऐसी कहानी में कथा-माला प्रत्यधिक सुन्दर रहता है। इनमें कथा के माध्यम से ही अनीष्टित अर्थ स्पष्ट होता है। इतिवृत्तात्मक धीरे-धीरे अथवा उस कथा के प्रसार के भीतर ही कहीं किसी जीवन-व्यसन या तथ्य को उजाड़ मिला जाता है। इसमें कहानी का कथारमक अर्थ वस्तु धीरे धीरे उसके विन्यास में ही गुम्फित रहता है, इसलिए कथा के सर्वथा अनुकूल अथवा उसी के आधार पर चीपक की स्थापना की जाती है। इसी अर्थ के अन्तर्गत अनात्मक धीरे-धीरे भी आये। इसका कारण यही समझना चाहिए कि कहानी में या तो किसी इतिवृत्त का आधार लेकर अथवा किसी विषय या व्यापार का बलन करके इसकी सिद्धि की जाती है। प्रसाद की कहानी 'इन्द्रजात' 'दाँधी' और 'छोटा बाहुमर' में इन प्रकार की विशेषताएँ मिलती हैं। अथवा का धीरे-धीरे धीरे धीरे से अन्तर्गत होनेवासी किसी क्रमिक भाव का दिव्य रूप यदि देखा जा तो प्रेमचन्द की कहानी 'ईशान' में देखा जा सकता है। इस रूप से धीरे-धीरे अन्तर्गत भी हो सकते हैं। जिन कहानियों में अर्थ की प्रधानता हो उसमें उसी अर्थ के धीरे-धीरे उचित होने।

अब ऐसा भी दिखाई पड़ेगा कि कुटुम्ब के अंतर्गत अर्थवासे विशेष सम्बन्धों को लेकर कहानीकार धीरे-धीरे निश्चित कर देता है। ऐसी कहानियों में किसी प्रकार के कीटुम्बिक सम्बन्ध अथवा संबंधवासी धीरे-धीरे उसके किसी भाव की विवृति इन अर्थ से अन्तर्गत की जाती है कि विशेष प्रमाणात्मक अन्तर्गतता निरंतर उठती है। सम्बन्धवासी अर्थ धारणाओं अथवा अन्तर्गत विविध

अनिमाओं का ही विनाश इन कहानियों में विशेषतः दिखाई पड़ेगा। हिंदी में इस परंपरा की अनेक कहानियाँ श्रेष्ठ लेखकों ने लिखी हैं, जैसे— 'छाई' 'काकी', बीजा जी' बहुत' माई-बहन' 'भाई-भाई'। इसी तरह कुछ लोगों ने केवल काम-विस्तार को ही लेकर धीरे-धीरे निश्चित किए हैं। उनमें तालपत्र यह ध्वनित रहता है कि निश्चित समय की अवधि के भीतर कुछ संवेदनशील स्थिति उत्पन्न हो गई है। इस लिए वह परिमित काम विस्तार ही महत्वपूर्ण और प्रभावकारी हो गया है। ऐसे धीरे-धीरे की बहन करनेवाली सफल कहानियाँ भी हिंदी में अच्छी लिखी मिलेंगी जैसे—'पाँच मिनट' 'एक बटे में' 'चार दिन' और 'एक सप्ताह'।

किसी धीरे-धीरे के चुनाव का विचार करते समय दो मुख्य सिद्धांतों को धोर ध्यान रहना आवश्यक है। धीरे-धीरे किस प्रकार के भी तालपत्र का बोध होता है उसका किसी न किसी रूप में कहानी के संघ विशेष से संबंध आवश्यक होता चाहिए। कहानी रचना

की प्रेरणा जिस ज्ञाना अवस्था विचार से हुई हो उस प्रेरक भाव के साथ धीरे-धीरे का मेल बैठना ही चाहिए। ऐसा मेल जरूरत और बटना-प्रधान कहानियों में बहुत स्पष्ट प्रत्यक्ष और सीधा होता है। 'मनुष्य' और 'सुभाग अवत' अवस्था इसी प्रकार की अन्य कहानियों में धीरे-धीरे सेटकर ही संकेत मिल जाता है कि इन मुख्य पात्रों के जरिये अवस्था उनके जीवन की किसी स्थिति को लेकर कोई दर्पण की बात कहानी में कही गई है 'युग' और 'सातवठी' धीरे-धीरे को पाकर ही यह प्रकट हो जाता है कि उनके व्यक्तित्व अवस्था जरूरत की किसी निश्चितता को लेकर ही रचना में किसी रूप की संवेदनशीलता जमाई गई है। इस प्रकार इस रूप की कहानियों में धीरे-धीरे और प्रेरक भाव का परिचित बोध बैठ जाता है। इन धीरे-धीरे में किसी प्रकार का क्लेशमय आवरण न होने के कारण सामान्य पाठकों के लिये अनुकूल होगा है। पत्र प्रकार

की स्थिति उन शीर्षकों की होती है जिनका संबंध कहानी के मुल-बाब से बहुत सूबा हुआ घबरा सीबा नहीं होता । वहाँ खरिब की किसी अंतरतम वृत्ति का संकेत देनेवाला घबरा किसी तथ्य की बूढ़ व्यंजना से संबंध दीपक होता है, वहाँ बोझ कल्पना और भावुकता के बाबा से संबंध-बोझना निर्याट करनी पकती है । ऐसी स्थिति में ये शीर्षक घबिक कबात्मक और लीठनपूर्ण माहूम पकते हैं । इस प्रकार के शीर्षक का सर्वोत्तम उबाारहूब 'भाकाघ दीप' 'दिसाती' इत्यादि कहानिबा हैं ।

बिबाार करने की बूसरी महत्वपूर्ण बाव होती है शीर्षक और कहानी का मय्योग्य संबंध । कहानी के प्रतिपाद्य पद्य के अनुष्य ही शीर्षक को होना बाहिए और शीर्षक के अनुसार ही वस्तु का प्रसार होना बाहिए । शीर्षक में यदि कोई कयत्कार नहीं है घबरा नाबात्मक बुरहूत की कल्पना नहीं उभकती तो फिर कहानी के भीतर दिसाई मई कोई कभात्मक सूझमठा भी नहीं पा सकती । यदि शीर्षक बहुत कल्पना परक मयाया नाम और कहानी का बिषय प्रसार हो मेमचंद की कहानी 'दाति' घबरा 'सुमान-जमव' की तख्क तब या तो शीर्षक निरबंक हो बायागा घबरा वस्तुव्यंजना मसोमन हो बठेबा । इस प्रकार कहा जा सकता है कि बिबत प्रकार का शीर्षक हो उससे मेल जाती हुई वस्तु और उसकी बिबृति हो । इन दोनों तलों के सुंवर धामबस्य से ही कहानी की सामूहिकता उभीकवा प्रहूण कर सकती है ।

शीर्षक देने में कुछ बाओं का बिबाार रचना घाबस्यक है । यदि किसी प्रकार का बनाकटीपन उससे म्मकेना तो शीर्षक के

1. "While a good title is essential it is a great mistake to have a startling or sensational title followed by a quiet little character sketch. Keep the title in its proper proportion to the nature and interest of the story"

—Macanochie, D : *The Craft of the Short Story* (1936), pp 23

निर्जीव हो जाने की घासंका होगी। रचना के क्षेत्र में घातैवासे नए शैलिक प्रयास समस्त कहानी का सारांश निकाल कर शीर्षक में निहित कर देने की चेष्टा करते हैं। इससे तात्पर्य-बोध घसे ही हो जाता हो लेकिन कुतूहल तब मुग्ध हो जाता है। इसी तरह कहानी का शार्-संकेत प्रकाश करनेवाला शीर्षक भी सीधे-बिहीन मामूम पड़ता है। 'कास्मीर की कहानियाँ' या 'घिफार की कहानियाँ'—ऐसा स्पष्ट संकेत यदि शीर्षक में था तथा तो बात के बहुत साफ हो जाने से संभव है शीर्षक में शार्कर्वक का प्रभाव हो जाय। कुछ लोग जो शीर्षकों में मजबूती ही के विशेषण लगाते हैं वससे भी हस्त्यापन ही श्यभित होता है, जैसे—'सोमहर्षक दुष्य' प्रथवा शारथ्यजनक पटना। कहानी में घाए हुए निररवात्मक इतिवृत्त को लेकर शीर्षक देना भी गीरस होता है, जैसे घेरेबी की कहानी का शीर्षक है What Happend in a Day प्रथवा One Summer at Podune इस प्रकार के शीर्षक शारंभिक शास का संकेत देते हैं। हिंदी में भी 'राजा मोड का सपना' घोर शारथियों का पर्वत' इसी प्रकार के शीपक हैं। किसी कहानी का विश्व रूप में घंत हुआ हो उसका संकेत यदि शीर्षक में रखा जाय तो पाठक की शारी रोचकता मज्ज ही जाती है। इसलिये इस प्रकार के शीर्षक को भी बर्ण्य मानना चाहिये। कुछ शैलकों में शानुशारथिकता का साधु भी दिखाई पड़ता है परंतु इस प्रकार के शीर्षकों में बनावटीपन बहुत मज्ज रूप में पठर घाता है, जैसे—'सावनी समा', 'मिलन-शंभिर' 'मिलन-मुहूर्त' शरपादि।

कहानी के शीर्षकों की शिवेचना इस साधार पर भी की जा सकती है कि उसके शीर्षक कितने शररोवासे हैं। कहीं एक शर का शीर्षक दिखाई पड़ता है शीर कहीं प्रनेक शरों के शरि-शरि शीर्षक लिए जाते हैं। इस छोटाई शीर बड़ाई प्रथवा शंखेप शीर बिस्तार को लेकर चलने में कहीं एक शरुक्रम पस है, कहीं एक प्रतिफल पय भी है। इसके बिच्छ कहा जा सकता है कि विश्व के निपकरण

घोर विवेचना की यह पद्धति नितांत स्पृष्ट है। इसमें बसा-विवेचना के लिए कोई विशेष मसाला नहीं है। न तो इसमें धीरे-धीरे बहानी के मूलनाम की संबंध-योजना की घोर दृष्टि रहती थीर न वही देखने का अवसर रहता कि धीरे-धीरे बहानी के तात्पर्य का संबंध वहाँ तक बहल कर सका है। ऐसी स्थिति में केवल 'धीरे-धीरे' विद्यमान घटकों का ही इसी को लेकर वर्गीकरण करना विवेचना के विचार के बहुत मोटा काम है, इसमें किसी प्रकार सूक्ष्मेक्षिका के लिए स्थान नहीं है।

अब यदि प्रश्न की अनुकूलता का विचार किया जाय तो इस प्रकार के वर्गीकरण के भीतर एका-विधाम से संबंध रखनेवाला एक तथ्य या रहस्य सामने आ जाएगा। इस प्रकार के धीरे-धीरे विभाजन से यह सरलता से समझा जा सकता है कि कृतिवार में बहानी के तात्पर्य प्रमाण को विद्यमान कम घटकों अधिक घटकों में समेटने की समता है। जो केवल ध्वनि और अनुमान या आधार लेकर कम से कम घटकोंवाला (धीरे-धीरे प्रयुक्त करते हैं, न कुछ बतौर का सामना तो अवश्य करते हैं, इसलिए उन्हें वे अधिक मिलना चाहिए। ऐसे धीरे-धीरे या तो बहुत धीरे-धीरे सरल हमें अवकाश ध्वनिबहल करनेवाले होने के नाते बहुत सूक्ष्म और अपूर्ण माने जायेंगे। 'खुशी', 'बचन', 'राजी', 'आरिणी' इत्यादि में नामा प्रकार के अनुमान आरोपित करने के अनेक अवसर हैं। पर 'मूर्च्छित छाह्व की मरम्मत घटकों 'दुखवा में कासे नहीं मोरी खजनी' में अनुमान के प्रसार की एक विवर घूमि सामने आ जाती है।

१ भाव और व्यक्ति या संबंध देनेवाले एक घटक के धीरे-धीरे—

'आशागत', 'परदेसी', 'आत्माराम', 'गुना', 'सखीम'
'बाँझी', 'मुजगा', 'राजी', 'पुस्तक' इत्यादि।

२ विधेयप से संयुक्त ही घटकोंवाले धीरे-धीरे—

'बाँझों की होखी', 'विद्यमानवाली का दुर्घा', 'गुनाग का लव', 'बहाली का खाल', 'पत्थरी के दिन', 'सतलज के

विद्यापी', 'दो दिव की हुनिया', 'अंतपुर का भारम्भ',
'कानों में कंगना', 'कवि की जी', 'कल्पनाओं का राजा',
'कर्म के फल', 'रुबेंस का दासवर्षी' इत्यादि ।

३. इतिहास का संकेंत बहम करनेवाले अनेक ठाणों के शीर्षक —
'हुसवा में कसे कहीं मोरी सन्नधी', 'मुंसिह साहब की
मरम्मत', 'सारी रंग बाखी बाब काब', 'सूखी कवर सेब
पिया की', 'कैत की विदिका त्रिया बाबसाले', 'बोड़े पर
हीदा' और 'हाथी पर बीब', इत्यादि ।





वर्गीकरण



कहानी के वर्गीकरण के विषय में अंग्रेजी के लेखक कुछ उदासीन थे हैं। उन्होंने अपनी रचनाओं में इस विषय का भलब से विचार नहीं किया है, यो तो उनकी सामूहिक विवेचना अपादेयता से सम्बन्धित भेद प्रयोगों का भाषास मिल जाता है, पर किन् विद्याओं पर कहानी का वर्गीकरण करना चाहिए इसका सामान्यतः कोई स्वतंत्र विवेचन उन ग्रंथों में नहीं हुआ है। इसके भवस्य ही एक बात सञ्चित होती है कि इन लेखकों ने कहानी के सामूहिक प्रभाव और उसकी प्रकृति में ही मेरक उत्पत्ती की स्थापना कर ली है। जिन कहानियों से बीसा प्रभाव उत्पन्न होता है उसी के अनुसार कहानियों का नया बाध होना चाहिए—ऐसा उनका मन्तव्य मान्य होता है। किसी कहानी से बीसा तात्पर्याथ निकसता है, वह स्वयं में इस बात का संकेत कर देता है कि वह कहानी किध बरमें में रही जाय। संभवतः इन लेखकों की दृष्टि में वर्गीकरण की सारी शक्ति ही स्वयं और मोटी है और वे इसलिए विवेचना की कोई कला उसमें नहीं मानते।

१ (क) *Albright E M : The Short Story Its Principles and Structure.*

(ख) *Pitkin W B : The Art and the Business of Story Writing*

सामान्यतः सभी मापाओं में किसी कहानियों का विचारपूर्वक यदि हिक्काब-किताब किया जाय तो स्पष्ट बात होमा कि वर्णिकरण—किसी न किसी मापार पर—होना आवश्यक है, क्योंकि रचनालेखी की दृष्टि से तो मेव नितता ही है नियमवत मेदक्या भी बिबाई पकरी है। मुख्यतः इन दो दृष्टियों से विषय की विवेचना अपेक्षित है, इसके बिना सूक्ष्म विवेचना का आग्रह पूर्ण नहीं होता।

पश्चिमाय कहानियों—सभी मापाओं में उस पद्धति पर किसी जाती है जिसे इतिहास की लेनी कहा जा सकता है। इसमें शेषक विषय को उस रूप में उपस्थित करता है

इतिहास-लेखी जिस रूप में इतिहास-लेखक। वह अपने कथा प्रसार को छापी सामग्री को बागता है,

अपने सब पात्रों से परिचित रहता है और उनके जीवन के संपूर्ण संचार चक्राव का विवरण उसे प्राप्त रहता है। (अपने इस संचित ज्ञान को वह संसार की परितुष्टि के लिए इस प्रकार उपस्थित करता है कि

सारा इतिवृत्त रसमय हो उठता है। ऐसी कृतियों में रचनाकार व्यक्ति और उसके समस्त ज्ञातव्य इतिवृत्त को उसी रूप में उपस्थित करता है

जैसे इतिहासकार अपने ऐतिहासिक पात्र को सामने लाता है और अपने को बुद्ध रसकर तृतीय बचन का प्रयोग करता है।) वहीं की पश्चिमाय प्रसिद्ध कहानियाँ इसी ऐतिहासिक लेखी में लिखी गईं जिनमें जैसे—

‘मुम्बा’, ‘परदेसी’, ‘तार्ई’, ‘बिबना’, ‘उसने कहा था’, ‘कफन’, ‘आत्मघात’, ‘कड़वा’, ‘बिबायी’, ‘सामग्री’, ‘भूरी’, ‘सलीम’, ‘ऐकडेस’, ‘जुवान नवत’,

‘शांति’, ‘भूमी’, ‘उसकी माँ’, ‘घबलब’, ‘नेवा’, ‘प्यासी हूँ’ इत्यादि। इनमें और इसी वर्ग की अन्य कहानियों में सर्वज्ञाता लेखक संयुक्त इतिवृत्त को

इस ढंग से सामने रखता मिलेगा कि कथानाम पूरा-पूरा समझ में आ जाय और उसके द्वारा स्थित हीनैवाना परिप्राय भी कुछ स्पष्ट हो जाय।

रचना की इस ऐतिहासिक प्रणाली को सम्य-सुस्पष्टाची भी कहा जा सकता है। आशुदे-मुत्ताउ अथवा सुतुहल-अथवा कहानियाँ इस लेखी में पश्चि

काँचवा मिथी जाती है। जो तो धर्म सभी कोटि के रचनाकार भी इस सीधी-सरल सीली की स्वीकार करते हैं।

इससे धार्मिक मनोरञ्जक धीरे धीरे ही धार्मिक कसापुर्ण धार्मिकरितात्मक सीली होती है। इस सीली की प्रकृति के अनुसार, विषय प्रथम पुरुष के माध्यम से उपस्थित होता है। उसमें धार्मिकरितात्मक सीली बात इस इन से कही जाती है जैसे कोई धर्मपरिचय स्वयं से रहा हो धर्मका अपने जीवन से संबन्ध बटमाएँ और स्मृतियाँ स्वयं किसी से कह रहा हो। मनोवैज्ञानिक सूत्रधारों के उद्घाटन प्रकाशन के लिए यह प्रभावी धार्मिक उपद्रव्य होती है। साथ ही प्रथम पुरुष का प्रयोग करने से प्रतिपाद्य का प्रमाण बलवत्तर और धार्मिक संवेदनशील हो जाता है। इसमें पात्र के साथ धर्मोत्था मा पात्रक के धर्म-करण का सीमा सर्वम स्थापित हो जाता है इसलिए धार्मिकता का प्रामोय धार्मिक स्वस्व होता है। ऐतिहासिक सीली की अपेक्षा इस सीली की कहानियाँ कम सिधी जाती हैं। इसका कारण प्रथम पुरुष की परिमितति है। धर्म पुरुष में बिच स्वच्छन्दता से बात बढाई जा सकती है धर्मका प्रामोचना और परिचय प्रस्तुत किया जा सकता है बतना प्रथम पुरुष के प्रयोग में नहीं। साथही इसकी संबन्ध-मोचना को मुच्छि करके में कुछ विशेष कौशल अपेक्षित होता है। इस धार्मिकरितात्मक सीली का रूप 'बिचकाये पात्र', 'बह प्रतिमा', 'काली में बंगला', 'दर्शन', 'कली', 'धर्मबीक' इत्यादि कहानियों में देखा जा सकता है।

बहुत दोनों पद्धतियों से सर्वथा निम्न कहानी रचना की पद्धारमक सीली होती है। इसमें एक दो या धार्मिक पात्र इस रूप में कथा का धारम्य विकास धीरे धर्म करते हैं कि साथ पत्र-सीली विषय पत्रों के माध्यम से उपस्थित होता है। दो मित्र कहीं लुडूर स्वानों में बैठे हुए धार्मिक में इस प्रकार पत्र-धर्महार या पत्रासाप करते हैं कि कोई कथा बड़ी हो

घाटी है। धपना घनकी अनुभूतियाँ और संतुल्य इस रूप में सामने आते हैं कि सारा निवरण सुसंबद्ध हो जाता है। यदि रचनात्मक कला का विचार किया जाय तो इस सेती पर सिद्धी गई कहानियाँ अधिक मनो रंजक होती हैं। प्रथमपुरुषवाची सेती की मुतना में इसमें रचनात्मक पातुरी अधिक धपेक्षित होती है, क्योंकि कथांच का प्रसार कुछ अधिक संवाधों में विभाजित होने के कारण इसमें जोड़-तोड़ का कौशल कुछ अधिक दिखाना पड़ता है। यही कारण है कि इस सेती को अधिक नहीं धपनाया गया, यों तो इस डंप की कुछ धम्सी कहानियाँ हिन्दी में मिली पई हैं। (मेमबन्ध की प्रसिद्ध कहानी 'दो सखियाँ', प्रसाद की 'देवदासी', विवाहसंकर व्यास की 'अपराध' और लक्ष्मण विद्यालंकार की 'एक सझाह' कहानियाँ इस वर्ग के धन्तपत धारेंगी) इस सेती का एक स्वल्प बह भी हो सकता है जिसे बायटी-पद्धति कहा जा सकता है। इस पद्धति का कथानक इस डंप से सिखा जाता है कि मानुष होता है जैसे जिन रोचनामया सिखनेवाला कोई मानुष व्यक्ति धपने बीधन की कुछ दैनिक घटनाएँ धपना अनुभूतियाँ सामने रख रहा है।)

सेतीगत वर्गीकरण के भीतर ऐसी कहानियाँ भी घाटी हैं जिन्हें किसी प्रकार के व्यंग्यार्थ की सिद्धि होती ही। भैसे ही इस प्रकार की कहानियाँ संख्या में कम हों पर इन व्यंग्य प्रधान धाम्नापदैतिक रचनाओं में एव विशेष प्रकार का धमस्कार रहता है। इन कहानियों से एक ऐसे व्यंग्यार्थ की सिद्धि होती रहती है जो धर प्रकार से इतिवृत्तात्मक होते हुए भी धपने में स्वयं इच्छ बल जाती है। कहानी में कुछ कथांच भसे ही हो पर पाठक का साध ध्यान उठी प्रतिपाद्य व्यंग्य की धोर लमा रहता है। इसे रचना की एक सेती माननी चाहिए, विषय नहीं। इसमें बात इस डंप से कही जाती है कि कहानी के धग्य विविध तरह नदग्ध हो उठते हैं केवल तात्पर्याय ही धारों तरह नर उठता है। इस सेती में सांकेतिक प्रतीकधायक धोर धाम्नापदैतिक कहानियाँ बड़ी नुंवर मिली

का चुकी है। यदि इनका कुछ व्यावहारिक स्वरूप देखा जा तो पाठक की कहानी 'सुख', प्रेमचंद की 'दो बैलों की कथा', पांडेय वैष्णव शर्मा की 'सुखगा', प्रसाद की 'कथा', 'परतप की पुकार' और 'प्रलय की घापा' कहानियों में देखा जा सकता है।

कहानियों के वर्गीकरण का जो दूसरा दृष्टिकोण है, उनमें कहानी के विषय का ही अधिक विचार मिलेगा। यह विषय दो प्रकार का हो सकता है—कहानी का प्रतिपाद्य-विषय और प्रसाद की प्रमाणता कथा का प्रसार करनेवाला विषय। प्रतिपाद्य

पक्ष को लेकर बलमे में विषय या तो भावात्मक होया या बरिच-प्रधान। इन दोनों के अतिरिक्त यह कुछ उच्चप्रमाण भी हो सकता है। मान प्रमाण कहानियों में कथाय अतना ही पाया जाता है जितना कि माय और वृत्ति के निरूपण में नितांत धायस्यक हो। वहाँ कृत्तिकार और ध्येय का ध्यान भाव की गहराई की ओर रहता है। कथाय तो नितांत शीघ्र धायरम माय बनकर पड़ा रह जाता है।

'प्रसाद' की कहानियों 'बिसाती' और 'समुद्र-संतराज' में धायरम प्रेमचंद की कहानी 'धायरसंगीत' में इसका उच्च स्तर देखा जा सकता है। इनमें प्रतिपाद्य के भावविषय में ही सीमित है। कथाय नितांत शीघ्र और गीघ है। कथाकार की सारी उद्भावना भाव विषेय के निरूपण में ही समी विद्यार्थी पड़ती है। भावविषय धायस्य ही किसी न किसी व्यक्ति और पात्र के माध्यम से होता है परंतु बरिच की प्रमाणता फिर भी इससे भिन्न वस्तु होती है।

बरिच प्रधान कहानियों में व्यक्ति-विषेय का शीघ्र-असंलक्ष्य क्रमधाय इस प्रकार उद्घाटित किया जाता है कि जबकी सब कड़ियाँ स्पष्ट मिलक पड़ें। इस बर्य की कहानियों में कथाभाग का कुछ अधिक विस्तार धायरमक होता है। जीवन की विविध परिस्थितियों के भीतर पड़ा हुआ व्यक्ति इस प्रकार से धायने कम धायरम और विचार व्यक्त करता है

कि उसका चारित्रिक घटन और मनोबल प्रभावशाली रूप धारण कर लेता है। ऐसी कहानियों में इतिवृत्त की प्रधानता नहीं माननी चाहिए, क्योंकि पात्र स्वयं अपने चरित्र से परिस्थितियों और घटनाओं को बनाता-बिगाड़ता चलता है। इन बनने और क्षियकनेवाली परिस्थितियों और घटनाओं में कथावस्तु भले ही प्रबल पड़ता दिखाई पड़े लेकिन पठता है वह चरित्र की प्रभाव-सीमा के भीतर ही। चरित्र में जैसे-जैसे मोड़ पाते पाते हैं कथा की सारी पंक्तिविधि उसी प्रकार मुड़ती चलती है और अन्त में आकर ब्रह्म-समष्टि चरित्र के आकार ही पर लड़ी होती है। किसी भी भाषा में चरित्र-प्रधान कहानियों के बड़े सुंदर रूप मिलते हैं। हिंदी की अत्यधिक प्रसिद्ध कहानियाँ चरित्र-प्रधान ही हैं। प्रेमचंद की कहानी 'सुबान भगत' और 'बड़े भाई साहब' प्रसाद की 'गुंजा', 'सखीम' और 'साकचरी', विरहभरमाच शर्मा 'कौटिक' की 'ठाई', 'सुखेरीजी की 'इसने क्या का' कहानियाँ इसी वर्ग में आती हैं।

इसके अतिरिक्त ऐसा भी हो सकता है कि कहानी का मूलभाव या केंद्र-बिंदु न तो कोई पात्र ही बनाया गया हो और न चरित्रांकन में ही कोई भारपंज या सौरभ दिखाई पड़े।

ध्वंग्य-अध्याय अत्यंत की वस्तु कैवल्य बहुत उच्च हो जिससे तत्पूर्ण कहानी में ध्वंग्यात्मकता का बोध होता मामूम पड़े। मिठनी भी सांकेतिक या प्रतीकारत्मक कहानियाँ होती हैं जब इसके अंतर्गत या सम्पती हैं। जगद्गुरुजी की कहानी 'लकड़ी का अंधा' से ध्वंग्य होनेवाला जो उच्च है वही कहानी में प्रमाण बनता है कोई पात्र या उसके जीवन की परिस्थितियाँ नहीं। अज्ञेय की कहानी 'रघु' से ध्वंग्य होनेवाला जो अर्थ है, नहीं रचना में मूल बनता है। इसी प्रकार बरवाळ की 'तुपे की ईश', प्रेमचंद की 'दो बैलों की कथा', पंडित बेचन शर्मा 'अध' की 'सुबाना' एत्यादि कहानियों में भी समझ लेना चाहिए। इत प्रचार हीनीयत्र ध्वंग्य और विषयगत ध्वंग्य में मूलतः बात एक ही ही जाती है।

कथा के विषय को लेकर बसनेवाला जो वर्ण-विभाजन है, वह बहुत सूक्ष्म और मोटा है। धारण्य-वृत्तों का सूची और उपदेश-प्रधान कहानियाँ इसी के अंतर्गत आएँगी क्योंकि उन सब में कथा का विस्तार-क्रम ही अनोखे-अनोखे का विषय बनता है। यहाँ कथानक इस क्रम से

समाया जाता है कि या तो निरंतर धारण्य उद्दीप्त होगा रहेगा या घटना के क्रम से तीव्र कुतूहल प्रकट होगा रहेगा। धारण्य कथा की गति इस पद्धति से धार्ये बढ़ती कि किसी प्रकार के उपदेश की सिद्धि हो जाय। धारण्यमय और आसूरी वृत्तों का प्रयोग कहानियों में तो 'रामा भोज का सपना' और धारण्यों का पर्वत ऐसी कहानियों के अतिरिक्त जिनकी भी संस्कृत और पाली की कहानियाँ हैं, उनमें धारण्य रूप से ही इतिवृत्त ऐसे क्रम से समाया मिलेगा कि अंत में धार्ये-धार्ये किसी उपदेश की सिद्धि हो जाती है। ऐसी कहानियों को कुछ इतिवृत्तात्मक मानना चाहिए।

यहाँ विचार की एक बाध उत्पन्न होती है। पूर्वकथित परिणाम कहानियों में जो कथाओं की अतिरिक्तता मिलती है उनमें और इस रूप की कहानियों में अंतर कहाँ स्थापित हो। इस विषय में धारण्य का विचार इस ढंग से करना चाहिए कि परिणाम कहानियों में धारण्य का धारण्यमय स्वयं कथा का विस्तार कर देता है और विभिन्न परिणामों और घटनाएँ पात्र की धारण्य के द्वारा ही निर्यमित होती चली जाती हैं। प्रसार की कहानी 'पुरस्कार' यथा 'सातवती' में धार्ये इतिवृत्त का प्रसार प्रदान पात्र की धारण्यमय संविधान के अनुक्रम ही धारण्यमय रूप में है। 'रामा भोज का सपना' में स्थितियाँ भी

कम से बढ़ती गई हैं। उसी कम से राजा मोक्ष की मनुस्मृति में परिवर्तन होता गया है और अंत में कथा की समाप्ति के साथ राजा को मौल्य सुनती है। पांडु में कहा जा सकता है कि इतिवृत्त-प्रधान कहानियों में मनोरंजन प्रथम विचार की बात इतिवृत्त को ही लेकर चलती है। और अरिष्ट प्रधान कहानियों में प्राणगत व्यक्ति-विशेषण किसी विसंख्य को।

कहानी का सर्वोत्तर एक ढंग से और किया जा सकता है। अरिष्ट मात्र प्रथम छप्प की प्रधानता तो रचना का एक अंग-विशेष है। यदि किसी की अभिलषि ऐसी दिखाई पड़े

अल्प अंश तो ऐसा भी संभव है कि वह कहानी की केवल अंत-व्याप्त सामूहिकता और लक्ष्यनित उसके सामान्य प्रभाव-प्रकाश को लेकर ही कहानियों में विविध प्रकार की भिन्नता उत्पन्न कर ले सकता है। विषयगत विशेषण में एक बात सोच की आवश्यक रहती है। वहाँ अंत-व्याप्त यह नहीं घोषित किया जा सकता कि प्रमुख कहानी मुसलतः अरिष्ट-प्रधान है और प्रमुख भाव-प्रधान। प्रायः ऐसी स्थिति या जाती है कि अरिष्ट के साथ भाव ऐसा सम्मिलित मिले कि विशेषता उत्पन्न-ही रह जाय। 'प्रसाद' की 'महाकाव्य हीन' प्रथम 'पुरस्कार' में भाव प्रधान है अथवा अरिष्ट—ऐसा प्रश्न सामने आ सकता है। भाव-अंश का विषय 'अंधा' भी है और 'मनुस्मृति' भी। साथ ही उन पात्रों की व्यक्ति-विशेषण प्रकृतियों की कहानियों में सुधार हो चली है। उनके चारित्रिक मनोपल में एक प्रकार की सुस्थिरता का दिव्य रूप विकसित दिखाई पड़ता है। इसलिये वहाँ भाव और अरिष्ट का अन्वय संबंध स्थापित मिलता है। ऐसी परिस्थिति में अन्वय निर्देश कर देना है कि इनमें किस परा की प्रधानता है यह भाव निर्दिष्ट नहीं हो सकता।

इसलिए ऐसा हो सकता है कि मोटे रूप में कहानी के सामूहिक प्रमाण को ही लेकर स्पूस विभाजन कर दिया जाय कि कहानी जासूसी है अथवा ऐम्यारी ऐतिहासिक है अथवा नाट्य-प्रधान मनोवैज्ञानिक है अथवा इतिवृत्तात्मक भाष्य-प्रधान है अथवा

परिप-प्रधान कौटुम्बिक है अथवा सामाजिक राजनीतिक है अथवा किसी अन्य बाध से अभिवृत्त । इस प्रकार के वर्गीकरण से कहानी में किस तत्व की प्रमाणाता है, इसका संकेत नहीं मिल पाता और इस वर्गीकरण के अंतर्गत नाना प्रकार के भेद-प्रयोगों का अभिव्यक्ति संसार भी छप जा सकता है । लेकिन सामान्यतः तीन-चार वर्गों में कहानी को विभाजित कर देने से बय का स्पूस अभिप्राय तो व्यक्त हो ही

जायगा—सामाजिक राजनीतिक मनोवैज्ञानिक और ऐतिहासिक इन वर्गों के अंतर्गत घानेवासी कहानियाँ ही अधिक बिधी जाती हैं । (कोई कहानी सामाजिक है, ऐसा कहने से इतना तो निश्चित हो जाता है कि संपूर्ण इतिवृत्त का संबंध जब वस्तुस्थिति से है जो मूलतः व्यापक

समान से होती है । यह समान माध्यम का हो सकता है, अमेरिका का अथवा किसी भी देश का हो सकता है । समान के भीतर व्यक्तिगत जीवन की पाठा है और कौटुम्बिक अथवा सामाजिक भी । व्यक्ति और समान के साथ उसकी संपूर्ण इयत्ता का संयोग होने के कारण बिठती भी अपदेष्ट बर्ष तथा संस्कृति से संबद्ध बातें होंगी वे भी इसके अंतर्गत या आवेगी । इस प्रकार सामाजिक कह देने से बड़ी ही व्यापकता का बोध होता और विशिष्टता विनायक कोई बात स्पष्ट नहीं होती । फिर भी व्यापक वर्गीकरण के विचार से इतना संकेत तो मिल ही जाता है कि इस वर्ग की कहानी में समान के किसी घन अथवा रूप का प्रस्तोत्र मिल सकता है । (शेयर्ब की 'घाति' 'अभिप्राय' 'एक्ट्रेस' 'यंच परमेरवर' इत्यादि घनेकानिक कहानियाँ इस वर्ग के भीतर आवेगी ।)

यों तो राजनीतिक कही जायेवासी कहानी भी मुख्यतः समाज का ही
 संघ है और इनकी विवेचना सामाजिक कहानी के साथ ही होनी
 चाहिए परंतु राजनीति का अपना अलग
 राजनीतिक भी क्षेत्र होता है। राजनीतिक कहानी के
 संदर्भ ऐसी भी स्थितियाँ या बातें हैं,

जिसमें विषय और बात किसी एक ही क्षेत्र जाति का अपना समाज
 से संबद्ध न हो। जो अपना जो से अधिक क्षेत्रों और समाज का रूप भी
 उसके भीतर या बाहर। पंडित बेचन शर्मा 'उत्तर' की दो कहानियाँ
 जो 'बिनपापों' में संकलित हैं, अपना इसी प्रकार की और कहानियाँ
 कुछ राजनीतिक इस अर्थ में कहेंगी कि उनका प्रतिपाद्य समाज के
 संदर्भ से अलग नहीं रहता बल्कि कि राजनीतिक बातावरण और
 जीवन के किसी क्षण से संबद्ध होता है। वेच की अपना जिस की
 राजनीतिक गतिविधि का ही सामूहिक प्रभाव इनसे ध्वनित होया।
 समाज के संदर्भ अत्यंत मात्रा अलग नहीं अपना जिसका राजनीतिक
 संदर्भ पर विचार करता दिखाई देना—विचार करता हुआ,
 संसार करता हुआ, और भावना करता हुआ। ऐसी कहानियों में
 बाह्य बातावरण एक प्रकार से राजनीतिक हो जाता है—अपने ही
 प्रकृत रूप में कही अर्थ और समाज भी अलग-अलग मिले पर सामूहिक
 सामाजिक राजनीतिक प्रभाव का ही बना रहेगा।

सांस्कृतिक युग में बाहर कहानियों के अर्थ में भी मनोविज्ञान की
 चरचा बहुत बढ़ गई है। चरित्रात्मक से कुछ पृथक् हटकर और पात्र
 की किसी वृत्ति विशेष को पकड़ कर
 मनोवैज्ञानिक उसकी विविध परिभाषों के सारे अंतर
 बड़ाव को दिखाना ही मनोवैज्ञानिक कहानी
 का मुख्य लक्ष्य मानना चाहिए। कहानी के अर्थ किसी तरह की
 और न तो व्याप्त जाता है और न अलग कोई अर्थ ही
 समझ पाता है। अर्थ के अलग अलग अर्थ और अर्थों

इस शृंग से किया जाता है कि चरित्र के इतिवृत्तसमय घंघ की ओर
 बिल कम प्राकृतिक होना है और सारा मनोरंजन केन्द्रित हो जाय
 है मन-विक्रमि की विवेचना में। इन कहानियों में एकनिष्ठ होकर जब
 किसी प्रकार की मनोपथा का उद्घाटन कुछ दूर चला जाता है तो
 एक प्रकार का मनोवैज्ञानिक वातावरण का उठता है। इसीलिए
 वातावरण-प्रमाण कहानियाँ मनोवैज्ञानिक कहानियों के साथ सफलता
 से चल सकती हैं और बड़े सुन्दर प्रमाण उत्पन्न करती मिलेंगी।
 'प्रसन्न' 'मपलौक' इत्यादि कहानियों में इस प्रकार की विशेषताएँ
 मिलती हैं। 'प्रेमचंद की कहानी 'एनट्रेस' और 'आत्मसंगीत' तथा
 'मसाद' की कहानी 'विजया' 'घण्टी का मोह' और 'नूरक साई' में भी
 मनोवैज्ञानिक अध्ययन का अच्छा प्रदर्शन मिलता है।

इस पद्धति पर बलकर जो एक बृहत् स्तूप बने महत्त्व का
 प्रमाणित होता है वह है ऐतिहासिक कहानियों का। ऐतिहासिक
 अध्यय का अभिप्राय बहि व्यापक धर्म में लिया
 जाय तो उसके दो रूप हो जायेंगे। इतिहास में
 पाई हुई किसी प्रमुख स्थिति पटना प्रथमा

ऐतिहासिक

स्थिति को लेकर जब कुछ धर्म की बात कह दी जाय तब तो यह निवृत्त
 स्पष्ट रहेगा ही कि रचना ऐतिहासिक है। उसमें इतिहास की सभी
 बातें नियोजित दिखाई देंगी परंतु इसमें पटना और पात्र की
 प्रमुखता होगी मुखरित रहेगी कि उद्योग का प्रभाव कहानी के घंघ
 में मुखरित होता रहेगा। इस आधार पर लिखी हुई कहानियों को
 बहि ठीक से कई तो इतिहासाधित कह सकते हैं। इस धर्म की रचनाओं
 में ऐतिहासिक वृत्त का आधार लेकर उसकी कोई प्रमुख पटना और
 सबसे संबद्ध बिधिष्ट पात्र इस प्रकार सामने आएगा कि उसके
 व्यक्तित्व पाठक के बिल पर छा छाया।

इस धर्म से भिन्न इतिहास के पद्धत की एक बृहत् धर्म की भी
 होती है जिसे इतिहासानुमोदित धर्म कहना चाहिए। इसमें वृत्त

घोर पात्र चाहे इतिहास-प्रसिद्ध हों चाहे न हों पर जसमें जो सांस्कृतिक धारणा बातावरण-संघर्षी विकरण घोर वर्जन सामने सजा किया जायगा वह सर्वथा इतिहासानुमोदित होगा। ऐसी कहानियों में वस्तुतः प्रभाव व्यक्ति और घटना का नहीं पकटा बल्कि जसमें जो एक विशेष प्रकार का ऐतिहासिक बातावरण गठित होता है, उसी की ध्वनि संत में धाकर पाठक के मस्तिष्क पर छा सठती है। ऐसी रचनाओं में व्यक्ति और घटना प्राथम मान होते हैं, साम्य होती है ऐतिहासिकता की प्रभावसमष्टि। यदि प्रसार को 'ध्वन्या' में संघटीत धारण की ऐतिहासिक कहानियाँ इतिहासाधारित कहानियों का उदाहरण यानी जायेंगी तो 'शोधी' और 'ईश्वर' संघर्षों की ऐतिहासिक कहानियाँ इतिहासानुमोदित कही जा सकती हैं। 'सासवती' 'शाकास कीप 'पुरस्कार' 'कुम्भा' कहानियों में पात्र और घटना को हम नुत जा सकते हैं, पर जिस प्रकार का बातावरण उन कहानियाँ में उपस्थित किया गया है उसकी सीधे विधाधिनी धाया विषय पर बड़ी देर तक धार रहती है। मूलतः इन्हीं की कुछ ऐतिहासिक कहानियाँ मानना चाहिए। धारण कहने का यह है कि कहीं इतिहास के पयात्र विवरणों को लेकर ही कहानी लिखी जा सकती है और कहीं केवल इतिहासानुमोदित किसी प्रकार के सामूहिक बातावरण को निर्दिष्ट करने में ही इतिकार की धारी धक्ति लपी भिसे। ये दोनों धारें धतग-मलग भी कहानियों का विषय बन सकती हैं और धाप ही दोनों का धामंजस्य-सूत्रक धपवा एकत्व-विधाधक स्वस्य भी सजा किया जा सकता है। धवस्य ही प्रथम कोटि की रचना सामान्य कहानीकार भी कर सकेंगा पर द्वितीय धम की इतिहास केवल शीघ्र कलाकार ही उपस्थित कर सकता है।

इस प्रकार बोने में यदि विषय को सपटना ही तो कहा जा सकता है कि कहानियाँ का वर्गीकरण केवल दो पद्धतियों पर हो सकता है—सीधीयत और शीठियाधत। प्रथम पद्धति का संबंध

रचना-विधि से होता है इसलिए वह किसी सीमा तक परिमित ही
रहैया पर प्रतिपाद्य-पक्ष को लेकर बल्लभेवासा वर्ण-विभाजन
सारांश नामा प्रकार का हो सकता है । अतएव उसका
रूप-विस्तार अनिर्दिष्ट ही रहता है ।
उसके वर्गीकरण में विचारक स्वतंत्र रहता है
जिसे इंग को भी चाहे वह स्वीकार करे और जिस स्पष्ट भाषा सूत्र
पद्धति को चाहे अपनाए ।



वातावरण

परिस्थिति-योजना

कहानी रचना के तर्कों और उपपदानों की इतनी विवेचना हो जाने के उपरांत इन मुख्य तर्कों की और भी गहन देना आवश्यक

है जो बस्तुतः खुलकर तो सामने नहीं आते

परिस्थिति का पर वैपम्य से कहानी को निरंतर अनुप्राणित

सामान्य परिचय करते रहते हैं और उसके सामूहिक एकात्म की

निरंतर विकसित करते रहते हैं। कथानक के

प्रसार और प्रमाणात्मित को सजीव बनाते हुए ये मुख्य तत्व अन्य विभिन्न तर्कों का विविध संबोधित करने में योग्य होते हैं। सर्वप्रथम

'परिस्थिति-योजना' का विचार कर लेना चाहिए। इसका प्रयान अर्थरूप होता है संपूर्ण कथानक के भीतर घाई हुई क्रियाओं और

परिणामों का तर्कसंगत क्रमबद्ध। यथावता को कल्पना की सीढ़ियों के

एसा उभारना चाहिए कि किसी घटना अथवा कर्म के पृष्ठ की समस्त परिस्थितियाँ कड़ी के ऊपर संमिलित साम्य पड़ें। पाठक को यह

बिदिग होना चाहिए कि समुक्त कर्म के पहले उसके मुख्यतः कारण किन कारण में उपस्थित थे। परिस्थितियों की सीढ़ी चढ़कर ही कोई परिणाम-निरंतर पर पहुँचता है और समस्त ही सफ़लता है।

असाहस्य के रूप में बरि 'सुखान भगत' कीर्तिक प्रेमचर की क्यूनी
 को नें तो दिखाई पड़ेना कि 'साय मागवजीवन में बड़े महत्व की वस्तु
 हैं—इस बात को कुशल सेसक ने बड़े कोपन
 परिस्थिति-योजना से उपस्थित किया है। परंतु इस महत्वपूर्ण
 घटना के पूर्व की समस्त परिस्थितियों का
 धीर विचार कीजिए। सम्यक्साय एवं धनक
 'सुखान भगत' विचार कीजिए। सम्यक्साय एवं धनक
 परिष्म के परिणामस्वरूप सुखान भगत के
 क्षेत्रों में घना उपजता है। ऐसी स्थिति में अपनी बर्बत प्रकृति के
 अनुसार जो सामान्य साधना उसके मन में उठती है, वह तीर्थ यत्र
 धीर पूजापाठ-विषयक होती है। सामान्यतः यही भारतीय किसान का
 पार्य स्वल्प धीर व्यावहारिक प्रकृति है। उस धीर सुखान की
 अभिवृत्ति निरंतर बढ़ती गई है। प्राये जबकिर वह साधु-संतों की सेवा
 धीर कथावार्ता में इतना लम्बव हो जाता है कि कुटुम्ब का धारिपत्य
 उसके पुत्र भोला को भिन्न जाता है, धीर वह पिता के क्रिया-व्यापारों
 की टीका-टिप्पणी करने लगता है। एक समय ऐसा आता है कि सुखान
 के कहने पर भी एक भिक्षुमये को मुट्ठी भर धन धिलने में बाधा
 बठ बढ़ी होती है। इस दुरवस्थिति में स्वयं सुखान की पत्नी बोन
 देती है—यह विधेय बोन की बात दिखाई पड़ती है। इस घटना से
 सुखान को ऐसा भटका समता है कि उसकी धार्मिक सुस जाती है। इसी
 रक्त पर आकर साय का भाव उसके भीतर बपता है धीर वह पुनः
 अपने छोए हुए धारिपत्य को प्राप्त करने के सिए पूर्व की भाँति धरवा
 घससे भी अधिक धन धीर प्रयत्न में निरत हो जाता है। इस परिणाम
 सुखक घटना के पूर्व यदि कुशल सेसक परिस्थिति-योजना का धन ठीक
 से न संबधित करता तो घटना का साय प्रकृतत्व गष्ट हो जाता धीर
 प्रतिपाठ-यत्र धरिफरित धरवा धरपुट रह जाता। सुखान के भीतर वह
 बाव जैसे उत्पन्न हुई ? इस जानरण के क्या कारण हैं ? इन्ही बातों की
 जो एक निरिष्ट धन धीर धनिप्राय से उजावा गया उसे परिचरि

योजना कहला चाहिए । किसी घटना घबरा परिमाण को खरीब एवं बर्बाद बनाने के लिए वह नितांत प्राथमिक होता है कि तबतुल्य कारण घबरा परिस्थितियाँ प्रस्तुत की जायँ ।

इसी तरह प्रचार की प्रसिद्ध कहानी 'पुरस्कार' को लीजिए । उसमें मन्सूतिका एवं दरब की प्रेमवैधी स्थापित होने के पूर्व की संयुक्त परि

स्थितियों को विचारपूर्वक देखना-समझना

विरिस्थिति-बोझना

चाहिए । मन्सूतिका का एकमात्र खेत राज

घर

नियम के कारण क्षिप्त जाता है, वह प्रतिष्ठित

'पुरस्कार'

कुस की नि-सहाय दुबली अपनी समस्त कोमल

भावनाओं को लिए हेम्य एक कदवा का विषय

बन जाती है । ऐसी स्थिति में सहानुभूति और समवेदना का कोमल
पात्रार पाकर उसका तरल हो जाना नितांत स्वाभाविक है । निर्वासित
राजकुमार दरब अपने ही समान कष्ट में पड़ी मन्सूतिका को देखकर
धाकपित होता है और दोनों का योग कहानी के अन्तिम में रंग भर देता
है । इस मैत्री भाव की स्थापना के मूल में मैत्री मानवीय कृतियों एवं
स्थितियों को ऐसे ढंग से समझना पया है कि वह सर्वथा प्रकृत माणुस्य
पड़ सके सम्बन्ध प्रस्त हो जाता कि कहीं मन्सूतिका और कहीं राजकुमार
दरब । हममें मैत्री क्यों हुई ? धाये बसकर दरब को प्यार करते हुए
भी मन्सूतिका को बचको बचका देती है उस घटना के पूर्व कुसल
केपक ने धाभिबन्धन से सम्बुल को उसके मानसिक इन्द्र की उत्तम
ढंग से चिह्नित किया है, वही मूल कारण का संकेत देता है । इसी
कारण को लेकर वही घटना संभव बनाई जा सकी है । इसी तरह
किसी भी कहानी में बहो-कहीं किसी कार्ये घबरा घटना की धाकपेक
कम प्रदान किया जाता है, उसके पूर्व परिस्थितियों का एक योजना
क्रम प्रवेष्टित होता है । यदि इन्हीं परिस्थितियों की सीढ़ियों की क्रम
से न समझा जाय तो प्रकर्ष का विचार घराहृदिक माणुस्य होना और
प्रभाव की सर्वाष्ट में स्वरवान बढ़ जायगा ।

विश्वामरनाथ स्वामी 'कोशिक' की प्रसिद्ध कहानी 'ठारि' में इतिवृत्तात्मकता अधिक होते हुए भी परिस्थिति-योजना का संकटन बहुत ही मनु

परिस्थिति-योजना
और 'ठारि'

कृत हुआ है। पर्वत के खेर में ठारि के देखते देखते मनोहर झर पर से गिर पड़ता है और वह उसको बचाने की चेष्टा नहीं करती। उसके इस क्रूर निरन्ध्र के मूख में मनोवृत्ति का कैसा वृषित वेग है इसी को विविध विधित करने में सैधकने अधिक समय दिया है और प्रसिद्ध इतिवृत्त के माध्यम से वह बिलाने की चेष्टा की है कि इस सीमा तक की कृपता ठारि में किस प्रकार अपना रूप संपठित कर सकी है। अपने-पराये का भेद इतना मनुष्य प्रेरक हो सकता है, इसका उदाहरण ठारि के घाबरन में मिलता है। परंतु इस सीमा तक व्यक्ति कैसे और किन मानसिक स्थितियों में पहुँच सकता है इसका विवरणपुत्र इतिवृत्त पहले दे दिया गया है। किस प्रकार ठारि में पुत्र प्राप्ति की प्रबल सामना है पर वह अपने मतीने को उस रूप में ग्रहण नहीं कर पाती जिस रूप में उसके पति करते हैं। दूसरी परिस्थिति यह वैदा होती है कि उसके पति बकीस साहब बालक के प्रति ममय-स्नेह की अधिकारिक अभिव्यक्ति करते हैं। इसमें उसमें तीव्र प्रतिहिंसा की भावना उद्गीर्ण होती है। ठारि के क्रूर रहने से बालक मनोहर में भी जो उसके प्रति सहज परिवर्तन दिखाई पड़ता है उससे भी ठारि की क्रूर वृत्ति उद्गीर्ण होती रहनी है। इन परिस्थितियों को सैधक ने जो विशेष रूप से उजा दिया है उससे प्रस्तुत परिणाम सहज और सजीव हो उठा है। मनोवैज्ञानिक उदार-बड़ाव दिखाते हुए माने बढ़ना पड़ा है इसीए इतिवृत्त की प्रसिद्धता स्वीकार करनी पड़ी है और कहानी का विस्तार हा गया है।

उक्त उदाहरणों के द्वारा यह बात सरलता से समझी जा सकती है कि परिस्थिति-योजना का प्रयोगमय जो सीर्य है उसका सम्बन्ध सीधे मनु-विम्याय से होता है। मनु के प्रसार में मनुष्य की

वर्तमानकी और भौतिक क्रियाओं की परिस्थिति आकारित रखती है—
 अपने पूर्व की परिस्थितियों पर। एक स्थिति से दूसरी स्थिति तक

पहुँचने में परिस्थिति की सीढ़ियाँ बड़ा काम से
 सारांश सब जाती हैं। तभी कारण से काय और कार्य
 से परिणाम तक पहुँचा जा सकता है। जो

वेचक जितना ही अधिक प्रकृत रूप में इसका संयोजन करेगा उतना ही
 अधिक उसकी रचना में यथार्थ समीक्षा उत्कृष्ट प्राप्त करेगी। जिन
 कहानियों में इतिवृत्ताय जितना ही कम होवा उनमें परिस्थितियों के
 विचलन का प्रादुर्भाव भवेगा उतना ही कम हो जायगा। उसकी कल्पना अनुमान
 के आधार पर सहज्य कर से सकता है। यत उसके शाब्दी प्रतिपादन
 का संकोच स्वाभाविक है। उदाहरण के लिए प्रसाद की अनेक कथा
 तियों को लिखा जा सकता है। समुद्र-संतरण सीपक रचना में इतिवृत्त
 की नितास्त स्पष्टता होने के कारण परिस्थिति-कथन के लिए स्थान ही
 नहीं मिल सकता है। राजकुमार का समुद्रवेष्टा की धूम्य मनोरमता से
 उध पीयर-बाभा को देखना और उस पर मोहित होना इतना भावुकता
 पूर्ण और सहज व्यापार है कि उसके लिए भौतिक कारणों के कथन की
 विशेष आवश्यकता ही नहीं रह गई है।

पीठिका

कहानी के सर्वांग पर अपनी छाया डालनेवाला और प्रभावशक्ति में पूर्ण योग देवेवाला वृत्त महत्वपूर्ण तत्व होता है। पीठिका—मातन—सामान्य परिचय

माघार । इसी पीठिका पर आसीन और धारणा होकर रचना का स्वरूप यथित होता है । इस संबंध से कहानी का प्रतिपाद्य धार्य होता है और उसे प्रयोज्यगुण प्रदान करनेवाली धारणात्मक वस्तु होती है पीठिका या माघार । आचार-धार्य-संबंध को समझने में कोई बिंब नहीं हो सकता । एक व्यावहारिक उदाहरण ही बनेट होगा । यदि किसी विषय हीरक-संबंध को कोई धात्री मोहर-मिठी में ठान कर मने-मुर्बेले बदन पर रख दे और दूसरी ओर कोई बबहरी उसी को लुब लाफ करके किसी नीले रेशम के परिप्लुत बदन पर रख दे तो माघार पल के सोरय का श्रेष्ठ बड़ी सरलता से समझ में आ जायगा । पचास तो एक ही है पर अनुकूल और प्रतिकूल माघारों पर रच देने से बही भिन्न रूपों का प्रभाव उत्पन्न करता है । इसी वादुत्य को धात्री मानकर देखा जा सकता है कि जिस सांकेतिक धारणा माघार्यक कहानी के सर्वथा अनुकूल उसकी पीठिका अपनी संयुक्त धार-उज्जवा के धार धारने आ जाती है जसमें ममित्रीबन-योग

अपस्थित हो जाता है और कहानी के तात्पर्य की स्पष्ट पीठिका से ही मिल जाती है। यदि कहानी का विषय कल्पना प्रथम भाग्यभाग है तो उसकी पीठिका-विषयक विभिन्न सामग्री भी मायात्मक ही होनी चाहिए। मायुक्त्या एवं कल्पना की पूरी रंजीनी अभी बिलती है, जब उसी के अनुकूल प्रसार की श्रुति भी उसी मिले।

रंजित की समस्त सजावट जैसे धमिले और उसके विभिन्न कार्यों की समीक्षा भी मर्यादा प्रदाय करती है उसी प्रकार कहानी के वस्तुविन्यास के भीतर धमिले, रंजित और काल से अनुमानित विभिन्न वस्तुस्थितियाँ ही उसके प्रतिपाद्य पक्ष को निर्दिष्ट मुद्रित करती रहती हैं। जैसे नाटक में विषय एवं रंजित की वस्तु-विधान के संश्लेष से दृष्ट-कर्म की प्राप्ति होती है उसी प्रकार कहानी के मूलभाव की प्रेरणा भी उसी पूर्णतया विकसित होती है जब उसकी प्रकृति के अनुकूल ही उसके वस्तुस्थिति की समस्त सजावट हो। बोड़े में कहा जा सकता है कि कहानी में आचार-आयम की संरक्ष-सोचना प्रमुख वस्तु है। इसके अन्तर्गत में उसका समष्टिप्रभाव मसख और धमिले रह जा सकता है और इस प्रकार सारी रचना निष्पन्नोन्नत सिद्ध हो जा सकती है।

यदि विचारपूर्वक देखा जाय तो इस पीठिका के दो पक्ष हो जाते हैं। एक पक्ष का रूप यह होता है जहाँ विचाररंजित में प्रकृति का ऐसा प्रतीकमय चित्रण मिले कि कहानी के प्रतिपाद्य पीठिका के दो पक्ष का संयुक्त महत्त्व जस प्राकृतिक चित्रण से ही स्पष्ट हो पड़े। जैसे प्रकृति कहानी के कथानक की होती उसी के अनुकूल प्राकृतिक सजावट का धारण विद्या दिया जायगा और जस पर समशील होकर जीवन की वस्तुस्थिति का चित्रण मिलेगा। एक प्रकार से देखा जाय तो कहानी चित्रों की एक श्रृंखला होती है। उसके एक-एक परिच्छेद स्वतंत्र स्वयं होते हुए भी कालात्मक रूप से एक में निरोध हुए होते हैं। इन प्रत्येक स्वतंत्र चित्रों के

धारम में भी प्रकृति के संक चित्रों का विधान पूरी व्यवस्था से हो सकता है और इस प्रकार बाबि से अंत तक कथानक के धर्म को बहुत करनेवाले और भी प्रकृति-चित्र सिध् वा सकते हैं। शृंगार, कथना भयानक जिस रस की भी विवृति कहानी में होनेवाली होती है उसका धारम रूप प्रतीक-प्रकृति से इस धारमिक प्राकृतिक बृह्म-विधान में छपि हिय रहता है। इस प्रकार के प्राकृतिक चित्रों की यही उपादेयता माननी चाहिये। उनके कारण कथानक का धारा प्रसार रसात्मक हो उठता है।

पीठिका-रूप में प्रयुक्त प्राकृतिक चित्र-विधान के अन्धे उदाहरण सामान्यतः प्रसार की अधिकता कहानियों में और विशेष की 'अपरोक्ष' संग्रह की कहानियों में दिखाई पड़ सकते हैं।

प्रथम पद्य 'पुरस्कार' शासवती' और 'विद्याती' कहानी की पीठिकाओं का स्वल्प विषय को अत्यंत स्पष्ट कर देता है। 'पुरस्कार में कोरास के राजकीय उत्सव का विर्य्य समारंभ प्रायःकालीन सुवोदय की सुपभा के साथ कर देने से विषय को जो भव्यता प्राप्त हो गई है वह बड़ी उचीच है। इसी तरह सरागीरा के अंत में पेर जाने हुए शासवती की अस्थिति कथा धातोरुमय बन जाती है। 'विद्याती' में भी पीठिका की अत्यंत श्रेयमिच्छा उपदेशीय प्राकृतिक सुपभा के भीतर ही छिपी है। ऐसे मनोहर आकार पर स्थापित करके लेखक ने कहानियों की प्राथम्य बना दिया है। यथावकाशी कहानियों में भी अंतर्गत ऐसे सैखकों ने धैर्य-उच्चिहनों की स्वच्छंद सुपभा के बीच अपनी कहानी की स्थितियों को अजाया है। प्रकृति का भी प्रयोग वहीं अत्यन्तमूलक और कहीं यथाव हो सकता है। विषय की विशेषता के भीतर दोनों प्रकार के प्रकृति-चित्र धा सकते हैं। अपरोक्ष की 'पद्म और 'हिमोबोल की बसन्त' रूपान्ति कहानियों में पीठिका की उदात्त बहुत ही प्रकृत और अभिप्रायपुक्त है। प्रकृति-चित्रण की यह पद्धति कथन कहानी के धारम में ही ही ऐसी बात नहीं है। उसके किसी भी संकीर्ण अथवा परिश्रम से संतप्त यह रूप अजाया वा सकता है।

पीठिका के दूसरे पक्ष का संबंध स्थानीय विषय विज्ञान से होता है। कहानी की घटनाएँ क्रियाएँ इत्यादि किसी स्वाम-विशेष पर स्थित होती हैं।

द्वितीय पक्ष

यद्यपि उस स्वाम के वस्तु-विवरणों के साथ उसका संयोग पुष्पतया बँट जाय तो उन्हीं में एक सौंरम उत्पन्न हो जाता है। विषय के विस्तार के

साथ यदि देश-सङ्घ का प्रवृत्त परिचय हो जाय तो विषय-बोध में यथावत् उत्पन्न हो जाती है। इस प्रकार के देशकाल-विशेष की संयोजना से विषय के प्रति बड़ा कुतूहल उत्पन्न हो जाता है और उसमें एक प्रवृत्त विज्ञानक सजी-बना सहारा सटती है। इस प्रकार के स्थानीय विवरणों और साज-सज्जाओं की समावृत्ति में या तो भाषा योग देती है प्रथमा स्थानीय यथार्थ जीवन की प्रकृति। स्थानीय सांस्कृतिक समावृत्ति और वस्तु-स्थितियों से एक वैशेष्यता का

बो धामास मिलता है वह रचना को प्रभावोत्पादक बनाने में बड़ा योग देता है जैसे—गुंदाबनलाल की कहानी 'घरभागत' में एक शब्द 'घाऊनी' ने कुँदसर्बाह की प्रकृति दे दी। उन्हीं तरह प्रभेय का एक शब्द 'बुम्साई' पाषाण का संकेत कर देता है। उपेन्द्रनाथ प्रक की कहानी 'बाबी' में अँटबाड़ा के बुस्स ने और तरत्स्थानीय विधि-धारा भाषा ने प्रायः का स्पष्ट संकेत कर दिया है। इस प्रकार भाषा की विवरणानुसंधान से प्रयुक्त और क्रिया-कलाप स्वाम-विशेष का यथावत् प्रतिनिधित्व कर देते हैं और साथ ही स्थानीय विषय-विज्ञान पुष्प

कर देते हैं। कमी-कमी सुपस संकेत अपनी सारी कहानी में स्थानीय विषय-विभाग को धार्मिक-सांस्कृतिक समावृत्ति कर रखते हैं। वहाँ संयुक्त कहानी से प्राचीन वास्तविकता प्रकट होती रहती है, इस विषय में प्रकाश की कहानी 'समीन' और प्रभेय की कहानी 'हिन्दी-बोध की बचपन' पाठ्यरूप में प्रहृष की वा सटती हैं। प्राचीन-कालीन वस्तु-विस्तार में स्थानीय विज्ञान-प्रकृति के संकेत की सांस्कृतिक उन्नीयता पर प्रकट-रहित रहती है। यदि इतिहास की प्राचीनता से प्राणमय बना होगा। प्राचीन के संस्कार में सुपरिचित प्रकाश की कहानियों में देश और काल की प्रकृति व्यञ्जना देयी जा सकती है।

परिचय

घड़ी तक दिन तीन वर्षों—परिस्थिति-योजना, प्रकृति-संरचना और देश-काल-विशेष की बात कही गई है। उनकी एक इकाई स्थापित करनेवाला चतुर्थ वर्ष होता है—

सामान्य परिषद परिवेष्ट घणना परिषेपमंडल ।^१ जैसे राज और राज्य की विविष्ट शक्ति और शौर्य

के प्रतीक-स्वरूप उनके कल्पना-विशेषों में शक्ति एवं धारणा का एक पंडित मुद्राहति के चतुर्विध प्रतिष्ठित किया जाता है। यद्यपि जैसे सूर्य और चंद्रमा के चारों ओर तीव्र प्रकाश का एक बंधा हुआ पंडित रहता है। उसी प्रकार की विशेषता कहानी में भी रहती है। बहानी के विभिन्न परिवेष्ट एवं चंद्र घणने में पूर्ण होते हैं—एक घणने में कि एक देशकाल और परिस्थिति के स्वरूप में धारणा रहते हैं। वे सब मिलकर एक दिन होते हैं। जैसे दिन में राम-बीता मन प्रोठ के संतपस में बहरी हुई गरी से प्रस सेकर कुर्वों को सीपते और मूक-शावकों से घेतते दिवाए चारों ओर पीठिका से पूर्वतया संबन्धित परिस्थिति का स्पष्ट एक ऐसा पृथ परिवेष्ट बंधा दियाई पड़ेना जो स्वयं घणनी घणवता का बोध करा देना। यह घणवता

१ (i) अक्षयतेरम उदकतरे रविर्बन्धनीमपरिक्रमवदका—सुबंत
(११, १३) । (ii) 'परिवेष्टतु परिधिः'—हल्पमर ।

प्रबन्ध ही सफाई होगी—पूरी कहानी की पर वह एक बिज धरने में पूरा होना । उसके उत्पन्न के समझने में किसी प्रकार की भ्रांति नहीं हो सकती । परिवेद्य-मन्त्र का सद्य यही रहता है कि अपने वृत्त के भीतर जीवन और जगत् के किसी लंब विस्तार की सुंदरता से सगेटे रहे और उक्त तीनों तत्वों को इस प्रकार समोचित करे कि वह एक समुद्र हिमालय में बठिठ दिखाई पड़े ।

परिवेद्य-परिधि की विवेचना मूलतः कहानी के कलात्मक तत्व के अंतर्गत है । रचना में संपूर्ण इतिवृत्त को कुछ ऐसे सुविचारित ढंग से बाँट दिया जाता है कि प्रत्येक खंड प्रकृता परिच्छेद अपने परिवेद्य में प्रायः पूर्ण-सा रहता हुआ भी कहानी की सामूहिक योजना और उसके समष्टिप्रभाव को उत्कृष्टोत्सुख बनाता रहता है । एक देश और काल की परिमिति के भीतर और कुछ परिस्थितियों की संमति में मानव-जीवन की एक क्लृप्तक दिखाना ही कहानी का साम्य पद्य होता है । जैसे एक वृत्त कई भंशों में विभाजित कर दिया जाय तो उन भंशों की पूरी बोध में वृत्त की समग्रता व्युत्पत्तित हो जायगी वही तरह कहानी के विभिन्न परिच्छेदों के आघार पर इतिवृत्त की सारी पठिबिधि का बोध हो जायगा । ये परिच्छेद मानव-जीवन की एक क्लृप्तक की विविध भूमिकाएँ हैं और उन भूमिकाओं की अपनी परिधि प्रकृता मंडल है । वही कारण है कि कहानी के प्रत्येक खंड में एक परिस्थिति का पूर्ण चित्रण रहता है । किसी कहानी में यदि चार खंड हैं तो विचारपूर्वक देखने से प्रकट होगा कि प्रत्येक खंड की कला और चित्रण स्वतः अपने में पूरा होता है । ऐसे प्रत्येक खंड की अपनी पीठिका रहती है और वह एक विशिष्ट शैलीय प्रकृता स्वाभाविक रचयंत्र की परिधि में बंधा रहता है ।

परिवेद्य की परिधि किस प्रकार बनती है इस रहस्य को जो-एक पराहरण के द्वारा स्पष्ट कर देना आवश्यक है । 'प्रसार की प्रसिद्ध कहानी 'पुरस्कार' के प्रथम प्रकृता द्वितीय खंड के भीतर उक्त विभिन्न तत्वों का एक सामूहिक संयोजन देखा जा सकता है—

आर्द्रा नक्षत्र, आकाश में काबू-काबू बादलों की तुल्य, जिसमें
बैल-मुँहुमी का गंभीर शोष । प्राची के एक विरह होने से स्वर्ण

शुभ्र मूर्धने कथा या—देखने लगा महाराज
परिषेध का की सवारी । इन्क माका के घंघर में धम
पराहरण लख उर्बा-मूमि से सीजी बास बढ रही
थी । नगर-दोरक से जयघोष हुआ, भीड़
में यक्षराज का अमरपारी शुक बज्रत दिखाई पडा । बर हर्ष चीर
बस्ताह का समुद्र दिखाते भरता हुआ आगे बढ़े छटा ।

ममात की हेम-धिराँ से यतुरजित बगही-बगही बूँदों का एक
सोया स्वर्णमण्डिक के समाज बरस पडा । मंगल सूचना स जगता मे
हर्ष-प्यथि की ।

यहाँ तक कुशल लेखक ने प्रकृति-वीटिका की सबावट की है, इसके
आगे विविध प्रकार की धातुत वस्तुतिलि का रखापन है । पससे देव
कास की विवृति पूरी हो जाती है और मानवजीवन की कँठी बलक
घाय हो जानेवासी है इसको पूरी धूमिवा निम्नलिपित नचाप मे
मिसेपी—

रखों हाथिपीं धीर करवारीदियों की वलि कम गई । ररकों की
सीक भी कम ब र्था । गजराज धंड गया, सीमियों से महाराज उठरे ।
धीयाम्बवती और ह्मारी सुंदरियों के दो एक अन्नपत्रकों से सुखे-
मित मंथक-कट्टर धार फूक, हुँकुम तथा पीछों से बरे बाध बिबे,
मजुर गाव करत हुए थाय बडे ।

महाराज के मुख पर मजुर मुस्मान थी । सुोदित बर्ग न स्वापयन
दिया । स्वर्णरंजित हल की सूड पकड़ कर महाराज मे हुले हुए सुंदर
[पुट रीछों को पकने का संकेत किया । धागे बज्जे ली । मिजोरी
सुमारियो न यीछों और पूछों की बर्षा की ।

कोरुध का हुँक बसब प्रसिय ल । एक दिन क बिबे
महाराज को हुँक बगवा पदता—उस दिव ईंद्रज्य की पूमधान

होती, गीठ होती। मगर-निवासी इस पहाड़ी-भूमि में घाबड़ मरते। प्रति वर्ष कृषि का बह महोत्सव उत्साह से संरच होता, दूसरे राज्यों से भी कुछ राजकुमार इस उत्सव में बड़े नाच में आकर योग देते।

मगध का एक राजकुमार अर्थात् धर्मेश्वर पर बैठा वड़े कुदरत से यह धरप देक रहा था।

इस प्रकार के बेचकास के आयोजनमय आचरण के भीतर मनुष्य के आचरण और क्रिया-कलाप का एक विश्व-निष्पत्तिवित पंक्तिमें में निभना। इस स्थल का वही विश्व-विभाग प्राप्त की महत्त्वपूर्ण परिस्थितियों का प्रेरक या कारणता बनेगा। अतएव उसका कीलसपून संकन सामिप्राय है। इस प्रसंग-विषय के भीतर तीस व्यक्ति विशेषता भासोक्ति हो रहे हैं—महाराज कुमाठी मधुशिका और मायधी राजकुमार मगध। इन्हीं तीनों को लेकर यथासाध्य एक दुस्य राजीव बनाया जा रहा है।

बीरों का एक बाक खिने हुए कुमारी मधुशिका महाराज के साथ थी। बीरों वाले हुए महाराज जब हाथ बढ़ाते तब मधुशिका उनके सामने आक कर देती। यह पंत मधुशिका का था, जो इस सात महाराज की प्येती के खिने चुना गया था। इसलिये बीरों देने का संमान मधुशिका ही को मिखा। वह कुमारी थी। सुंदरी थी। बीरोंव बसत उसके शरीर पर इधर-उधर छहरता हुआ स्वयं शोभित हो रहा था। वह कभी उसे सम्हालनी थीर कला-कमी धरने कूले चरकों को। कृषक बाजिध के शुभ नाच पर कमरुओं की कमी न थी वे सब बौनियों में गुंथे जा रहे थे, संमान चार अजडा उसडे अदरों पर मंद सुस्कराहट के साथ सिद्धर उठने, किंतु महाराज को बीरों देने में उसने शिथिलता न दिखलाई। सब साग महाराज का इस बचाना देक रहे थे, विरमय से कुदरत से। और मगध देक रहा था कृपण-कुमारी मधुशिका को। चाइ विरना मोश पार्ष्व। द्विती सरध विरवव।

उत्सव का यही मुख्य मकसद है। उत्सव के इस प्रधान कृत्य के समाप्त होते ही राजा और मण्डलिका के सामने एक समस्या खड़ी हो जाती है। राष्ट्रीय नियम के अनुसार मण्डलिका के वार्षिक वेत का पुरस्कार देकर निबम के अनुकूल अपनी भूमि समर्पित करके भी प्रत्यक्ष-धी सत होकर बैठ जाती है। बादायसी-युद्ध के समय हीर और मयब के सम्मान रखकर सिंहासन की कन्या अपनी एक मात्र वार्षिक संपत्ति देकर भी प्रत्युत्पन्न रूप में कुछ ग्रहण नहीं कर सकती। समस्यामूलक इसी परिस्थिति को समाधान कहानी के इस संद का मध्य है। संद का धारम इतिवृत्त के उद्यम का संकेत देता है, तो उसका अंत एक प्रकार की परिस्थिति के अंत का बोध कराता है। एक संद की परिधि के भीतर ही धारम विकास और अंत का विधान करनेवाला एक परिवर्तनमूलक अंत में ही पून बन उठता है। संद की समाप्ति इस प्रकार होती है—

महाराज को विचार-संपर्क से विद्याम की अत्यन्त आकर्षकता थी। महाराज चुप रहे। अयबोध के साथ सदा विसर्जित हुईं। सब अपने अपने शिबिरों में चले गए किन्तु मण्डलिका को उत्सव में फिर किसी ने न देखा। वह अपने खेत की सीमा पर विशाल मण्डल रूप के बिकने हुए पत्तों की दाया में अपनी सुवचाप धरी रही।

इस विषय में विचार की एक बात यह है कि धारम के अंततम अयबोधी सिद्धि के आधार पर कहानी का प्रत्येक परिवर्तन अपने में पून होता है। सामान्यतः तो परिवर्तन और परिवर्तन यही विचारों पड़ता है। इसके भीतर एक समय और स्थान पर अद्विष्ट होनवासी अंतर्गत ही साईं जाती है। मानव-जीवन की कोई परिस्थिति विशेष ही उसके भीतर पूर्वपरिचित होती है। इस प्रकार

परिच्छेद के लिए आवश्यक है कि उसके परिवेष-मध्य के अंतर्गत संकलनक्रम पर आधारित एक चित्र-विधान दिखाई पड़े। यों तो समग्र कहानी रचना में यदि संकलनक्रम का निर्वाह किया जाय तो प्रभावान्विति की संयति अर्थात् हो सटती है पर कुछसे कुछ बिना ऐसा किए भी प्रभाव का केन्द्रीकरण कर लेते हैं। प्रेमचंद की कहानी 'सुहाग का घब' में भारत से जलकर टेम्स के किनारे सोहाग का घब मिलता है। ऐसी स्थिति में संयुक्त रचना में इस जमी की बूझ-बोज सतनी आवश्यक नहीं हो सकती बितनी एक परिच्छेद के भीतर। परिच्छेद अथवा खंड की परिधि में जीवन और उस पर एक परिवेष चित्रित रहता है। परिवेष के पूरक तत्व पीठिका और परिस्थिति के व्यावहारिक प्रयोग में मिश्र-विश्र प्रकार की विविधता दिखाई पड़ती है। 'प्रसाद की अतीत के अंतरास वाली कहानियों में भावावेश को उद्गीष्ट करने के लिए प्रकृति-चित्रण पीठिका में प्रायः नियोजित किया जाता है पर इतिवृत्तमूलक कहानियों में यह उस स्वामीय परिवेष अथवा रंगमंच की सजा के अंतर्गत मुला-मिला रहता है। परिच्छेद के भीतर किसी निश्चित रथा में पड़ा मानव सामने आया जाता है और इस रथा की अभिव्यक्ति काल की यतिविधि एवं स्थानांकन के माध्यम से होती है। इन दोनों तत्वों का प्रयोग किसी भी प्रकार की कहानी और उसके किसी परिच्छेद के लिए अनिवार्य है और ये दोनों अंग हैं परिवेष तत्व के अतः परिवेष दूसरे अंग में परिच्छेद है। एक के अंतर्गत जब दूसरा परिच्छेद पारंग होता है तब परिवेष-अंशत बरत जाता है। इस दृष्टि से किसी भी इतिवृत्त-मयान कहानी को उदाहरण रूप में देखा जा सकता है।

इतिवृत्त-अंशान कहानियों में जहाँ प्राकृतिक साजसज्जा से अभिराम पीठिका को अंशाने का अक्षर प्रायः नहीं मिलता वहाँ भी एक परिच्छेद अथवा परिवेष के अंतर्गत किसी पीठिका पर प्राचीन जैसे एक परिस्थिति का चित्रण होता है इसका उदाहरण हिंदी की प्रसिद्ध

कहानी 'जसन कहा या' का प्रथम खंड भागा का एकटा है। उसमें बभ्रुतसर के बंधूकाटवासों के बीच में से कुछन कहानीकार ने कहानी का धारण किया है। बंधूकाटवासों के बीच में होकर एक लड़का और लड़की बीच की दुष्टान पर जा निचे—बस कहानी बस पड़ी। यहाँ तक कहानी का जो धारणिक संघ है, वह सब पीठिका-क्रम के संलग्न थाता है और उठते देसकाल की धर्मियति पूरी हो जाती है।

बड़े बड़े राहों के इकडे-गाड़ीवालों की जवाब के कोहों से जिनकी पीठ पित्र गई है, और खच एक सप है, उभरी इनारी धारणा है कि बभ्रुतसर के बंधूकाटवासों की बोली का माहम बनावें। बस बड़े-बड़े राहों की चौड़ी सड़कों पर घोड़ों की प्यबुद्ध से कुनठे हुए, इकडे बाधे कमी घोड़े की बाली से ब्रपना निरुद्ध संबंध स्थिर करते हैं। कमी राह चखते पैदलों की घोड़ों के न होने पर हरम खाते हैं कमी उनके पैरो की धंगुधियों के चारों की बीच कर अपने ही को सवावा हुआ बताते हैं, और संसार धर की रक्षाधि, निरामा और शोध के चरधार बसे, धाक की सीप बसे खाते हैं, तब बभ्रुतसर में बलकी बिरादरीवाले संत बचभरदार गजिबों में हर एक बहूठीवाले के किये उर कर मम का समुद्र बमझकर 'बचो खाकसा की।' 'इरो भाई जी।' उरना भाई।' 'धने शो खाका की।' 'इरो बाधा।' उरते हुए सपेर चेंचें, सचरी और सचरी गचे और शोमने और धारेवालों के संगत में राह खेते हैं। क्या मजाल है कि 'जी' और 'साहब' बिना मुने किसी को इत्या पड़े। बस बात बहीं कि बलकी जीव बखती ही नहीं, बखती है पर मीठी छुी की तरह महीन मार कापी हुई। यदि कोई दुर्धिया धार-धार बिलीमी देने पर धी खीज में नहीं इरती, तो उबकी बचनावसी के से बमुने हैं—'इर का जीने कोगिर, इर या करमा बाधिप, इर का पुका धारिध, बच या खी बाधिप।' समझि में

इसके अर्थ हैं, कि तू जीने लोग है तू मागोंबाही है, पुत्रों को प्यारी है, लंबी उमर तेरे सामने है, तू क्यों मेरे पहिए के पीचे आया चाहती है ? बच जा !”

ऐसे बंदूकालों के बीच में होकर एक सड़का पीर एक सड़की चौक की एक हूकान पर जा मिले—मौर इसी प्रकार कुछ न कुछ करीबने के घनिप्रभाव से दो-चार बार मौर घामे भी मिले । इन दोनों के बीच बोझ-सा सबाव भी हुआ और धाकर्यन उत्पन्न हुआ परिस्थिति के इस कारण को लेकर सड़के में जो मानसिक परिणाम उत्पन्न हुआ उसको सुंदरता से उपस्थित करते हुए कुछन कृतिकार परिच्छेद की समाप्ति इस प्रकार करता है—

सड़की भाग गई । लकड़े ने धर की राह ली । रास्ते में एक लकड़े को मीठी में डकेल दिया, एक लकड़ीबाहो की दिवमर की कमाई लोई एक कुचे पर पत्थर मारा और एक घोसीबाहो के डेले में रूप उकेल दिया । सामने बहाकर आती हुई किसी बैप्यवी से उकरा कर अंधे की अराधि पाई । तब कहीं धर पहुँचा ।

वातावरण

यहाँ तक तो उन तत्वों की विवेचना हुई जो अपने योग से कहानी के वस्तु-विन्यास को संवारते और सजीव बनाते हुए कहानी के वातावरण में घबघा प्रभावान्विति को छिड़ करते सामान्य परिचय हैं। इनके प्रतिरिक्त कहानी की आनुहिक्ता से संबन्ध एक प्रभावशाली तत्व घीर होता है—

वातावरण। इसका संबंध कहानी के इन्तर्ग प्रसिद्धि प्रतिपाद्य प्रभावान्विति से प्रसिद्ध होता है। यह किसी एक घबघा घनेक तत्वों में शोभ नहीं देता बरन् कहानी की समष्टि का भागस पर ध्यादारमक प्रभाव डालता है घबघा स्वयं में कहानी का इष्ट बन कर घबघ तत्वों को अपने प्रथम रूप में स्वीकार करता है। कहानी को पढ़ लेने के उपरान्त चित्त नहीं रुकना ही सरलता से द्रवित हो उठता है, नहीं कुतूहल और आश्चर्य में बुद्धि पड़ जाती है नहीं कल्पना की रंजीनी से मन बिस्मय-विभुग्ध हो उठता है, और नहीं वैमर्शास्वत्य की सरलता छाई मिलती है। इस तरह किसी भी कहानी को पढ़ लेने पर एक प्रकार के वातावरण का अनुभव पाठक करता है। यदि विचारपूर्वक देखा जाय तो यदि वैमर्शक के भीतर की सारी सामग्री बाधुन प्रयत्न होती है। घबघा उठकी अनुभूति बलुन्य और भीतिक दिगाई पढ़ती है,

पर वातावरण का बोध कुछ मानसिक क्रिया है।¹ निम्न इन्द्रियों और उनके ज्ञान का बोध जब हो जाता है और जितनी उत्तमता से हो जाता है, तब जहाँ सब का प्रभाव भस्तिष्क में भर या छा चला है। कहानी के वस्तुप्रसार के तनाव पर परिष्पाप्त जो एक प्रकार का सामुद्रिक प्रभाव वातावरण होता है, उसे कहानी का कुछ मानस भावना मानना चाहिए।

वातावरण जो प्रकार का होता है सामान्य और विशेष। सामान्य रूप वह है जो प्रायः स्थानाधिक रूप में सभी कहानियों में उपस्थित रहता है। बेचकास की परिमिति में बंधे हुए वातावरण का जीवन का जब एक चित्र सामने आया प्रकृत बोगावाही रूप किसी परिस्थिति का जब विचित्र उद्घाटन होता तब बेचकास और विषम के संयुक्त रूप का एक वातावरण प्रवश्य ही उत्पन्न करेगा। इस प्रकार के सामान्य वातावरण संबंधी प्रभाव जो किसी भी कहानी में देखा जा सकता है। बमर्दकर प्रचार की कहानी 'प्राकृत वीप' में 'माबोरोजक रोमांचकता का वातावरण दिखाई पड़ता है। इसी प्रकार की प्रतीत से संबंध कोई

1 "Local colour as the term implies, makes its appeal largely to the eye of the reader. Atmosphere on the other hand makes its appeal almost entirely to the emotions. One is objective and the other is subjective. One must be true to the fact the other true to a given mood either of the author or of his creature, the leading character.

Local colour attempts to harmonize the details of setting and character with the actual conditions of a given time and place atmosphere attempts to harmonize setting and character with the feelings of a character in a certain time and place. Thus it will be seen that the one is usually perceived by the intellect, the other by the emotions.

—Glen Clark, A. M : *A Manual of the Short Story Art* (1926) pp 72

भी धर्म कल्पना सामान्यतः मासोत्सवक और रोमांचक दिताई पड़ेगी। उसमें कुतूहल और भावुकता का एक संमिश्रित वातावरण ही ही बना मिलेगा। प्रेमबंध की कहानी 'घटरंज के डिमाड़ी' में घटरंज नवाबी की काहिशी और बेहोली का और गुलेरी भी की कहानी 'उसने कहा था' में युठवेंक का वातावरण योगवाही रूप में चित्रित मिलेगा। इस प्रकार के वातावरण अपने-अपने ढंग से कहानी की सामूहिकता को जमाड़ते हैं और प्रतिपाद्य वस्तु को यथायथा प्रदान करते हैं। यथा यथा के संपूर्ण विस्तार में एकरूप का विधान उपस्थित करते हैं। यहाँ विचार करने की बात यही है कि सामान्य जंगलाना वातावरण स्वयमेव कहानी का दृष्ट नहीं बनता बल्कि उसके सामूहिक प्रभाव के उत्तेजक रूप में रहता है। यथापि इति में उसका रूप योगवाही होता है। उसे विषय का पूरक संघ मानना चाहिए वह प्रतिपाद्य के अर्थ रूप में ग्रहीत होता है।

प्रसाध की कहानी 'तमीम' में सीमाप्राप्त के एक गाँव की संख्या का जैसा वातावरण मिलता है यथा 'सामबती' के रोमांचक दृश्य-विधान के भीतर जैसा वास्तविक वातावरण उदाहरण है वह अपने में कुतूहलबर्धक होते हुए भी अंत तक सहायक रूप में ही रहता है। ऐसी कहानियों

में पाठक के चित्त पर छा उठनेवाली बात कहानी का प्रतिपाद्य ही बनता है न कि कहानी का सामूहिक वातावरण। 'तमीम' कहानी में अंत तक घाते-घाते तमीम की दुर्भाग्य परिस्थिति प्युता और प्रमा के ममत्व भरे स्त्रीत्व की ही छाया पाठक के मानस पर छाती है न कि सीमाप्राप्त के बर्तारियों की बस्ती का वातावरण। यही तरह 'सामबती' के अंत में नायिका की अर्जस्थित परिस्थिति ने गंभीर मातृत्व की परिभा और नायक के मिलित दायित्व की तरफ ही सबकी धारणा रख जाती है न कि देश-काल के वातावरण की प्रधानता। यहाँ पाठक के मानस पर वातावरण का इतना प्रभाव पकड़स हाफर केंद्रित नहीं होता। अतः चित्त को धारित करनेवाली

प्रवाचाम्बिति लघ्वधूमक होती है बातावरणमूलक नहीं। उसका संबंध या तो जीवन के किसी लघ्व से होता अथवा प्रबाल पात्र के चरित्र से। सामान्य बर्णनात्मक बातावरण की मुख्य मेरकता इसी पर अवलंबित रहती है कि वह विभिन्न परिच्छेदों को आचरित करनेवाले परिवेष्ट-संज्ञक को प्रसंगगत करके अपने प्रभाव को बीछे छोड़ता चलाता है। उसके अपने प्रभाव की कोई मुख्य अभिवृत्ति नहीं पठित होन पाती।

बातावरण के प्रयोग का दूसरा स्वरूप सर्वथा भिन्न होता है। उसकी मेरक-विशेषता इस बात में विद्यमान पड़ती है कि किसी कहानी का वह स्वयं में दृष्ट और प्रतिपाद्य बन जाता है।

बातावरण का बस्तु-पात्र बेचकास संवाद इत्यादि तरब उक्तमें
 अंगी बन प्रय रूप से प्रयुक्त होते हैं। कहानी में अंगी
 अथवा प्रभावस्थ में जब बातावरण सजा होगा

तब कहानी की प्रवाचाम्बिति बातावरणमूलक हो जायगी। अंत तक पहुँचते-पहुँचते कहानी की सामुद्रिकता से बातावरण की एक मातृमूलक धनुमृति प्रकृत होती और वही धनुमृति पाठक के चित्त को पुष्कलता आचरित करती मिलेगी। वही मातृमूलक कृतित्व से सर्वथा पुष्कल वायुसंज्ञक-विषयक एक छाया ही मुख्यतया चित्त को इच्छित करेगी। इस प्रकार का एकत्रविधायक एक प्रभाव—विशका केवल मातृ प्रत्यक्ष ही सके—बातावरण कहलाता है। कहानी में जब किसी विशिष्ट प्रकार के बातावरण की कृतिकार प्रणाली चरम सत्य बनाता है, तब उसे उचिततम धनुमृति उत्पन्न करने के लिए एक प्रकार की ऐकान्द्रिकता को ऐसा उभारना पड़ता है कि अपनी विविध परिस्थितियों से बीभा हुआ मातृ भी अपने आचरण और रहन-सहन से उसी की प्रतिबन्धन करता मिले। ऐसे समय पर मनुष्य के प्रतिरिक्त उसके धनुमृति की सारी साम-सम्बन्ध से भी मुख्यतः उही बातावरण की ध्वनि निकलती मिलेगी। जोड़े में कहा जा सकता है कि बातावरण-प्रधान कहानियों में संवेदनशीलता का मुख्य आधार बातावरण ही बनाया जाता है और मनुष्य की विविध

परिस्थितियों प्रकृति किसी जीवन के विविध परिवेश छती की सर्वशक्ति का संकेत देते रहते हैं ।

एक अत्यंत प्राचीन बीज-सीध बे-भरम्भत बड़े-से मकान की कल्पना कीजिए जो स्वान-नपात पर टूट-फूट गया और जिसके इंटों में मरपुर मोता सागा दिखाई पड़ता है, जिसकी कच्ची बाताबरण का स्वल्प पक्की दीवारों पर छोटी-बड़ी बाध पैदा हो गई है । उसी तरह दूसरी ओर किसी कोने में बामुदेव की भी अपने अस्तित्व को प्रमाणित करते दिखाई पड़ रहे हैं । चारों ओर का सारा-का-सारा विस्तार घुमा-गुमा छा निर्जीव मालूम पड़ रहा है । धारकाल होते ही प्रवासीनों की सड़ान उस स्थान को और विरस बना रही है । समूचे बाताबरण में सिधता बीनता और शुभ्यता अभी हुई है कमभिधत उबासीनता अतुच्छि छाई मिलती है । उसके भीतर कोई मानव है भी तो वह बिल से टूटा हुआ उबड़का हुआ विवध जीवन की पड़ियों को यिनता-सा हिल-डोल रहा है और अपना हीनिक कार्य भाववत् संपादन किए जा रहा है । वह भी अपने जीवन की निर्जीवता से यदि उस गृह को भयावह प्रमाणित करने में योग्य है रहा है, तब तो बाताबरण का रंग पक्का और स्वामी प्रभाव बासनेबासा बन जायगा । उस मनुष्य की बाठों से उड़के विविध त्रिबाकषाओं से और उस स्थान पर छाए हुए बायुर्मंडल से यदि पूरी संवति बैठ गई तो फिर एक ऐसा स्वामी प्रभाव बासनेबासा रूप सामने धाएगा कि वह स्वयं अपने में कल्पनी का दृष्ट बन जा सकता ।

इसी तरह विघ्न-निघ्न प्रकार के भावों की ध्वनि-महल करनेवाले विविध प्रकार के बाताबरण हो सकते हैं । यह कोई बाधवक नहीं कि केवल विचार, दैत्य अपना छोड़ ही की भूमिज विविध रूप धामा बन सके । अंधुर्ष कहानी के विस्तार प्रसार पर वही उरठाह और वही रोमांचकता की छाई मिल सकती है । प्रसार की कहानी समुद्र-अंतरण में प्रकृति की

पद्मूत मनोहरता तो बनिष्ठ है ही सच पीठिका पर प्राचीन को बीबनचर्या प्रथवा मानवसीमा है वह भी रोमांचकता और आंतरिक उत्कृष्टता की ही सजग करती है। आचार-आचर्य का ठीक यों बंठ जाने से कहानी भर में रोमांचक वातावरण छाया मिलता है। बीबर-वासिका और राजकुमार तो निमित्त मात्र हैं। पाठक के मन पर छा उठनेवासी छया तो बड़ी मीठी सुकुमार और तरस है और वही सब कुप्र है, कहानी का प्राय है। आचार्य की कहानी 'भवसंब' में दाखिचमूलक विवधता घटे हुई मिलती है। न तो पात्र के नाम और परिचय की आकांक्षा पाठक को रह जाती है और न उस बीमार वक्की और उसकी माता का ही प्रभाव कम पाता है। केवल दाखिच के भयंकर घट्टहास में डूबती ठठपती बीबन की अधिष्ठत छाया ही प्रमुख मान्य पड़ती है। कदवा का ऐसा वातावरण उना हुपा मिलता है कि पात्रों की बीबन-कथा प्रथवा उसके विवरण की ओर ध्यान ही नहीं जाता। वह तो एक निमित्त-रूप में प्रयुक्त मासूम पड़ता है। घाटी कहानी को समाप्त कर सेने पर न तो पात्रों का स्मरण रह जाता और न उनकी विविध स्थितियों का केवल इन सब से ध्वनित होने वाली कथा का ही एकधन प्रसार मानस पर, कुछ और के लिए, छा घठता है और कहानी का प्रतिपाद्य मूलतः वही बन जाता है।

हिरी ही में नहीं सामान्यतः सभी संघट्ट साहित्यों में वातावरण-प्रधान कहानियाँ अपेक्षाकृत कम मिलती हैं। इसका मुख्य कारण यह है कि वातावरणमूलक प्रभावान्विति की सृष्टि में श्रेष्ठता प्रतिभा और सजीव रचना अधिक धरिष्ठ होती है। वह साधारण सिद्ध के सूते के बाहर की बात होती है। यों तो जिनकी बुद्धि भेदकता की बारीकी को पूनतया नहीं पकड़ सकती वे प्रथम श्रेण के कहते हैं कि पीठिका-संबंधी रंजीनी को अधिकधिक उजाड़ देने से काम चल जा सकता है और वातावरण की प्रपानता सिद्ध हो सकती है, पर बात

ऐसी नहीं है। पीठिका-संबंधी विविध छात्र-संज्ञार्थ केवल छात्रन का प्रसंकरण कर सकती है। बातावरण के सामूहिक प्रभाव को संमन्त्रित करने में उनका योग अधिक नहीं होता। यहाँ पर परिवेश घोर बातावरण के पापश्य की घोर ध्यान प्रावर्षित करना आवश्यक है। परिवेश संज्ञ के संतर्पत घानेवासी बातेँ योदवाही होती है। वे प्रतिपाद्य के प्रसंकरण में सहायक प्रबन्ध होती है पर कहानी पर छा उल्लेखसे एकरण विषयायक प्रभाव के रूप में उन्हें नहीं स्वीकार किया जा सकता। बोनों तत्व मूलता प्रापद्य में भिन्न हैं। इस मम कोन समझनेवाते यह चीज सकते है कि बातावरण प्रभाव कहानी की रचना सरस है घोर परिवेश की प्रतिक्रियायक संज्ञावट द्वारा बातावरण उत्पन्न करने में सफलता प्राप्त हो सकती है। इस प्रकार की प्रीति घंघरेकी सिलकों में भी साधारणत' दिवा' पकी है घोर मिट्टिन साहब को अनुशासन-भरी प्रालोचना सिखनी पकी है

बातावरण का समष्टिप्रभाव 'घनेय' की कहानियों में प्रच्छा दिवाइ पड़ता है। यो तो उचना सुंदर रूप प्रयबोस में संघीत द्वितीयोन की कतयों में भी प्रच्छा दिवाई पड़ता है पर

बातावरण का उदाहरण इसका सर्वोत्तम विधान नैटीन (रोज) में प्राप्त होता है। यह कहानी अपने अंग की बेजोड़ रचना है। विचार-व्यंजक उदासी घोर उबास इस रचना में ऐसी छाई हुई मिलती है कि कहानी के अंत में घाने-घाते

2. Many Students get the notion that environment is atmosphere and so they fall into the technical blunder of trying to produce atmosphere by elaborate descriptions of scenery. Their belief is false, and their practice only occasionally sound. The atmosphere is be it repeated the impression which environment makes upon the beholder and which the beholder in writing seeks to convey to his readers."

—Pitkin W. B. : *The Art and Business of Story-Writing* (1919), pp 193-194

सम्यक्ता विषय के प्रसार को मूस जाता है और जतुदिक से उमड़ती हुई उदासी में डूब जाता है। कहानी का धारण ही सेबक में इस अंग से किया है जैसे वह पाठक को किसी अभिसन्त वातावरण में ले जा रहा हो—

होपहर में उध घुने प्रांगण में पैर रखते ही मुझे ऐसा जान पड़ा मानो उस पर किसी शाय की जाना मँडरा रही हो। उसके बाता बरख में कुछ ऐसा अरुण्य, असुरण्य, किन्तु फिर भी बीमन्न और प्रकंपन और बना-सा किखा रहा था—

मेरी आइड मुवते ही माकती बाहर निकली। मुझे देखकर, पहचानकर उसकी सुरम्भयी हुई मुक-मुक ललित से सीटे विरमय से जागी-सी और फिर पूर्ववत् हो गयी। उसने कहा, “धा बाघो।” और बिना उत्तर की प्रतीक्षा किये भीतर की ओर चली। मैं भी उसके पीछे हो लिया।

कहानी का अंत किस प्रकार हुआ है, वह भी विचारणीय है। जीवन की उबास से भरी उदासी मामली के भीतर-बाहर ऐसी व्याप्त दिपाई पड़ती है कि एक-एक बंटा समय उठे युग के समान माकून पड़ता है—

तमी ग्बारह का अंत बजा, मीने घपबी भारी हो रही पकळें उदाकन अकस्मात् किमी अस्पष्ट प्रतीक्षा से माकली की ओर देखा। ग्बारह के पदले बंटे की अइकन के साथ ही माकली की जाती एकएक कपडेले की भाँति बड़ी और बरि बरि बैठने लगी और अंत-अन्ति के अंतप के साथ ही मूड हो जानेवाली भावाज में उसने कहा—“ग्बारह बज गवै”

इस प्रकार कथावस्तु की प्रत्यक्षा से कसे हुए अनुप के दोनों छोटों के बीच के उनाप की तरह कहानी के सारे विस्तार में जीवन की उबास वातावरण बन कर छाई हुई है और मार-अप जीवन की बेरना पहती हो पड़ी है। कहानी पढ़ चुकने पर पाठक के बिल पर न तो किसी पाप

(१६४)

के व्यक्तित्व को छाप सकती है न किसी परिस्थिति घपका बटना ही का प्रभाव बिस्तारि पड़ता, केवल बिबरा श्रीर निरीह पीबन की उबासी ऐसी मही हाकर का उठती है कि उसका मन कुछ खोया-योया सा श्रीर भूमिल हो जाता है—यही बातावरण का एकरबिधायक प्रभाव है ।

~~—————~~

दोष-दर्शन

कक्षाती रचना के सिद्धांतों की इतनी समीक्षा हो जाने के बाद
 प्रश्न यह उत्पन्न होता है कि यदि सामान्यतः कोई इन सिद्धांतों का
 अनुमान न करे तो कक्षाती की क्या स्थिति
 सिद्धांत और व्यवहार हो सकती है, इस विषय में इतना ही कहा
 जा सकता है कि समीक्षा-घासन में प्रायः
 जहाँ सिद्धांतों की स्वीकार किया जा सकता है, वही रचना पद्धति
 की प्रकृति के आधार पर या तो सिद्धांतों अनुमित होते हैं यद्यपि
 विभिन्न श्रेष्ठ कृत्तिकारों द्वारा व्यवहृत और परीक्षित होते हैं। इसलिये
 यह तो निश्चय ही मानना चाहिए कि विभिन्न कक्षानियों में इन नियमों
 की व्यवस्था किसी भी रूप में हुई होनी के निश्चय ही किसी न किसी
 धर्म में दोषपूर्ण हो जायेगी। इस स्वाम पर विचार की यह बात व्यवस्था
 वाली है कि क्या श्रेष्ठ कक्षाकार सिद्धांत-नियमों को पढ़ लेते हैं और वह
 कल्प उठाते हैं ?—ऐसा तो नहीं होता। कोई भी लेखक केवल घास्य
 ज्ञान के बस से उत्तम कोटि का रचनाकार नहीं बन सकता। उसके
 लिए तो कारिणी प्रतिभा का होना निरालं आवश्यक है। पर घास्य
 ज्ञान साधन और योगवाही का काम करना करता है। या तो कृत्तिकार
 अपनी प्रतिभा साधन और व्यावहारिक परीक्षा के द्वारा वहीं तक
 पहुँचे यद्यपि यद्यपि हाथ उठाया बोध कर सें इस प्रकार नियम
 कारिणी शक्ति और समीक्षाघासन के सिद्धांतों का संबंध आवश्यक है।

उक्त कथन बिना साहित्य के किसी भी अन्य रचना-प्रकार के लिए आवश्यक है उतना ही कहानी के लिए भी। कहानी के बिना कर्तव्य की सीमासा पूर्व के सम्पादनों में हो चुकी है उसके आधार पर पाठक यह समझ ले सकता है कि किसी कहानी में क्या दोष की बात है। दोष या तो रचना-प्रवृत्ति से संबद्ध होगा यथा उसका संबंध कहानी के सामूहिक प्रभाव से होगा। या तो रचना के विद्योत के निर्बाह में कहीं कुछ दिखाई पड़ेगी यथा उसकी प्रभाव-समष्टि ही किसी रूप में लक्षित मिलेगी। कारण कुछ भी हो यदि कहानी में बाठक को रस न मिल सका तो उसका सारा धन निरर्थक घोर रचनाकार की निर्मिति क्षुब्ध हो उठेगी।

जब कहानी के विविध कर्तव्यों के कम शोचों का विचार किया जाय तो सबसे पहले उन शोचों को दूर करना होगा जिनका संबंध विषय-कथानक के बीच कथानक से रहता है। कथानक यदि पिटा-पिटाया घोर वैदिक जीवन की सामान्य दृष्टिकोणसे से सम्बद्ध होय तो साधारण पाठक की समझने का न हो सकेगा। कोठ प्रतिमा-सम्पन्न इतिहास-यत्ने ही मिट्टी में जान फूँक है पर सम्पादी रचनाकार जब तक कथानक का यह संघ नहीं पाएया रोचकता नहीं उत्पन्न कर सकेगा। रस को प्राप्त न होय। जहाँ-जहाँ भी परिस्थिति-योजना घोर घटना-संघटि न बँटाय जायगी वहाँ भी रचना-प्रवृत्ति-विषयक दोष मिलेगा। इसके अतिरिक्त कथानक के भीतर घातेबासे कथाओं की कड़ियाँ टूट से न प्रसिद्ध हो सकीं तो कहानी के सामूहिक प्रभाव में प्रतीति घोर संभवतः उत्पन्न हो या सक्ता है घोर यह सर्वथा असाध्य होगा।

यदि कथापत्र के प्रसार में उबास और इतिवृत्तात्मक स्वभाव मिले तो इसे भी शोष मानना चाहिए, क्योंकि इसके प्रगट होता है कि परिस्थितियाँ तीव्र गति से चलकर पाठकों के चित्त को उत्तमव्यती हुई किसी परिणाम की ओर दौड़ती नहीं जा रही हैं। ऐसी स्थिति में कथापत्र का सारा विस्तार अस्तुत्तुद और अप्रिय बन जायगा। कहानी में कथा-तत्व का आरोपक सर्वोच्च सामान्यता अभीष्ट होगा है।

इसके साथ ही यह भी विचार करना होगा कि कहानी का विषय और वस्तु ऐसी हो जो पाठक की अनुमान-सीमा के भीतर आ सके।

अत्यधिक भावुकता और कल्पना पर आधारित

कथापत्र के शोष पात्र और स्वान-विषय साधारण कोटि के

पाठकों के लिए अभिव्यक्ति के कारण नहीं हो

पाते। अतीत क संतराल से वस्तु सफल करनेवासी उच्च कोटि की

कहानियाँ साधारण जनता के लिए नहीं हो सकतीं। 'स्वयं के खंडहर'

में और 'समुद्र संतराल' में सारा विषय इस क्रम से समझा गया है

कि उच्च कोटि का सहृदय ही उसके रस का आस्वादन कर सकता

है। साधारण जन उस प्रकार के ऐकॉतिक वातावरण का अनुमान

गम्य अनुभव नहीं कर सकते। ऐसी स्थिति में प्रति सुदूर का विषय

अथवा स्वानांकन पाठक की परिचय-सीमा के भीतर नहीं आ पाता और

उसके लिए असाह्य हो उठता है।

इसी तरह के रचना-तत्व-सम्बन्धी शोष अति उबास इत्यादि

में भी हो सकते हैं। इन विषयों में जैसे सिद्धांतों की विवेचना

पूर्व के अध्यायों में हो चुकी है उन्हीं के धारण पर शोषों का

संकट भिन्न जा सकता है। पात्रों की कल्पना अथवा स्वल्प-निर्मिति

यदि अनुभव और अनुमानादि-ज्ञान के अनुरूप नहीं उठती तो

अति में शोष अक्षय बिराई पड़ेगा। ये पात्र जीवन और जन्म

के संतुष्ट में अकार्य कितन प्राणी की तरह आचरण और व्यवहार

करते दिखाए जाने चाहिए अभी हमकी यथायथा समीक्षा हो सकेगी।

प्रतिपाद्य के अनुस्य यदि पात्रों का कुसदीन न दिखाया गया ही कहानी में दोष मानना चाहिए। इसी तरह संवाद यदि निरर्थक पांडित्योत्पाटक हुए और वस्तुस्थिति के अनुस्य घौली न प्रह्व कर सके तो इसे रचना का दोष ही मानना चाहिए। पात्र के सांस्कृतिक और बौद्धिक यत्न के अनुसार ही जब संवाद-तत्व का मूफल होना तभी वह सजीव और प्रकृत पात्रम पड़ेगा। 'साधकती' और 'पुरस्कार' सीपंक प्रसाद की कथा तिरों में जिस विषय पर प्रयबा जिस वीली घौर नाया में संवाद कटाए गए हैं, उसमें न तो प्रेमबंध की खपिर्षो बल सफती है घौर न 'बाजपा'। कहानी में यदि इस तथ्य की जेला हुई ती संवाद बाता-वरण को सजीवता प्रदान करने में समर्थ नहीं हो सकेये।

कहानी के प्रभात विषय को सजीवता प्रदान करने के निमित्त जहाँ-कहाँ कर्मकार्यक संघ मा पाठा है वही वह सायन-स्य में दोष देने का बरम यत्न कर सफता है, पर पुराणी खपिकता उसकी भाषा यदि भावस्यकता से खपिक हुई तो पाठक के चित्त में उबाध पैदा कर सफती है घौर दोष का कारण बन जा सफती है, क्योंकि तब कहानी का वास्तविक ही भूमिक हो सटेगा। प्रेमबंध की कहानी 'दो सखिर्षो प्रसाद की कहानी 'खौबी' घौर गुजरीजी की कहानी 'बछने कथा मा' में प्रकाशित-विस्तार कुछ कुपे तरह उभड़ गया है। इनमें कर्मकार्यक संघों की बरि योड़ी कमी कर बी गई होनी तो उक्त कहानियों में प्रभात की समष्टि घौर ती खपिक घनी होती, चित्त जी इन रचनाओं में सीमा का प्रतिफलन को खपिक सटफता नहीं सफता कारण है विषय की सरसता। इस तरह की स्थिति यदि किसी रत इतिवृत्तात्मक कहानी में पाए तो फिर उसे दोष ही मानना पड़ेगा। कहानी में सांकेतिक एतों पिता के साय यदि काव्य-तत्व ती खपिक प्रबल हो सटे तो वह कहानी न होकर गद्य-काव्य हो जा सफती है इसमें घौली की विषयवता बने ही हो केविल कहानी सचबाह मदीं ही सजनी पड़े—बंदीप्रसाद

‘इन्द्रवैद्य के ‘नन्दन-निर्जुम्ब’ की कहानियाँ हैं। इनमें तथ्य प्रतिपादन इतने सघन रूप में और काव्यात्मक ढंग से हुआ है कि कहानी तत्व ही बाधित मासूम पड़ता है। इस प्रकार की अन्य एकांकी कृतियाँ बिलकुल भी होंगी वे कहानी के लिए सामान्यता प्रदर्शित हो पायेंगी।

इन रचना-विधान-सम्बन्धी शोधों के अतिरिक्त कहानी में मुख्य शोध की बातें दो होती हैं—संवेदनात्मक गुणन की कमी और बौद्धिकता का अतिरेक। कहानी में प्रतिपाद्य तक पहुँचने की श्रम की कमी शोध इतनी तीव्र गति की होती है कि उसमें एक मुकीसापन पैदा होता जाना चाहिए। इसके कारण कहानी से अलग होनेवासी संवेदना सूई की तरह मुकीसी हो चली है। उसके तीक्ष्णता का अनुभव पाठक बिलकुल अधिक करेगा जतनी ही कहानी की सफ़लता मानी जाएगी। कहने का तात्पर्य यह कि कहानी के माध्यम से यदि बिलकुल आशोचित नहीं होता प्रबन्ध बुद्धि भंग्य नहीं होती तो कहानी का मूल ही समाप्त हुआ समझना चाहिए। कहानी में विषय मुकीसा बनाकर इस प्रकार सामने लाया जाता है कि पढ़नेवाले का बिलकुल आशोचित हो जाय यदि इस विशेषता का अभाव कहानी में दिखाई पड़े तो बड़े शोध की बात समझनी चाहिए।

कहानी का अर्थ और तथ्य है कि जीवन और मृत्यु को इस धरती से सामने ले आए कि घटना से बिलकुल प्रभावित हो उठे। यदि इस धरती में प्रबन्ध कहानी के विषयप्रसार में बौद्धिकता का अतिरेक ही कुछ दुःखदायी होती है कि बिना विशेष प्रकार के बौद्धिक उद्देश्यों के बात ही न समझ में आए तब तो सारी कहानी अंधकाराच्छन्न हो उठेगी और तथ्य-विहीन हो जायगी। दूसरे ढंग से यदि यही बात कहनी हो तो कहा जायगा कि कहानी में कथन का परिचापन होता चाहिए और उसका विषय सर्व सामान्य रूप में उपस्थित किया जाना चाहिए। यदि विषय ही अपने में

इतना पन्थि हुआ कि बिना किसी प्रकार के वैदिक ज्ञान का बल लिए काम नहीं चल सकता तब तो जन-साहित्य के अन्तर्गत कहानी को स्वान मित्रने में मारी आपत्ति हो जायगी। 'मित्रेय' के 'जय शोक' कहानी-संग्रह में इस कोटि की कहानियाँ अनेक मिलेंगी। उसकी दूसरी कहानी 'साँप' है। उसे उदाहरण रूप में लीजिए। उसमें कथा की पठि घुमावदार है और जबतक पाठक मनोविज्ञान की कुछ साधारण घास्त्रीय बातें नहीं जानेया और जब तक मौन-ध्रम से साँप की प्रतीकात्मकता की संगति का बोध उसे न होया तब तक यह कहानी के मम तक पहुँच ही नहीं सकता। ऐसी स्थिति में ये रचनाएँ कुछही सीली में लिखी घास्त्रीय बातें मानी जायेंगी। यहाँ ऐसा मासूम होना है मानो किसी तप्य का प्रतिपादन करने के लिए किसी उदाहरण के रूप में यह कृति उपस्थित की गई हो। अतएव इस प्रकार की सूक्ष्म बौद्धिकता की कहानी में बन्ध मानना चाहिए।

परिशिष्ट

(६)

बोध-विश्लेषण

इतना व्यथित हुआ कि बिना किसी प्रकार के वैद्यिक ज्ञान का बत सिद्ध काम नहीं भन्न सकता, तब तो जन-साक्षर्य के अन्तमय कहानों को स्वान भिन्नने में भारी प्राप्ति हो पाएगी। अक्षय के 'जय बीस' कहानी-संग्रह में इस कोटि की कहानियाँ अनेक मिलेंगी। उसकी दूसरी कहानी 'साँप' है। उसे उदाहरण रूप में लीजिए। उसमें कबा की गति सुमावदार है और जबतक पाठक मनोविज्ञान की कुछ सामान्य शास्त्रीय बातें नहीं जानेंगे और जब तक यौन-प्रेम से साँप की प्रतीकारमरुता की संघति का बोध उसे न होगा तब तक वह कहानी के मर्म तक पहुँच ही नहीं सकता। ऐसी स्थिति में ये रचनाएँ दुबह संली में सिखी शास्त्रीय बातें मानी जायेंगी। यहाँ ऐसा मामूला होता है मानो किसी लक्ष्य का प्रतिपादन करने के लिए किसी उदाहरण के रूप में यह वृत्ति उपस्थित की गई हो। यद्यपि इस प्रकार की सूक्ष्म शीघ्रता को कहानी में बन्ध मानना चाहिए।

परिशिष्ट

(४)

बोध-विरलेपण

बातावरण-प्रधान कहानी

मैत्रीम

[अक्षेप]

दोपहर में उब भूने घातक में पैर रखते ही मुझे ऐसा जाम पड़ा मानो जल पर किसी घाप की छाया गँडरा रही हो उसके बातावरण में कुछ ऐसा प्रकल्प प्रसूय किंतु फिर भी बोझल घोर प्रकल्पमय घोर बना-सा कैल रहा था—

स्वाधीन बातावरण के घोरत दोपहर विभव के तान ही विभव का भारव ।

घेरी घाहट मुलते ही मासती बाहर निकली । मुझे देख कर पहचान कर उसकी मुरझाई हुई मुख-मुद्रा तनिक से भीठे बिस्मय से जापी-सी घोर फिर पूबवद् हो गयी । उसने कहा 'आ जापी । घोर बिना उतर की प्रतीक्षा किये भीतर की घोर बनी । मैं भी उस के बीछे हो सिया ।

भीतर पहुँच कर मैंने पूछा 'वे यहाँ नहीं हैं ?'

बातावरण ही की ज्वलि-बलव करने वाले मावक-कल की मन्तारवा । उसके 'आ जापी' की 'दूर म्याँ' पर तभीर तालप-वृष्टि 'मीडे-विलव' को भी बरा देती है ।

मासती ने बच्चे की घोर देखते हुए उत्तर दिया "नाम तो कोई मिश्रित नहीं क्रिया जैसे टिटी कहते हैं।"

मैंने उसे बुलाया "टिटी टिटी बाबा" पर वह अपनी बड़ी-बड़ी आँखों से मेरी घोर देखता हुआ अपनी माँ से बिपट गया, घोर चर्माँसा-सा होकर कहने लगा "उहूँ-उहूँ-उहूँ-उहूँ—"

मासती ने फिर उसकी घोर एक नजर देखा घोर फिर बाहर घाँग की घोर देखने लगी—

काफ़ी देर मौन रहा। बोड़ी देर तक तो वह मौन आकस्मिक ही था जिसमें मैं प्रतीक्षा में था कि मासती कुछ पूछे किन्तु उसके बाद एकाएक मुझे ध्यान हुआ मासती ने कोई बात ही नहीं की— "वह भी नहीं पूछा कि मैं कैसा हूँ कैसे आया हूँ— चुप खैठी है, क्या बिबाह के दो वर्ष में ही वह बीते दिन भूस गयी? या जब मुझे दूर— इस विरोध संतर पर—रचना चाहती है? क्योंकि वह निर्भीक स्वच्छन्दता जब तो नहीं हो सकती— पर फिर भी ऐसा मौन बीसा घनमयी से भी नहीं होना चाहिये—"

मैंने कुछ विस्तार-सा होकर बुरी घोर देखत हुए कहा "जान पड़ता है तुम्हें मेरे आने से विरोध प्रकटता नहीं

घाँग की घोर देखने में मासती अपनी किस्मत की मार की बात कह रही है। विपत्तता बड़ी जीवन की कष्ट को महान रस दिया जा रहा है।

वातावरण के वर्णन सुनने की स्थापना।

जसने एकाएक बौक कर कहा
"हूँ ?"

यह 'हूँ' प्रश्न-सूचक या किन्तु इस
लिए नहीं कि मासती ने मेरी बात
सुनी नहीं थी केवल विस्मय के
कारण। इस लिए मैंने अपनी बात
दुहरायी नहीं चुप बैठ रहा। मासती
कुछ बोली ही नहीं तब बोड़ी देर
बार मैंने उसकी घोर देखा वह
इन्स्टक मेरी घोर देख रही थी
किन्तु मेरे उभर उगमुक होते ही जसने
पाँव नीची कर ली। फिर भी मैंने
देखा उन पाँवों में कुछ विचित्र-सा
भाव या मानो मासती के भीतर कहीं
कुछ बेप्टा कर रहा हो किन्ती बीती हुई
बात को याद करने की किन्ती बिलदे
हुए बायुमंडल को पुन जगा कर
परिमाण करने की किन्ती दूटे हुए
व्यवहार-तंतु को पुनरुज्जीवित करने
की घोर बेप्टा में सफल न हो
रहा "बैठे बहुत देर से प्रकोप में
न जाये हुए घंघ को स्पष्टि एका
एक उठाने लने घोर पाये कि वह
उठता ही नहीं है विरबिस्मृति में
मानों कर गया है, उठने कीज बल
में (यद्यपि वह सारा प्राण्य बल है)
घट नहीं सफता "मुझे ऐसा जान

जीवन की विपत्तियों से आर्कटिक
काल का संकेतमाल बन ।

पढ़ा मानो किसी जीवित प्राणी
के गले में किसी मृत जंतु का ठोक
बास दिया गया हो वह उसे उतार
कर फेंकना चाहे, पर उतार न पाये

तभी किसी ने किबाड़ ढटखटाय
मैंने मासती की घोर देखा पर वह
हिंसी नहीं । जब किबाड़ दूसरी बार
ढटखटाये गये तब वह घिसु को घसम
कर के उठी घोर किबाड़ सोलने
गयी ।

वे बानी मासती के पति घाये
मैंने उन्हें पहली बार देखा था पछपि
फोटो से उन्हें पहचानता था । परिचय
हुषा । मासती खाना तैयार करने
शायन में जाती गयी । घोर हम
दोनों भीतर बैठकर बात-चीत करने
समे उनकी लोफरी के बारे में उनके
जीवन के बारे में उस स्थान के बारे
में घोर ऐसे घम्य विषयों के बारे में
जो पहले परिचय पर उठा करते हैं,
एक तरह का स्वरघातमक कवच बन
कर

बदामी की बलि को जीवन देने-
वाले इतिहास का प्रसार होता है ।

मासती के पति का नाम है महें
स्वर । वह एक पहाड़ी गाँव में सरकारी
डिस्पेंसरी के डॉक्टर हैं उसी हैसियत
से इन बर्बादों में रहते हैं । प्रातः
काल सात बजे डिस्पेंसरी जाने प्रातः
घोर डेढ़ या दो बजे सोटते हैं, उसके

बाद दोपहर भर छुटी रहती है केवल
 घाम को एक-दो बंटे फिर बचकर
 समय के लिये जाते हैं बिस्सेसरी के
 साथ के छोटे से अस्पताल में पड़े हुए
 रोगियों को देखने और घण्टा बकरी
 हिवायतें करने उनका जीवन भी
 बिस्कुल एक निश्चित हरे पर बसता
 है, नित्य वही काम उसी प्रकार
 के मरीज वही हिवायतें वही
 सुखे वही बवाइयाँ वह स्वयं
 उकसाये हुये हैं और इसलिये साथ
 ही इस भयंकर गर्मी के कारण वह
 अपने फुरसत के समय में सुस्त ही
 रहते हैं

वही अगस्त महेश्वर को दिनभरा
 से भी मरी हुई है।

मासती हम दोनों के लिये जाना
 से घायी। मैंने पूछा "तुम नहीं
 जापोदी ? या जा चुकी ?"

महेश्वर बोले कुछ हँसकर, "वह
 पीछे लाया करती है।

पति आई बजे जाना जान पाते
 हैं इसलिये पत्नी तीन बजे तक सूची
 बैठी रहनी।

विपत्ता का रहस्य बनन

महेश्वर जाना धारम करते हुए
 मेरी ओर देखकर बोले "घावको तो
 पाने का मजा ही क्या घायवा ऐसे
 बेबल का रहे है ?"

मैंने उत्तर दिया "बाहू। देर से
 जाने पर तो और भी घबरा जाता है,

व्यावहारिक संवाद

भूल बड़ी हुई होती है पर घायब
मासती बहन को कष्ट होगा ।

मासती टोक कर बोली उँहु मेरे
लिए तो वह कई बात नहीं है—रोज
ही ऐसा होता है " "

रोज कहानी के तीरेक का कारण ?

मासती बच्चे को गोद में लिये
हुए थी । बच्चा रो रहा था पर उस
की घोर कोई भी ध्यान नहीं दे
रहा था ।

घातावरण का मासतीव मासतीवों
पर भी प्रभाव था था है ।

मैंने कहा " यह रोता
क्यों है ?

मासती बोली "हो ही गया है
बिड़बिड़ा-सा होनेवा ही ऐसा रहना
है ।" फिर बच्चे को डाँट कर कहा
"बुप कर ।" जिस से वह घोर भी
रोने लगा मासती ने भूमि पर बीठा
दिया घोर बोली "घच्छ से
रोते । घोर रोटी लेने घायब की
घोर बनी गयी ।

कोमल बच्चे पर भी घातावरण की
बाधा ।

बच्चा ले ले ले ले की जीवन को
एली बचन व्यभिच है ।

जब हमने भोजन समाप्त किया
उब तीन बजने वाले थे महेन्द्र ने
कहा कि उँहें घात्र जल्दी घस्पताल
जाना है वहाँ एक दो बिताजनक
केस घाय हुए हैं जिनका घापरेषन
करना पड़ेगा "वो की घायब टाँग
नाटनी पड़े नैधीन हा गया है "बोटी
ही दर में वह बसे गय । मासती
क्रियाक बंध कर घायी घोर मेरे पान
बीठने ही लगी थी कि मैंने कहा "घव

वेदीव कहानी के तीरेक का
कारण ताकतिक कार्य में प्ररन पर
है कि वेदीव निताजनक रूप में
घरपताल में है कि रन पर है ।

जाना तो बा लो मैं जतनी डेर टिटो से बेसता हूँ ।

बह बोली 'बा जूंगी मेरे खाने की कोन बात है " किन्तु बली बयी । मैं टिटो को हाथ में लेकर झुलाने लपा बिचसे बह कुछ डेर के लिए खाँठ हो गया ।

दूर 'सायब अस्पताल में ही तीन बड़के । एकाएक मैं बीका मैंने सुना मासती बहीं घाँगन में बीठी अपने घाय ही एक लंबी-सी बकी हुई खाँठ के साथ कह रही है, "तीन बज गये " मानो बड़ी तपस्या के बाद कोई काय सम्पन्न हो गया हो"

'तीन बज कर बी कानि बज रही है कि 'इस बीकन की बज-बज कहीं कतके लिए बहाक बन गई है ।

घोड़ी ही डेर में मासती फिर धा बयी मैंने पूछा 'तुम्हारे लिए कुछ बचा भी बा ? सब कुछ तो "

'बहुत बा ।"

"हाँ बहुत बा भाबी तो सारी मैं ही खा गया बा बहीं बचा कुछ होया नहीं बों ही रीब तो न बमापी कि बहुत बा ।" मैंने हँसकर कहा ।

मासती मानो किसी घोर बिषय की बात कहती हुई बोली "यहाँ सभ्नी-बज्जी तो कुछ होती नहीं कोई धावा-बाटा है तो नीधे से भैया सेठे है मुझे घाये पंद्रह दिन हुए हैं, वो सभ्नी घाय लाये वे बही धम्नी बरती या रही है '

मैंने पूछा 'तोकर कोई नहीं है?'
'कोई ठीक मिसा नहीं थायर
बो-एक बिग में हो जाय।'
'बलग भी तो तुम्ही मासती हो।
'घौर कौन ? कह कर मासती
बाग मर भांगल में जाकर सौट
भायी।

मैंने पूछा 'कहाँ गयी थी ?'
'घाब पानी ही नहीं है बलग
कैसे मँबेंदे ?'
'क्यों पानी को क्या हुआ ?'

'राज ही होता है कभी बलग
पर तो घाटा नहीं घाब घाम को
साठ बजे घायेया तब बर्तन मँबेंदे।'

'जसो तुम्हें साठ बजे तक ता
छुट्टी हुई' कहते हुए मैं मन ही मन
घोचने लगा 'घब तो इसे रात के
ग्याएहू बजे तक काम करना पड़ेमा
छुट्टी क्या बाक हुई ?'

यही जसने कहा। मेरे पास कोई
उत्तर नहीं था पर मेरी सहायता
टिटी ने ली एकाएक फिर रोने लगा
घौर मासती के पास जाने की बेप्टा
करले लगा। मैंने उसे दे दिया।

बोड़ी देर फिर मौन रहा मैंने
केब से घपनी मोटबुन निकाली घौर
पिछले दिनों के सिने हुए मौन देखने
सगा तब मासती को पाव घाया कि

बोवशाही कई परिस्थितियों के कालिक
समावर के जीवन के क्वास को
अनुवाचित कर दिया है।

उसने मेरे घाते का कारण तो पूछा नहीं और बोली "वहाँ घाये कैसे ?"

अपनी भावसिक्त शक्ति के कारण मातली में अन्वहार-विरयुति ।

मैंने कहा ही तो 'अच्छा अब याद आया ? तुमसे मिलने आया या और क्या करते ?

तो दो-एक दिन रहोये न ?"

"नहीं कम बता बाळेंमा जकरी बामा है ।"

मातली कुछ नहीं बोली कुछ खिस-सी हो गयी । मैं फिर मोटबुक की तरफ देखने लगा ।

"कुछ खिन्न हो गई क्योंकि विद्यालय सपन-सा अकारण ही लुप्त हो गई लेके देता । स्थिति काठारण पर रंग प्यारी आ रही है ।

बोड़ी देर बाद मुझे भी ध्यान हुआ मैं आया तो हूँ मातली से मिलने किन्तु वहाँ बह बात करने की बीठी है और मैं पढ़ रहा हूँ पर बात भी क्या की जाय ? मुझे ऐसा लय रहा था कि इस बर पर जो आया प्यारी हुई है वह पलायन रह कर भी मानो मुझे भी बघ कर रही है, मैं जो बीसा ही नीरस निर्जीव-सा हो रहा हूँ जैसे—हाँ जैसे यह पर जैसे मातली

लेपक विविध काठारण को 'भीरत निर्जीव-सा' कह कर भरने किन मैं उसको रस स्वापना कर रहा है ।

मैंने पूछा "तुम कुछ पढ़ती-लिखती गहे ?" मैं चारों ओर देखने लगा कि कहीं किताबें शीघ्र पढ़ें ।

"यहाँ ।" कह कर मातली थोड़ा सा हँस दी । वह हँसी कह रही थी 'यहाँ पढ़ने को है क्या ?'

मैने कहा "अच्छा, मैं बापस जा कर जकर कुछ पुस्तकें भेजूं या " घोर बार्तालाप फिर समाप्त हो गया।

थोड़ी देर बाद मासती ने फिर पूछा "घाये कैसे हो, नारी में ?"

"बैस ।"

"इतनी दूर ! बड़ी हिम्मत की ।"

"कालिंद तुमसे मिलने आया है।"

"ऐसे ही घाये हो ?"

"नहीं, कुली पीछे आ रहा है, सामान लेकर । मैने छोड़ा, बिल्करा से ही चले ।"

"अच्छा किन्ना, यहाँ तो बस " कह कर मासती चुप रह गयी, फिर बोली, "तब तुम चके होने, सेट बाघो ।"

"नहीं, बिरहुल नहीं चका ।"

"रहने भी दो, बके नहीं, मसा बके हैं ?"

"घोर तुम क्या करोमी ?"

"मैं बर्तन मात्र रखती हूँ, पानी धायेगा तो पुस जायवे ।"

मैने कहा, "बाहू ! क्योंकि घोर कोई बात मुझे सूझी नहीं।"

थोड़ी देर में मासती उठी घोर बसी गयी, टिटी को साथ ले कर । तब मैं भी सेट गया घोर छत की घोर बैठने सवा "मेरे बिचारों के साथ प्राणन से घाली हुई बर्तनों के पिछने

'बर्तों तो बत'—सब सत्य है, बर्तों बत ही क्या है।'

की जग-जग की ध्वनि मिल कर एक
विभिन्न एकस्वर उत्पन्न करने लगी
जिसके कारण मेरे घंघ भीरे-भीरे हीसे
पड़ने लगे मैं ठँपने लगा

एकाएक वह एक स्वर दूट
गया "मीम हो गया। इससे मेरी
तथा भी दूटी मैं उस मीम में सुनने
लगा"

बार खड़क रहे ये धीर इसी का
पहुंता बंटा सुनकर मासती रुक गयी
भी

वही तीम बने वाली बात मने
फिर देखी जब की बार धीर भी जग
रूप में। मने सुना मासती एक
बिम्बुस धनीध्विक धनुमुठिहीन
मीरस बंजबद्—वह भी बके हुए यंग
की धाति स्वर में कह रही है, बार
बज गये " मातों इस धनीध्विक
समय गिगने गिगने में ही उस का
मपीतगुस्य बीबन बीतता हो बीसे
ही बीसे मोटर का स्पीडोमीटर
बंजबद् फासला मापता जाता है,
धीर बंजबद् बिघाठ स्वर में कहता
है (किस से!) कि मने धपने
धमित शूर्यपत्र का इतना घंघ तय
कर लिया"

न जाने कब कौंसे मुझे नीर धा
गयी

तब धः कभी के बज चुके थे
जब किसी के धाने की धाइट है मेरी

जली रुक बंध धीर जग हुआ
'अमित स्वरण का इतना बंध'
धीर तपाठ हो गया।

गीर चुसी, घीर मीने देखा कि महेश्वर
 तोट घाये हैं घीर उनके साथ ही
 बिस्तर लिये हुए भेरा कुसी। मैं मुंह
 धोने को पानी माँगने को ही या कि
 मुझे पार घायर पाती नहीं होगा।
 मीने हाथों से मुंह पोंछते-पोंछते
 महेश्वर से पूछा "घायने बड़ी
 देर की।"

उन्होंने किञ्चित् ग्लानि भरे स्वर
 में कहा 'हाँ घाय बह वीरान का
 घायरेसन करना ही पड़ा एक कर
 घाय हूँ दूसरे को एंजुलेंस में बड़े
 घस्पताल भिजवा दिया है।"

मीने पूछा वीरान कैसे हो गया ?"

"एक काँटा चुमा या उठीसे हो
 गया, बड़े सापरबाह लोन होते हैं
 यहाँ के "

मीने पूछा, 'यहाँ घायको कैसे
 घच्छे मिल जाते हैं ? घाय के सिहाज
 से नहीं डाकनरी के घम्पास के
 लिये ?"

बोले 'हाँ मिल ही जाते हैं
 यही वीरान हर दूसरे-बोये दिन एक
 केस घा जाता है, मीने बड़े घस्पतालों
 में भी "

मासती घायन में ही गुन रही पी
 घब घा यमी बोली "हाँ केस बनाते
 देर क्या लमती है ? काँटा चुमा या
 हल पर टाय काटनी पड़े यह भी कोई
 डाकनरी है ? हर दूसरे दिन किसी की

बह कौटा' मासती के बीदन में लप
 लवा या बब बलका मीस्वर के लान
 बिबाह टुबा या जाम बह बहकर
 वीरान ही गया।

टाँप किसी की बांह काट माते हैं
इसी का नाम है अन्ध्या अन्ध्यास ।”

महेस्वर हँसि बोले 'न काटें तो
उसकी बाग बचायें ?”

हाँ पहले तो बुधियाँ में कटि
हो नहीं होये । प्राय तक तो मुना
नहीं बा कि काँटों के चुमने से मर
जाते हों ।”

महेस्वर ने उत्तर नहीं दिया
मुस्करा दिये मासठी मेरी घोर
देख कर बोली 'ऐसे ही होते हैं
आकर घरकारी मस्पतास है न
क्या परवाह है । मैं तो रोब ही
ऐसी बातें सुनती हूँ । अब कोई मर
मुर आम तो क्या ही नहीं होता ।
पहले तो रात रात मर नीद नहीं
पाया करती थी ।”

सामान्य व्यवहार के तर्काद ।

बराब की इत मूमि ।

तभी घाँगन में लुके हुए नल ने
कहा 'टिप टिप टिप टिप
टिप टिप

मासठी ने कहा 'पानी” घोर उठ
कर बसी बयी । खन-खगाहट से हृमने
आना बर्तन धोये जाने लगे हैं

टिटी महेस्वर की टाँपों के उहारे
सड़ा मेरी घोर देख रहा बा मर
एकएक उन्हें धाँड़ कर मासठी की
घोर बिसकटा हुआ जाता । महेस्वर ने
कहा 'उधर मत जा ।” घोर उसे
घोर में उठा लिया वह मचलने घोर
बिस्ता-बिस्ता कर रोने लगा ।

महेश्वर बोसे अब रो-रो कर
ओ बापूया तभी घर में थी होगी ।”

मैने पूछा बाप कोय भीतर ही
सोते हैं ? पर्सा तो बहुत होयी है ?”

‘होमे को तो मच्छर भी बहुत
होते हैं, पर यह सोड़े के पर्सांग बठा
कर बाहर कौन ले जाये ? घर के
नीचे बासंवे तो बारपासर्मा ले
जायेंगे ।” फिर कुछ स्फुर कर बोसे
‘घाज तो बाहर ही सोयेंगे । घाजके
घाने का इयना साथ ही होगा ।”

टिटी घसी तक रीता ही था रहा
था । महेश्वर ने उसे एक पर्सांग पर
बिठा दिया और पर्सांग बाहर खींचने
लगे मैने कहा ‘मै मदक करता हूँ,”
और दूसरी ओर से पर्सांग छठा कर
निकलवा दिये ।

घस हुए तीनों ‘महेश्वर टिटी
घोर में दो पर्सांगों पर बैठ गये और
बातालाप के लिये उपयुक्त विषय न
पाकर उस कमी की छुत्ताने के लिये
टिटी से लेलने लगे बाहर घाकर वह
कुछ खुप हो गया था किन्तु बीच
बीच में जैसे एकाएक कोई मूला
हुपा कर्तव्य याद कर रो उठता था
और फिर एकदम धुा हो जाता
था ‘घोर कभी-कभी हुए हूँ पढ़ते
थे या महेश्वर उसके बारे में कुछ
बात कह देते थे-

सातत्य इतिहास-रूपन आरीय अन्धा
बनावटीयम व कवने रन अविभाय से ।

मासती बर्तन धो चुकी थी। जब वह उन्हें लेकर घासन के एक घोर रसोई के सप्पर की घोर जसी तब महेश्वर ने कहा "चोड़े से घाम लाया है, वह भी बो लेना।"

"कहाँ है?"

"घोंसीठी पर रखे हैं, कागज में लिपटे हुए।"

मासती ने भीतर जाकर घाम उखले और अपने घासन में डाल लिये। जिस कागज में वे लिपटे हुए थे वह किसी पुराने बखवार का टुकड़ा था। मासती जसठी-जसठी सम्झा कि उस धीन प्रकाश में उसी को पढ़ती या रही थी "वह मस के पास जा पड़ी हो उसे पढ़ती रही, जब दोनों पढ़ चुकी, तब एक लकी लाँस लेकर उसे फड़ कर घाम बोने लगी।

बखवार से भी कभी ललित के बिना ही मछाला बिना।

मुझे एकाएक बाद घामा "बहुत दिनों की बात थी जब हम अभी स्कूल में भर्ती हुए ही थे। जब हमारा बचपने बड़ा मुज, सब से बड़ी दिव्य की हाजिरी हो चुकने के बाद बोरी से नलास से निकल भागना और स्कूल से कुछ दूरी पर घाम के बमीन में देहों पर चढ़ कर कभी घामियाँ तोड़-तोड़ लाना। मुझे मार घामा "कमी में भाग आता और मासती नहीं घा पाती

थी तब मैं भी खिन्न मन सौट घामा करता था

मासठी कुछ नहीं पढ़ती थी, उसके माता-पिता तंग थे, एकदिन उसके पिता ने उसे एक पुस्तक साकर दी और कहा कि इसके बीस पेज रोज पढ़ा करो, हफ्ते भर बाद मैं देखूँ कि इसे समाप्त कर चकी हो, नहीं तो मार-मार कर चमड़ी ठोके दूँगा। मासठी ने चुपचाप किताब ले ली, पर क्या उसने पढ़ी? वह नित्य ही उसके उस पन्ने बीस पेज, फड़क कर फेंक देती, घपने बेस में किसी भीति कर न पढ़ने देती। जब साठवें दिन उसके पिता ने पूछा, "किताब समाप्त कर ली?" तो उत्तर दिया "हाँ, कर ली।" पिता ने कहा। "साधो, मैं प्रसन्न पुरुषु था" तो चुप खड़ी रही। पिता ने फिर कहा, तो उद्वेग स्वर में बोली, "किताब मैंने फाड़ कर फेंक दी है, मैं नहीं पढ़ूँगी।"

उसके बाद वह बहुत पिटी, पर वह प्रसन्न बात है "इस समय मैं यही सोच रहा था कि वही उद्वेग और चञ्चल मासठी घाम किताबी लौबी हो गई है, बिगनी पाठ, और एक प्रसन्नवार क टुकड़े को ठरछती है यह क्या, यह"

उसी महीनेषर ने पूछा, "रौटी तब बनेयी?"

परिलिखित विवेक। मासठी १५ व।

“बस घबरी बनाती हूँ।
पर घबकी बार जब मासती
घोई की घोर जमी ठब टिटी की
तब्य भावना बहुत बिस्तीब हो मयी
वह मासती की घार हाब बढ़ाकर
रोने मया घोर नहीं माया मासती
उस नी गोब में सेकर जसो गई, रघोई
में बैठ कर एक हाप से उसे बपकन
घोर बूसरे से कई एक छोटे-छोटे दिब्बे
उठ्य कर घपने घामने रखने लगी

घीर हम दोनों बपचाप रात्रि
की घीर भोजन की घीर एक बूसरे
के कुछ कहने की घीर न जाने किस
क्रिस् म्यूनता की पूति की प्रतीसा
करने लये।

हम भोजन कर चुके ब घीर
बिस्तरों पर सेट मये बे घीर टिटी
छो मया था। मासती उसे पलम के
एक घोर मोमजामा बिछाकर उसे उस
पर सिटा गई थी। वह छो मया था,
पर नीब में कमी-कमी बोक उठठा
था। एक बार तो बठकर बैठ मया
था पर तुरंत ही सेट मया।

मैने महेश्वर से पूछा “घाप
तो बक हाये, सा जाइये।”

बे बाभे, “घके तो घाप घबिक
हूँकि घट्टाव्ह मील पैरल बल कर
घाये हूँ। “क्रिस्तु घन के स्वर ने मानो
बोड़ दिया “दका तो मैं भी हूँ।”

में चुप रहा, बोड़ी देर में किसी
घपर संघा ने मुझे बताया, वे ठेके
रहे हैं।

तब सबभग साढे बस बने थे,
मासती मोजन कर कर रही थी।

मैं बोड़ी देर मासती की घार
देखाता रहा, वह किसी विचार में—
कल्पि बहुत सहरे विचार में नहीं,
सीत हुई बीरे बीरे घाना खा रही
थी, फिर मैं हपर-उबर छितक कर,
पलंग पर धाराम से हो कर, धाकाघ
की घोर देखने लगा।

पूणिमा थी, धाकाघ घनभ्र वा।

मैंने देखा, उस सरकारी नवाटर
की बिन में धर्यंत चुपक घोर नीरस
सगने वाली स्टेट की छन भी घाँवनी
में बमक रही है, धर्यंत घोरमता
घोर स्निग्धता से घसक रही है, मानो
बत्रिका सन पर से बहती हुई घा रही
हो, भर रही हो

मैंने देखा, पवन में बीड़ के
बुछ 'मर्मी से घूब कर मटवीसे हुए
बीड़ क बुछ 'बीरे-बीरे वा रहे
हों 'कोई राग जो कोमल है, किन्तु
कमज नहीं, घरातिप्रिय है, विद्यु
घड़ेगमय नहीं

मैंने देखा, प्रनाघ से बुंधसे नील
धाकाघ के पट वर वा बमपादक
नीरव उड़ान से बनकर काट रहे हैं,
वे भी तुंदर दीसते हैं

रवाबीय विचारक के बघाराम।

मिने देखा 'दिल मग की तपन
 अशास्त्रि अकाम बाहू, पहारों में से
 बाग से छठकर बाठाबरम में खोवे
 बा रहे हैं जिसे प्रहम करने के निम
 परंत पिपुसों ने अपनी भीड़ बुझ
 स्त्री मुजाएँ धाराप की धोर बड़ा
 रबी हैं

पर यह सब मिने ही देखा एकल
 मिने 'महेदवर ठेक रहे से धीर
 मासठी उस समय जीवन से निवृत्त
 होकर रही अमाने क लिये मिट्टी का
 बतल गम पानी से जो रही थी धोर
 कह रही थी "मानी छुट्टी हुई जाती
 है," धोर मेरे कहने पर ही कि
 "आएँ बजने कासे हैं," धीरे से सिर
 हिमा कर बना रही थी कि रोत्र ही
 होने बज जाठ हैं 'मासठी ने वह
 सब कुछ नहीं देखा मासठी का जीवन
 अपनी रोत्र की निपन नति बहा जा
 रहा था धोर एक अहमा की अहिका
 के लिये एक संतार के सीधप के लिये
 रहने का तैयार नहीं था

अहिकी में पिपु कैंसा लपटा है,
 इस अमल जिब्रासा है मिने टिट्टी की
 धोर देखा धीर वह एकाएक मानो
 किपी संसर्बोचित कामजा म प्रठा धीर
 त्रिस्तक कर पतंग से मीथे फिर पड़ा
 धीर बिसला बिहसा कर रोने लगा ।
 महेदवर ने बौक कर कहा "मया
 हुआ ?" मैं सगन कर उसे उठाने

बाठाबरम की अशिकापिक मुजर
 करने के अशिकाप से एक अहमा का
 लोग किया गया है । अहमा के
 आयम से उसे नति अहाम की
 बई है और अहमा रंग अहम कर
 अहमापरी अहम अहम

मैं चुप रहा, थोड़ी देर में किसी
प्रकार संज्ञा में मुझे बताया, मैं ऊँच
रहे हैं।

तब समय-समय साधे बस बने थे,
मासती मोजन कर कर रही थी।

मैं थोड़ी देर मासती की धोर
देखता रहा, वह किसी विचार में—
वद्यपि बहुत गहरे विचार में नहीं,
नील हुई थोड़े-थोड़े लाना छा रही
थी, फिर मैं इधर-उधर खिसक कर,
पसंग पर आराम से झो कर, आकाश
की धोर देखने लगा।

पूणिमा थी, आकाश धनधन था।

मैंने देखा, उस सरकारी क्वार्टर
की दिन में धत्यंत शुष्क धोर नीरस
सपने वाली स्लेट की छत भी पार्ली
में बमक रही है, धत्यंत चौकसता
धोर स्निग्धता से धनक रही है, मानो
कठिका उस पर सं बहती हुई धा रही
हो, नर रही हो

मैंने देखा, पवन में चीड़ के
बुल "धमी से घूस कर मटमैले हुए
चीड़ क बुल "थोड़े-थोड़े धा रहे
हों" कोई धम जो कोमल है, किंतु
कदम नहीं, धरातिप्रिय है, किंतु
छत्रेगमय नहीं"

मैंने देखा, प्रकाश से बुझते नील
आकाश के पट धर धो बमगावक
नीरस उड़ान से धरधर काट रहे हैं,
वे भी सुंदर दीघते हैं

रवाभीय विनायक के कथावचन।

मैंने देखा 'विम भर की तपन
प्रयान्ति बकास दाह, पहाड़ों में से
भाग से उठकर बातावरण में छोड़े
जा रहे हैं जिसे प्रहम करने के लिये
पबठ विद्युत्‌घों में अपनी भीड़ कुछ
स्त्री मुन्नाएँ प्राकाश की घोर बका
रही हैं

पर यह सब मैंने ही देखा अपने
मैंने 'महेस्वर' ऊँच रहे से घोर
मासती उस समय भोजन से निवृत्त
होकर रही बमामे के लिये मिट्टी का
बतन कम पानी से जो रखी थी घोर
रह रही थी "अपनी छुट्टी हुई जाती
है" घोर मेरे कहने पर ही कि
"आज बजने वाले हैं," घीरे से सिर
दिना कर बता रही थी कि रोज ही
इतने कम खाते हैं मासती ने वह
कम कुछ नहीं देखा मासती का बीबन
अपनी रोज की नियत मति बहा का
रहा या घोर एक संभ्रमा की बहिष्कार
के लिये एक संसार के सर्वत्र के लिये
रुके को तैयार नहीं या

बाँवली में विद्युत्‌घोंसा लमटा है,
उस समय जिह्वासा से मैंने टिटी की
घोर देखा घोर वह एकाएक मानो
किन्हीं संसर्गोचित बामता से उठा घोर
प्रियकर कर परम्य से मीचे गिर पड़ा
घोर बिस्सा बिस्सा कर रोने लगा ।
महेस्वर के बौद्ध कर कदा "क्या
हुआ ?" से जगट कर छले छठाने

बातावरण को बहिष्कारित मुकर
करने के बहिष्कार से एक बका का
बीबन लिखा गया है । बका के
मास्यम से बसे गति प्रदान की
गई है और बकाका रंग क्लम कर
अंशमाली प्रत्यक्ष करा.

दीड़ा मासती रसीर से बाहर घायी
 मैंने उस 'अट, अट' को याद कर पीरे
 से कस्मा-भरे स्वर में कहा, "को
 बहुत सप यमी बिचारे के।"

यह सब मानो एक ही क्षण में
 एक ही क्रिया की गति में हो गया।

मासती ने रोते हुए घिसु को
 मुझसे सेने के सिधे हाथ वढ़ाते हुए कहा
 "इसके कोठे लगती ही रहती हैं, रोव
 ही गिर पड़ता है।"

एक छोटे क्षण भर के सिधे में
 स्वप्न हो गया फिर एकाएक मेरे मन
 में मेरे समूचे अस्तित्व में बिद्रोह के
 स्वर में कहा "कहा मेरे मन में भीतर
 ही बाहर एक घण भी नहीं
 निकला "माँ, मुबती माँ, यह
 तुम्हारे हृदय को क्या हो गया है,
 जो तुम अपने एमसाज बच्चे के
 गिरने पर ऐसी बात यह सफती
 हो" और यह यमी, जब तुम्हारा
 जीवन तुम्हारे घागे है।

कालांतर का रसाभी और तब
 प्रभाव रीकन में रूप बचर दृष्टा है
 कि अन्ति का अन्तिर ही बल का
 लवता है—मन्त्र का अन्त मन्त्र
 का सकना है और मन्त्र की मात्र
 वता है तरेद इमे लवता है।

धीरे, सब एकाएक मिने जाता कि
 वह मानना मिम्मा नहीं है, मिने देगा
 कि सपमुच उस कुटुम्ब में चारि मही
 अर्धकर छाया घर कर गयी है, जग
 जीवन के हय पहले ही जीवन में घु
 भी तच्छ सप गयी है, उतपा इना
 अचिप्त संव हो गयी है कि वे जमे
 पहचानत ही नहीं, जमी की परिधि में

बिरे हुए लगे जा रहे हैं । इतना ही नहीं मैं उस छाया को देख भी गया

बाग़ बग़े का एक-एक-दिवाबू बोल ।

इतनी बेर में पूर्वकम् घाति हो गयी थी । महस्वर फिर सेट कर ऊँच रहे थे । टिट्टी माम्ती के सेठे हुए शरीर से बिगट कर चुप हो गया था यद्यपि कमी एकाप सिधरी चसक छाटे से शरीर को हिला देती थी । मैं भी अनुभव करते तथा था कि बिम्बर बग़-बाग़ रहा है । माम्ती चुप थाप ऊपर आकाश में देख रही थी किन्तु क्या बहिका को या ठारों को ?

तभी ग्यारह का बंग बजा मैंने अपनी मारी हो रही पसकें उठाकर बकसमात् किना बसपट्ट प्रतीसा मे माम्ती को घोर बैठा । ग्यारह के पहले घंटे को बङ्गा कसाप ही माम्ती की छाती पन्नाएट फगोने की भाति सठी घीर घीरे बीरे बैठने सगी घोर घंटा ध्वनि के घोरन के साथ ही मूरु हो जाने वाली आवाज में उगने का ग्यारह बज गये ”

इस पूर्वाहुति में बरने के लक्ष भाग बरने ६९वीं प्रभाव भविष्य होकर बज हो उठे है ।

नाटकीय कहानी

आकाश दीप

[अचानक प्रसाद]

“हस्यो !”

“क्या है ? सोने हो ?”

“मुक्त होना चाहते हो ?”

“यही नहीं मित्रा मुझे पर
बुझ रही ।”

“फिर सबकुछ न मिलेगा ।”

“बड़ा चीठ है, कहीं से एक
कंबल डाल कर काई चीठ से मुक्त
करना ।”

“घाँधी की संभावना है । यही
घबहरा है । मात्र धरे बंधन विपिन
है ।”

“तो क्या तुम भी बन्दी हो ?”

“हाँ बीरे बोलो इस मास पर

केवल इस नाबिक मोर धरती है ।”

“धरत्र मिलेगा ?”

नाटकीय सभारंज । संवादों का अनु-
स्कारो रूप रिबिडि की संकीरता
अप्रापित कर रहा है । 'बंदी चीर
'मुक्त होना चाहते हो ? से आकर्षण
भीर मित्रता अब बरती है ।

परिचिति और एवाव का संदेह ।

धर्मण सहायभूत भीर पैरी की
संभावना सुश्रुतिप होती है ।

प्रथम पत्रिका का नाम परिवर्तित है
मीटर का ऐकॉटिक लक्षण।

“मिस बायगा। पोल से संबद्ध
रज्जु काट सकोगे ?”

‘हाँ।’

समुद्र में हिलोरें उठने लगीं। परिचित का अर्थिक लक्षण ही।
बंसी बंदी घायल में टकराने लगे।

पहले बंदी ने घायल को स्वतंत्र कर
लिया। दूसरे का बंधन तोलने का
प्रयत्न करने लगा। सहूरी के बच्चे

एक दूसरे को स्वर्ग से पुसकित कर
रहे थे। मुक्ति की धारा—स्नेह का

संस्कारित धारिणी। दोनों ही
संस्कार में मुक्त हो गये। दूसरे बंदी

ने हर्षातिरेक से, उलको मते से लया
लिया सहसा उस बंदी ने कहा—“यह

क्या ? तुम स्त्री हो ?”

कुरल का विकास।

“क्या स्त्री होगा कोई पाप है ?”

—घपने को घलप करते हुए स्त्री ने
कहा।

“घरम कहाँ है ? तुम्हारा नाम ?”

‘बंसा।’

तारक-सहित नील घन्वर घोर
नील समुद्र के अंधकार में पवन ऊपम
सीदिल की शंका-लम्बा।

मचा रहा था। संस्कार से मिल कर
पवन झुट हो रहा था। समुद्र में

संशोसन था। नीला सहूरी में
बिभ्रस थी। स्त्री सतकता से गुड़कने

लगी। एक मंत्रवाले नाविक के घरीर
से टकरानी लूँ सावधानी से उगाका

दृष्टांत निकाल कर, फिर मुड़कते हुए बंदी के समीप पहुंच गई। सहसा पोत से पथप्रदर्शक ने चिस्सा कर कहा—“भाभी !”

सापत्ति-युवक दृष्ट बचने लगा। बहुरि की पीठिका का मुँगा। सब सावधान होमि सने। बंदी युवक उसी तरह पड़ा रहा। किसी ने रस्ती पकड़ी, कोई पास कोस रहा था। पर युवक बंदी हुसक कर उस रज्जु के पास पहुँचा जो पोत से सलाम थी। बारे डूंक गये। तरंगें उद्वेलित हुईं, समुद्र गरबने लगा। भीषण घापी, पिशाचिनी के समान नाव को अपने हाथों में लेकर कम्बुक झीड़ा घोर घट्ट हास करने लगी।

एक मटके के साथ ही नाव स्वतंत्र थी। उस संकट में भी दोनों बंदी बिलखिमा कर हूँस पड़े। भाभी के हाहाकार ने उसे कोई न मुत सदा।

प्रथम परिशेरे के संश-मरत की सिद्धिसे निरव को मनात्रि। कमानक की परकी मत्रिम पूरो होनी है मी मारंम की मड मकलना कहावी मरिनाम को मवदी प्रीवमा है।

२

धर्मत वसनिदि में उपा का मबुर धालोक फूट उठा। मुनहसी निरवां घोर सहरो की कोमस मृष्टि मुस्कदाने लगी। सावर पांत था। नाबिकों ने बेया, पोत का पता नहीं। बंदी मुक्त है।

रंमर के प्रयोग में जाने नि को ताह वक इत्य निरव का विनाम और परिलिखि का वो

नायक ने कहा—“बुद्धबुज्ज ! तुम को मुक्त किसने किया ?”

इपाज दिखा कर बुद्धमुण्ड ने कहा—“इससे।”

नायक ने कहा—“तो तुम्हें फिर बंदी बनाऊंगा।”

“किसे लिये? पोताप्यरा मनि भद्र घणम पत मे होगा—नायक। यह इस मीका का स्वामी मैं हूँ।”

“तुम ? बमदस्यु बुद्धमुण्ड ? कहापि नहीं।” —बौद्ध कर नायक ने कहा और घपना इपाज टटोताते गया। जंपा मे इससे पहले जगपन धयिकार कर निवाया। वह श्रेष्ठ ए वक्ष्य पया।

“तो तुम इंडियुड क लिये प्रस्तुत हो जाया जो बिजमी होगा बही स्वामी होमा।” —इतना कह बुद्धमुण्ड ने इपाज देने का संकत किया। जंपा मे इपाज नायक के हाथ मे दे दिया।

भीषम पात प्रतिपात धारंभ हुआ। दोनों कुपस दोनों स्वरित पतिवाते थे। बड़ी निपुणता से बुद्धमुण्ड ने घपना इपाज दोनों से पकड़ कर घपन वालों हाथ स्वर्तन कर लिये। जंपा भय और विस्मय से देखते सगी। नाबिक प्रसन्न हा गये। परंतु बुद्धमुण्ड ने सापब से नायक का इपाजनामा हाथ पकड़ लिया और बिकट हुंकार से दूतरा हाथ कटि में बाज उने मिरा दिया। दूसरे ही

अब प्रभाव फिरनों में बुद्धगुप्त का
विजयी रूपान्तर उसके हाथों में बमक
उठा। नायक की बाबर घातों प्राण
मिया मीयने लयी।

बुद्धगुप्त ने कहा—“बोमो घब
स्वीकार है कि नहीं ?”

“मैं घबुबर हूँ बरम्बरेव की
घपप। मैं बि-पासपात न करूना।”

बुद्धगुप्त ने उसे छोड़ दिया।

बंवा ने मुबक बतवस्तु के समीप
घाकर उसके हाथों की घपनी स्निग्ध
दृष्टि और क्रोधन करीं से बैदना
बिहीन कर दिया। बुद्धगुप्त के
सुपठित शरीर पर रक्त-बिन्दु बिजय
तिमक कर रहे थे।

बंवा और बुद्धगुप्त की मकदमीनी
की बिकात-दृष्टि।

बिधाम लकर बुद्धगुप्त ने पूछा— बंवा और बंवा की बावना रथावित।
“हमसोप कहाँ होने ?”

“बालीद्वीप से बहुत दूर, संभवतः
एक नवीन द्वीप के पास जिनमें घमी
हम सोपों का बहुत कम घाना घाना
होता है। सिहल के बधिकों का वहाँ
प्राचाम्य है।”

“जितने बिकों में हमसोप वहाँ
पहुँचेंगे ?”

“घनुकूम पवन मिसने पर दो
बिक में। तब तक के लिए राघ का
घमाव न होगा।”

सहसा नायक ने नाबिकों को बाँड़
लपाने की घाना की घोर स्वयं बजवार

पकड़ कर पीठ पया। बुढ़पुत्र के पूछन पर उसने कहा—“यहाँ एक अपमान पीसल्यं है। साबधान न रहने से माव के टकराने का भय है।”

द्वितीय और टंड के कुतूहल बढावा। परिणाम में बिशाम नाम की मकरवा को भुग कर दिया। इस प्रकार मसोल बरिधित का संकल्प पूर्णतया सुकरीत हो बडा। दुनरी मन्त्रिण की बड़ी बुढ़ हो जाती है।

३

“तुम्हें हम लोगों ने बड़ी बर्षो बनाया ?”

“बालिक मन्त्रिण की पाप बामना मे।”

“तुम्हारा घर कहाँ है ?”

“बाहूबी के लट पर। बम्पा नगरी की एक छत्रिय बामिया है। पिता इसी मन्त्रिण के यहाँ प्रहरी का काम करते थे माता का देहान्तान हो जाने पर मैं भी पिता के साथ माव पर ही रहने लगी। घाठ बरस से समुद्र में ही मेरा घर है। तुम्हारे शाकमण के समय मेरे पिता ने ही सात वस्तुओं का मारकर बम-समाधि ली। एक मास हुआ, मैं इस मील नम के मीच, मील बसनिधि के ऊपर, एक मयातक समस्तता मे निस्सहाय हूँ। मनाय हूँ। मन्त्रिण ने मुझे एक दिन पूबित प्रस्ताव किया। मैंने उसे बालिया मुनाई। उही दिन से बन्दी बना दी गई।”—बम्पा रोप से बल रही थी।

बाबी का बरिधय और बर्षानाम बरि निवति के भीतर मन्त्रिण का लडेल।

“मैं भी ताजमहल का एक
 शक्ति हैं जम्मा ! परन्तु दुर्भाग्य से
 बसतस्तु बनकर जीवन पिताता हूँ ।
 अब तुम क्या करोगी ?”

“मैं अपने घबूट को घनिष्ठ
 ही रहने दूंगी । वह जहाँ से जाय ।”
 —जम्मा की घाँसे निस्सीम प्रवेश में
 तिरहुदस्य थी, किता साकांसा के
 काम छोटे न थे । बसत अर्थात् में
 बालकों के सदृश्य विश्वास था । ह्या-
 म्यसामी बस्तु भी उसे देखकर काँप
 गया । उसके मन में एक सम्भ्रमपूर्व
 यज्ञा योजना की पहली सहरों को
 जगाने लगी । समुद्र-बसा पर बिलंब
 मयी राग-रंजित सपना चिरकते रायी ।
 जम्मा के घर्तव्य कुंतल उसकी पीठ
 पर विखरे थे । दुर्दान्त यस्तु ने देखा,
 अपनी महिमा में अलौकिक एक तगल
 बालिका । वह बिस्मय से अपने हृदय
 को टटोलन लगा । उसे एक नई बस्तु
 का पता चला । यह थी—क्रीमलता ।

उसी समय मायक ने कहा—“हम-
 लोन द्वीप के पास पहुंच नये ।”

बेसा से नाव टकराई । जम्मा
 निर्भीकता से कूद पड़ी । माँभी भी
 जतरे । बुद्धिगुण ने कहा—“जब इतना
 कोई नाम नहीं है तो हमसोव इसे
 जम्मा द्वीप कहेंगे ।”

जम्मा हँस पड़ी ।

जम्मा-मैत्री का संभव (बीच में)
 रहा है । जम्मा का पूर्व का बर्त
 मंडित हो रहा है ।

४

वीच बरस पाव—

घर के प्रकाश तयान नीस वनन
 व भूममारा रहे थे । चंद्र के उज्ज्वल
 बिजय पर संतुष्टि में धरद्वसकमी ने
 प्राचीनोद क पूर्यो धीर घोसों को
 विभेरा दिया ।

बरीन्देर के कारन में बाल के लाल-
 बाल वर शास्त्री बचन ।

प्रकृति-विभवों को स्थापना

बम्पा के एक उज्ज्वल शीत पर
 कटी हुई ठंडकी बीजक जसा रही थी ।
 बड़ बल से घमनक की संभूपा में
 दीप पर कर उठने घपनी मुहुमुहार
 उंगलियों से डोरी घीची । बड़ बीजा
 बार ऊपर बड़न रागा । मीमी-बोमी
 घोष उठे ऊपर बड़के बड़े हृष से देण
 रही थी । डोरी बीरे-बीरे बीची गई
 बम्पा की कामना थी कि उठका
 धाराए-बीप बराबों से हिममित
 जाय किन्तु ऐसा हुना असंभव
 था । उठने घाघा भरी घाँसे किरा
 ली ।

परिभेरा को ललावट

मामने बलराधि का रबड
 गृधर का । बरप बालिकाधों के
 लिये गहरों से हीरे घोर नीयन की
 जोड़ा रीकमातायें बना रही थी ।
 घोर के काफकिनी घूममायें घपनी
 हूँगी का बलना छोड़कर दिए बानी
 थी । दूर दूर में पीररों की बनी की
 भनकार उनके संवीर-सा मुगलित

प्रकृति-विभव के द्वारा परिभेरा को
 ललावट ।

होता था । चम्पा ने देखा कि तरल संकुच बल-राशि में उसके कंडील का प्रतिबिम्ब घलघलता था । वह अपनी पूर्णता के लिए लौक्यों चक्कर फाँटा था । वह धनमयी होकर बड़ लड़ी हुई, किसी को पास न बैठ कर पुकारा "जया ।"

एक ब्यामा मुक्ती सामने आकर खड़ी हुई । वह खबली थी । नील लमीमम्बल—से मुल में शुभ मलत्रों की पंक्ति के समान उसके बाँट हँसते ही रहते । वह चम्पा को रापी कहती बुद्धमुष्ट की भाँजा थी ।

"महाभाषिक कब तक धाबेंसे, बाहर पूछो तो ।"—चम्पा ने कहा । जवाब नहीं गई ।

दूरामत पवन चम्पा के धंजल में विध्वंस लेना चाहता था । उसके हृदय में गुब्बगुबी हो रही थी । भाव न जाने क्यों यह बेगुप थी । एक बीर्यकाय बुद्धपुरण ने उसकी पीठ पर हाथ रखकर उसे चमकृत कर दिया । उसने फिर कहा—"बुद्धमुष्ट !"

"बाबली हो क्या ? यहाँ बँटी हुई मनी तक दीप जसा रही हो, तुम्हें यह काम करना है ?"

"दीरनिबिद्यावी मर्मठ की प्रसन्नता के लिये क्या बातों में साकाश-दीप जलाऊँ ?"

जब की चम्पा के अतृप्त आत्म विज्ञान का रहा है ।

मात्राबलकलवासी से क्या का विलार का र हृदय ही रहा है और भाँजिक भाँजवाली का भी चम्पारण हो रहा है ।

“हृष्टी घाती है। तुम किसको
बीप बसाकर पत्र दिखाना चाहती
हो ? उसको जिसको तुमन भगवान
मान लिया है ?”

“हाँ वह भी कभी मटकते हैं
नूकते हैं नहीं तो बुद्धगुप्त को इतना
ऐस्वर्ब क्यों देते ?”

‘तो बुद्ध क्या हुआ इस बीप की
प्रचीत्तरी बंपारानी !”

“मुझे इस बंबीपूह से मुक्त करो।
अब तो बाली बाबा और सुभाषा का
बानिज्य केवल तुम्हारे ही प्रबिचार
में है महाभाषिक ! परंतु मुझे उन
दिनों की स्मृति सुहाबनी लगती है
जब तुम्हारे पास एक ही नाब भी
पीर बंपा के उपकृत में पत्र साब
कर हम लोग सुखी जीवन बिताते थे।
इस वक्त में प्रबन्धित बार हम लोगों
की तारी बालीकमय प्रबन्ध में—तारि
कार्यों का मधुर प्र्याति में—बिरकती
थी। बुद्धगुप्त ! उस बिजल प्रमत्त में
जब मौन्दी से जाते थे, दीपक बुद्ध
जाते थे, हम तुम परिषद से एक कर
पालों में घरीर मने कर एक बूतरे
का मुँह क्यों देते थे। वह नताओं
की मधुर प्र्याया—”

“तो यपा ! अब जससे भी मक्ये
बंप से हम लोग बिबर सन्ते हैं। तुम
मेरी प्रायगामी हो, मेरी सर्वस्व हो।”

मातृक विद्याय ब्रह्मचर्य की रीति
की वल प्रथम कर रहा है।

"नहीं नहीं, तुमने वस्तुवृत्ति तो
 छोड़ दो परंतु हृदय बीसा ही धरुण्य
 सवृण्य और बसमशील है। तुम अब
 नाम के नाम पर हँसी उड़ाते हो।
 मेरे आकाश-दीप पर ब्यंग बर रहे
 हो। नाबिक उठ प्रचंड घाँसी में
 प्रकाश की एक-एक किरण के लिये
 हम लोप बितने व्याकुल थे। स्मरण
 है, जब मैं छोटी थी मेरे पिता नौकरी
 पर समुद्र में जाते थे—मेरी माता,
 मिट्टी का बीपक बाँस की पिटारी में
 बना कर मागीरपी के तट पर
 बाँस के साथ ऊँचे टीप होती थी।
 उस समय वह प्रायना करती—
 "मनवान ! मेरे पच प्रण नाबिक को
 संभकार में ठीक पच पर से बनना।"
 और जब मेरे पिता बरसों पर सीटते
 तो कहते—"साध्वी ! तेरी प्रायना
 स भयवान् मे भयानक संकटों में मेरी
 रक्षा की है।" वह गर्वप हो जाती।
 मेरी माँ ! आह नाबिक ! यह उसी की
 पुण्यस्मृति है। मेरे पिता, बीर पिता
 की मृत्यु के निष्ठर कारण जलदस्तु !
 हूँ जाओ।"—उद्दमा बना का मुग
 ज्येष्ठ स भीषण होकर रंग बदलने
 लमा। महानाबिक ने कभी यह रूप न
 देखा था। वह छटा कर हँस पदा।

बना के बरिष की इच्छा के मूल के
 ईश्वरी विद्यालय पर भारत की रक्षा के।

बरिष की आठरिष इति।

“यह क्या चम्या ? तुम मानस्य ही जाओगी, सो रहो।”—कहता हुआ जाता गया। चम्या मुट्ठी बाँधे उन्मादितनी-सी झूमती रही।

५

निर्बल समुद्र के उपकुल में बेला से टकरा कर सहर्षे बिखर जाती है। परिश्रम का पथिक बक गया था। उमका मुख पीसा पड़ गया। घपनी शान्त संमीर हलचल में बलनिधि बिचार में निमग्न था। वह बीच प्रकाश की उमकिन किरणों से बिरक्त था।

जपा और जया धीरे-धीरे उस तट पर आ कर घड़ी हो गईं। तर्ब से उठते हुए पवन ने उनके बसत को प्रस्त-भ्यस्त कर दिया। जया क संकेत से एक छोटी-सी गोका भाई। दोनों क उध पर बैठते ही भाविक उठर गया। जया नाक घेने भयी। चम्या मुग्ध-सी समुद्र के चलाव बाठापरण म घपने की विधित कर देना चाहती थी।

“इतना जल ! इतनी घोटगाथा ! हृदय की व्यास न कुम्भी। पी सज्जी ? नहीं ! तो बीचें भला से पोट जाकर विष्णु पिस्ता उठ्या है, उसी के समान रोगन कक ? या जसते हुए स्वज गोलक सज्ज घसत जस में रूप कर कुम्भ बाई ?”—जपा के बेतत ईसते

यमानाबिद को बहार सज्जतकि के मून में प्रबल मसति का कल सखिह है। पाणि की जाठा में बति जल रही है—इसका संकेत देकर बरि और समाप्त हो रहा है।

मूनन नाटकीय रूप बिसाव बाहुतिक बाहुनिधि पर भाषारिण समुद्र के उगम बाठापरण में चम्या की मज विधि पर नत

जपा की अनरारी पर बार बरग की विधि।

पीड़ा घोर जमान से घारका बिम्ब
 बीरे बीरे सिधु में, पीनाई—घाबा,
 फिर संपूर्ण बिलीन हो गया। एक
 बीरे निम्बाह लेकर जम्मा ने मुँह
 फिरा लिया। बेला तो महानाबिक
 का बजरा उसके पास है। बुढ़गुण ने
 झुक कर हाथ बढ़ाया। जम्मा उसके
 सहारे बजरे पर चढ़ गई। दोनों पाठ
 बैठ गये।

“इतनी छोटी नाब पर इतने
 घुमना ठीक नहीं। पास ही वह
 अतमम्न शीसपंड है। कहीं नाब टकरा
 जाती या ऊपर चढ़ जाती, चंपा,
 तो ?”

“अच्छा होता बुढ़गुण। जमान में
 जल्दी हाना कठार प्राचीरों से तो
 अच्छा है।”

“घाह चंपा तुम फिलनी निदर
 हो। बुढ़गुण को घाबा लेकर बैठो
 तो, वह क्या नहीं कर सकता। जो
 तुम्हारे निचे नये हीप की मृष्टि कर
 सकता है, गर्द प्रजा सोम करता है नये
 राज्य बना करता है उसकी परीक्षा
 लेकर बैठो तो।” कहो जम्मा। वह
 हृषाच से घपना हृदय-विण्ड निकाल
 अपने हाथों घटल जन में बिघर्जन कर
 है।” —महानाबिक—जिउके नाब से
 बाली, जाबा घोर चंपा का घाराग
 मुँजवा पा—मुटनों के बल चंपा के
 जमाने घनघनाई घाँघों से बैठ पा।

वैदग्ध्यपूर्व भाषात्मक संवाद से कथा-
 ध्यन कमलता भागी बरदा का रहा है।

महानाबिक का अन्वय भी निमित्त से
 जातम-सुवर्षल—चंपा का घारिक
 बरेम शक्ति घबरा संतुनित ही,
 वह अविनाय मे।

सामने धूलमाछा की थोटी पर, हरिमाती में, विस्तृत जल प्रदेश में नील विज्ञप्त संघ्ना, प्रकृति की एक सहृदय कल्पना, विद्याम की धीठरा छाया, स्वप्नलोक का सुजन करने लपी । उस मोहिनी के रहस्यपुष्प नीसजाल का कुहक स्फुट हो उठ । जैसे मदिरा से साध घंठरिख सिक्त हो गया । सृष्टि नील कमलों से भर उठी । उस धीरज से पादस बंधा ने बुदगुप्त के दोनों हाथ पकड़ लिये । वहाँ एक भासिङ्गा हुआ, जैसे सितिल में पाकाम धीर सिद्धु का । किन्तु उस परिवरंज में सहसा शैठग्य होकर बंधा ने अपनी कंधुकी से एक कृपाण निकाल लिया ।

“बुदगुप्त ! पात्र में धपनाप्रति घोष का कृपाण अउस जल मे उबा देती हूँ । हृदय ने छम क्रिया, धार धार घोसा दिया ।”—जसक कर वह कृपाण समुद्र का हृदय बेधता हुआ बिलीन हो गया ।

‘ तो पात्र से मैं बिस्वास करूँ ? मैं लामा कर दिया गया ?”—घाभय-कल्पित कण्ठ से महानाभिक ने पूछा ।

“बिस्वास ? क्वापि नहीं बुदगुप्त ! जब मैं अपने हृदय पर बिस्वास नहीं कर सही, सही ने घोसा दिया

प्रलय को तीरजता थी जमि दरज बरठी हुई प्रकृति ।

प्रलय प्रतिष्ठाबिध हो अउता है ।

प्रकृति बरी से बंधा के घांठरिख घाव-परिचर्जन का रूप धमिल हो रहा है । बिशेष के रजाम पर बलध-धपना का लदव धीर पाव-ईद का मूल रखत उबासा गया है । धरम-अकर्म की बधार्प मृति—बरी रखत है ।

तब मैं कैस बहूँ । मैं तुम्हें पूजा करती हूँ फिर भी तुम्हारे लिये मर सकती हूँ । अंधेर है जलबस्तु ! तुम्हें प्यार करती हूँ ।"—बंषा रो पड़ी ।

बिद्या का प्रतिशोध और बिद्या के प्रथम भाषना का संवर्धन परिचित ।

बहु स्वप्नों की रंगीन संख्या तब से अपनी प्राण संव करने लगी थी । दीर्घ निराशा से भर महानाथिक ने कहा—“इस जीवन की पुष्पतम मही की स्मृति में एक प्रकाश-गृह बनाऊँगा बंषा । यही तब पहलूकी पर । संभव है कि मेरे जीवन की बुँबली संख्या सघसे घासोक पूर्ण हो जाय ।”

प्रथम निराशा कापवाटा के अन्तर से परिष्केर समाप्त ।



बंषा के दूसरे भाग में एक मनो रम दीप्तमासा थी । बहुत बुर ठरु टिपुजन में निमग्न थी । छातर का बंषस जल जग पर उल्लसता हुआ उसे छिपाये था । धात्र उसी दीप्तमासा पर बंषा के आदि निराशियों का सपारीह था । उन सबों ने बंषा की बन्देबी-सा सजाया था । टाप्रनिधि के बहुत से सैनिक और गाविकों की सेना में जलजुगुम विभूषिता बंषा विविन्नासुड होकर जा रही थी ।

बुर परिष्केर जलवा परिष्केर की जलजलवा—मूलम रजाम र्वं स्थिति के कलम है ।

दीप्त के एक ठेके टिपुवर पर बंषा के गाविकों को साबधान करने के लिये गुड्ड दीप-स्तम्भ बनवाया गया था ।

प्रथम का महीक रजाम र्वंति ।

भाज उठी का महोत्सव है। बुद्धमुक्त
 स्तंभ के द्वार पर खड़ा था। सिबिका
 से घहापटा देकर बंधा को उसने
 उतारा। दोनों ने पीठर पर्याय
 किया था कि बाँसुरी पीर डोल बजने
 लगे। पंक्तियों में बुद्धुम भूषण से
 सबी। बत-बासायें पून उद्यातती हुई
 नाचने लगी।

समीर धर्मिय की मधुर रिचति की
 शीकिय।

दीप-स्तंभ की ऊपरी बिजुकी
 से यह देखती हुई जवा ने जवा से
 पूछा—“यह क्या है जवा। इतनी
 बासिकायें कहीं से बटोर आईं?”

‘भाज रानी का क्या है न? —
 कहकर जवा ने हँस दिया।

बुद्धमुक्त विस्तृत जलनिधि की
 पार देख रहा था। उसे मरुम्भोरकर
 बंधा ने पूछा—“क्या यह सब है?”

“यदि तुम्हारी इच्छा है तो यह
 सब भी हो सकता है बंधा? किन्तु
 यहाँ से मैं ज्वासामुखी को अपनी
 छाती से बचाव हूँ।

“तुम उहो महानाथिक। क्या
 मुझे निस्सहाय पीर कंपान नाम
 कर तुमने धाज सब प्रतिघाप सेना
 बाहा?”

“मैं तुम्हारे पिता का बात
 नहीं हूँ बंधा। वह एक बुद्धे वस्तु के
 वस्त्र से मरे।”

अपदि मैं इसका विरवास कर
 सफ़ती बुधपुष्ट वह दिन किठमा सुंदर
 होता वह राख किठना स्पृहणीय !
 पाह ! तुम ह्य निप्युरता में भी किठने
 महान् होते । ॥

निगति का सदैव । परम बरकर
 को केंपी भूमि से क्यानी की नति
 बहार की मोर बन रही है । पुन
 वन पूर्वजना क्युत्र है, जलरन तीम
 नति से अनुमान होक रहा है ।

जबा नीचे बसी गई थी । स्तंभ
 के संकीर्ण प्रकोष्ठ में बुधपुष्ट घीर
 बंपा एकांत में एक दूसरे के सामने
 बीठे थे ।

बुधपुष्ट में बंपा के वीर पकड़
 सिये । उच्छ्वसित घब्यों में वह
 बहने सपा— बंपा ! हम सोय जगम
 भूमि-माप्यबर्ष से मिठनी दूर इन
 निपैह प्राणियों में इह मोर रापी के
 समान पूजित हैं । पर न जाने कीन
 समिघाय हम लोगों को अभी तक
 घसप जिये है । स्मरण होता है कि
 बार्धभिकों का देस ! वह महिमा की
 प्रतिमा ! मुझे वह स्मृति नित्य प्राक
 पित करती है परंतु मैं क्यों गही
 पाता ? जागती हो इतना महत्त्व
 प्राप्य करने पर भी मैं कंपाल हूँ ।
 मेरा पत्पर-सा हृदय एक निम सहृदा
 तुम्हारे स्पर्श से बंकांत-मधि की
 तरह इबित हुआ ।

बंपा ! मैं ईश्वर को गही मानता
 मैं पाप को गही मानता मैं क्या को
 गही समस्त सबदा मैं उग सोक में
 विश्वास नहीं करता । पर मुझे घपने
 हृदय के एक दुबरा घंघ पर बडा हो

बनी है। तुम न जाने कैसे एक यहूदी
हुई ताकिदा के समान वेरे पुस्य में
उदित हो गई हो। धार्मिक की एक
कोयस देखा ह्य निविह तम में
मुस्कुराने लगी। पयु-अस धीरे धन के
उपामक के मम में किसी शान्त धीरे
कामत शानता की हँसी प्रिसखिसाने
सही पर मैं न हँस सका।

'बलीनी बम्पा ! पीतबाहिनी
पर अयुष्य धनराशि सादकर छात्र
रानी-सी अन्धभूमि के अंक में ? मात्र
हमारा अरिपय हा कम ही हपसोप
भारत के सिधे प्रसवाल करे। महा
नातिक बुद्धगुण की धात्रा सिधु की
बहुरे मामती है। वे स्वयं उठ पोठ
पुम्ब की दक्षिण पवन के समान
भारत में पहुँचा घँधी। धात्र बम्पा !
बली !"

बम्पा ने उखक हाथ पकड़ सिधे।
किसी धार्मिक मन्के ने एक पल वर
के सिधे शान्तों के धपरों को भिना
दिया। उहमा अन्ध होकर बम्पा
ने कहा—"बुद्धगुण ! मेरे सिधे
सब भूमि मित्री है सब अत
उत्त है सब पवन सीतल है।
कोई बिसेन धार्मिक हृदय में अग्नि
के समान प्रज्वलित नहीं। सब
भिताकर वेरे सिधे एक पुस्य है। प्रिय
नातिक ! तुम स्वयं ही जायो

अन उठ की लजलत आशानुबिनों
की अग्निधरि धीरे बहावी की
पुनोद्वि बक विपुन शानिक की
अग्नि 'हो' और 'जा' वक अग्नि ही
मे अतक उठे है।

बिम्बों का कुछ मोमने के सिधे, घीर मुझे छोड़ दो इध निरीह मोमे-भासे प्राणियों के कुछ भी सहायुद्धि घीर सेवा के सिधे ।”

“तब मैं प्रबन्ध बसा बाळ्या बम्पा । यहाँ रह कर अपने हृदय पर अधिकार रख सकूँगा—इसमें सदिह है । पाह । किम सहरो में मेरा बिनास हो जाय !”—महागायिक के उच्छ्वास में बिकाता थी । फिर उसने पूछा—
“तुम भक्तों यहाँ क्या करोगी ?”

“पहले बिचार पा कि कभी-कभी इसी बीप-स्तम्भ पर ही घासोक जसा-कर अपने पिता की समाधि का इस जल में सम्प्रेषण करूँगी । किन्तु देखनी हूँ मुझे भी इसी में जलना होया जैसे घासोक-बीप ।”

७

एक दिन स्वर्ण रज्जु के प्रभाव में बम्पा ने अपने बीप-स्तम्भ पर से देखा—
सामुद्रिक भावों की एक योगी बम्पा का उपकुल छोड़ कर पश्चिम-उत्तर की घीर महा जल-व्यास के समान संतरण कर रही है । उसकी पाँखों से पाँपू बहने लगे ।

यह किन्तु ही उत्राणियों कहते की गया है । बम्पा घा-बीजक उस बीप स्तम्भ में घासोक जसाठी ही रही । बिनु उछके बाद भी बहुत दिना बीप

भावराज की निष्पत्ति । पारिधिज उत्राज को पूर्णता । बिना की ललाच और बलता हागा' में गिरा के प्रति निष्ठा और प्रबन्ध सिद्धि पूर्णता व्यक्त है । कला की बुद्धि से कलामी रानी स्वत पर उत्राज होनी चाहिए ।

कलामी का वह लक्ष्य अतिरिक्त पूर्णता या पीठक हीमे से निरदेष और निरर्थक है ।

निवासी, उस माया-ममता और स्नेह
सेवा की बेबी की समाधि-सबुस सबकी
रूबा करते थे ।

एक दिन काल के बठोर हाथों ने
उसे भी अपनी संबसता से मिला
दिवा ।

सारांश—इस कहानी में नाटक के मूल तत्वों का पूरा योग है—
सौंदर्य का प्रधान कारण यही है । निम्न निम्न परिच्छेदों के भीतर एक-
एक परिच्छेद की समग्रता खिली मिलती है । प्रत्येक परिच्छेद प्रसवा
कहानी के पंक्तियों की प्रवृत्तियाँ नए-नए प्राकृतिक दृश्यों के भीतर
होती हैं जैसे संवर्णक पर नए पंक्तों के साथ बुद्ध-विज्ञान भी परिवर्तित
हो जाते हैं । संवादात्मक वैदग्ध्य से ही नाटकीय सौंदर्य सिद्ध हुआ है ।
संवादात्मक धारम और संत के कारण स्थिति नाटक की-सी दिखाई
पड़ती है । क्रिया-मैग और प्रदर्शन के बिचार से तो कहानी में नाट्यत्व
पूर्ण है ।

शुद्धि-आत्मक कइलौ

ईदगाह

[प्रेमचंद]

रमजान के पूरे तीस रोजों के बार
 पाब ईद घायी है। कितना मनोहर,
 कितना सुहावना प्रभाव है बुलों पर
 कृष्ण मजीब हरियासी है पैरों में कुछ
 मजीब रीनक है घासमान पर कुछ
 मजीब साहिमा है। पाब का सूर्य
 बेखो कितना प्यारा कितना पीतल
 है, मानो सतार को ईद की बघाई द
 रहा है। गाँव में कितनी हसबल है।
 ईदगाह जाने की तैयारियाँ हो रही
 हैं। कितनी के कुरते में बटन नहीं है।
 पड़ीत के घर से मुई-रामा लेने बोड़ा
 जा रहा है। कितनी के पूते बने हो
 गये हैं उनमें तेल बासने के लिए तेलों
 के घर भामा बाठा है। पत्नी-बन्दी

'ईद आई है' शक्तिर प्रकृति पर
 भाव में जो लभाव रूप से बल्लार
 बरा मिलता है कली के शरीरार
 बर्तन के बहामी का भार्य। इति-
 इत्तामक बहामी होने के बारल
 भार्य विपरभावक। अपने अपने
 दग से ब्यावालइक में ईद के कारण
 विशेष प्रकार की परम-वसत। कितनी
 कितनी तैयारियाँ हैं।

बँनों को खानी-पानी दे दें । ईरियाह
 से लीन्ठे-लीन्ठे दोरहर हो पायवा ।
 तीन कास का वरस रास्ता फिर
 खँदों घासभियों से मिलना भँटना ।
 दोरहर के पहले लीन्ठा घसंभव है ।
 लड़के सबसे ब्यारा प्रसन्न हैं । किन्ती
 ने एक रोका रपा है, वह भी दोरहर
 ठर, किन्ती ने वह भी नहीं खँझिन
 ईरियाह जाने की खुशी उनके हिस्से
 की बीज है । रोजे बड़े-बुढ़ों के लिये
 हाने । इनके लिये तो ईर है । रोज
 ईर का नाम रटते थे । मात्र वह प्रा
 पवी । सब जगही पड़ी है कि मोब
 ईरियाह क्यों नहीं बतते इन्हें गृहस्पी
 की बिठाओं से क्या प्रयोजन ।
 सेवकों के लिए दूध पीर खरकर
 घर में है या नहीं इनकी बत्ता से ये
 तो सेवकों कायदे । वह क्या बामें कि
 कि प्रशासन क्यों बरहमास चौपरी
 कामगमनी के घर दीड़े जा रहे हैं ।
 उन्हें क्या पकर कि चौपरी मात्र
 पायें बरस में तो यह घारी ईर
 मुद्दरम हो जाय । उनकी बपनी जेबों
 में तो कुदरे का बन लप हूमा है ।
 बार-बार जेब से बपना सबाला
 निकालकर दिखते हैं पीर गुण हाकर
 फिर रख भेते हैं । महसूब निजता है
 एक-दो रस-बारह । उसक पाष
 बारह वैसे हैं मोहसिन के पाष एर,
 दो, तीन घाठ भी पगहू वैसे हैं ।

मात्र-मोरता का प्रकन का पाषकी
 में से ही पक को बनाकर है रस-
 लिय बन केम की सुमना का विर
 रख देना भावलक ।

हाथी घननिमती पैलों में घननिमती
 कीजें लापेंने-बिसोने, मिठाइयां,
 बिगुस, नैद और जाने क्या-क्या ।
 और सबसे ज्यादा प्रसन्न है हामिद ।
 वह बार-बार घाम का गरीब-सूरत
 बुबला-मठला मड़का जिहका बाप
 गठ बर्ष हुंजे की भेंट हो गया और
 मां न जाने क्यों पीसी होयी-दूधेयी
 एक दिन मर पयी । किसी को पता
 न गया, क्या बीमारी है । कहती
 भी तो कोन सुनने वाला था । दिन
 पर जो कुछ बीतती थी वह दिस में
 ही छहटी थी और जब न चहा गया
 तो संघार से बिदा हो गयी । जब
 हामिद अपनी झुड़ी वाली झमीना की
 पीठ में छोटा है और बठना ही प्रसन्न
 है । उसके भग्नाजान रुपये कमाले
 गये हैं । बहुत-सी पैसियां सेकर
 धार्येये । धम्मीजान बस्ताह मियां
 के पर से उसके लिए बड़ी छपड़ी
 धम्मी कीजें लाने पयी है इसलिये
 हामिद प्रसन्न है । बापा तो बड़ी
 बीज है और फिर बच्चों की माया ।
 छपड़ी कमना तो पाई का पर्वत बना
 लेती है । हामिद के बांभ में पूठे गहीं
 हैं, छिद पर एक पुछनी-पुछनी टोपी
 है, जिहका पीठ कासा पड़ गया
 है फिर भी वह प्रसन्न है ।
 जब उसके धम्माजान पैसियां और
 धम्मीजान नियापतें, सेकर धार्येयी

हामिद की कहानी का मुताबक
 बनाना है—रसखिर ।

संवत्सरा के प्रतिनिधि जम्ब बाबई
 में और निर्धनता के प्रतिनिधि
 हामिद में जो कलस खंडर है वनकी
 कहानी मुख्य कहानी के भीतर की
 एक बाववाही कहानी है ।

तो वह दिन के परमाणु निकाल
 लेगा। तब देखेगा महमूद मोहसिन
 गुरे धीरे धमी कहीं से उठने जैसे
 निश्चयसे। अभावित धमीना धपती
 कोठरी में बैठी रो रही है। धान ईश
 का दिन धीरे उठके घर में बाना
 नहीं। धान धामिद होता तो क्या
 इसी तरह ईश धाती धीरे धली
 जाती। इस धंधकार धीरे
 निराशा में वह डूबी जा रही है।
 किसने बुलाया था इस निगोड़ी ईद
 को। इस घर में उठका काम नहीं
 है किमि हामिद। उसे किसी के मरने
 बीने से क्या मतलब ? उठके धंधर
 प्रकाश है बाहर धाधा। विपति
 धपना धाध इस-बल लेकर धाध
 हामिद की धानेधमरी धितवन उठका
 धिधंस कर हैपी।

हामिद भीतर आकर धारी से
 कहता है—'तुम डरना नहीं धम्मा
 मैं सबसे पहले धाधेगा। धितकुल न
 डरना।

धामिद की सहरधना को नहीं मे
 सधाया जाने लना ; धुके धरध की
 सधधता धीरे धविधधरीधना धर ही
 ती कधानी के धौरध के धाधरिध
 धरधा है।

धमीना का धिस कपोट रहा है।
 धीरे के धधधे धपने धपने धाप के धाध
 धा रहे हैं। हामिद का धाप धमीना
 के धिधा धीरे कौन है। धधे धधे
 धधेने धधे जाने है। उध धीध-धाध
 में धधना कहीं धो धाध तो क्या हो।
 नहीं धमीना धीरे धधे धीरे न जाने
 हैगी। नहीं-धी धान ! धीन कोध

अलेमा बँटे ! पैर में छप्पे पड़
 जायेंगे । जूते भी तो नहीं हैं । बह
 थोड़ी-थोड़ी दूर पर उसे पाद ले लेगी
 लेकिन यहाँ सेबियाँ कौन पकायेगा ?
 पैसे होते तो मोटते लौंगते सब सामग्री
 जमा करके बटपट बना लेती । यहाँ
 तो घंटों बीबें जमा करते सपेये ।
 भाँसे ही का ता भरासा ठहरा । उस
 दिन पल्लीमन के कपड़े सिये से । घाठ
 घाने पैसे मिसे से । उस मठनी को
 ईमान की तरह बपानी जमी घाठी
 की, इसी ईद के लिए लेकिन कल
 म्बालिन सिर पर सवार हो बपी तो
 क्या करती । हामिद के सिये कुछ
 नहीं है तो वो पैसे का दूब तो चाहिये
 ही । सब तो कुम हो प्राप्ते पैसे बच रहे
 हैं । तीन पैसे हामिद की बैब में पाँच
 समीना के बटुवे में । यही तो बिछात
 है धीर ईद का त्योहार बस्साह ही
 बड़ा पार लगामे । घोबन धीर माइन
 धीर मेहतरानी धीर बुकिहरिन सभी
 तो घायेंगी । सभी को सेबियाँ चाहिये
 धीर बोड़ा फिर्सी की घालों नहीं
 लगता । फिस-फिस से मूँह चुपमेबी ।
 धीर मूँह क्यों चुराये ? सास भर का
 त्योहार है । जिहगी खरियत से रहे
 जगकी सक्दीर भी तो पसी के पाब
 है । बपने की पुरा समामत रहे मे
 दिन भी बट जायेंगे ।

कस्तुरा: बपी को थोड़िका बसाध
 सुकब कथ को रवापना हुँ है
 बपलिय बन्व बालकी से बडब
 रवापिन कर हामिद की बरिबिबडियों
 का बपन बिनब दिवा गया है ।
 बपी त्यर हो जाता है कि सेबब
 बपने बरिबिबडियों की रवापना के बिन
 बाबपन स्थिर कर रहा है । प्रबाप
 को बरिबिबडियों सुधीला बनाने के
 लिए हामिद धीर बपको बापी को
 बबार्चना बर बडीर समरबाबों का
 बिरबब दिवा गया है ।

पाँच से मेसा जाता । घीर बच्चों के साथ हामिद भी जा रहा था । नबी सब-से-सब बीकड़कर धागे निकल जाते । फिर किसी पेड़ के नीचे छोड़े होकर साथ बासों का इंतजार करते । वह भोग क्यों इतना धीरे-धीरे चल रहे हैं । हामिद के पैरों में तो जैसे पर तप मये हैं । वह कभी थक सकता है । घर का काम था पया । छड़क के दोनों धोर धमीरों के बनीये हैं । पनकी चारदीवारी बनी हुई है । पेड़ों में धाम और सीबियाँ लगी हुई हैं । कमी-कमी कोई लकड़ा कंकड़ी उठकर धाम पर गिछाना लगाया है । मामी घंवर से मामी बैठा हुआ निकलता है । लकड़े वहीं से एक फर्सांग पर हैं । धूब हँस रहे हैं । मामी को बैठा उम्बू बनाया है ।

(१७८८ एवं विवर(बसय विम विमान)

बड़ी-बड़ी इमारतें धामे समी । यह धरसत है यह कासेज है यह बसधर है ! इतने बड़े कासेज में कितने लकड़े पड़ते होंगे । सब लकड़े नहीं हैं बी । बड़े-बड़े मारमी हैं धाम । उनकी बड़ी-बड़ी मूर्तें हैं । इतने बड़े दो मये धमी तक पड़ने जाते हैं । न जाने बस तक पड़ेये धोर क्या करेये इतना पड़वर । हामिद के मधरते में दो-तीन बड़े-बड़े लकड़े हैं बिसकृता चीन कीड़ी के रोख मार खाते हैं

लकड़ों की मरत और धामचीन से पधारवा भी बसाइते हुए विवरय वर्तव ।

काम से भी बुरानेवासे । इस जगह
 भा बड़ी तरह के भोग होने क्या ।
 बलबलर में बाहू होता है । मुता है
 यहाँ मुराई की खोपड़ियाँ ब्रीड़ती हैं ।
 धीर बड़े-बड़े ठमाये होते हैं, पर
 किसी को संवर नहीं जाने देते । धीर
 यहाँ धाम को साहब भोग छेताते हैं ।
 बड़े-बड़े धारमी लेसते हैं मूर्खों-दाही
 वाले । धीर में भी लेसती हैं, सच ।
 हमारी धम्मा को बहू बे को क्या नाम
 है, बेट, तो उसे पकड़ ही न सके ।
 मुमाते ही मुकड़ धार्य ।

महमूद ने कहा—“हमारी
 धम्मीजाग का तो हाथ बाँपने लगे
 धम्मा कसम ।”

मोहसिन बोला—“जसो यहाँ
 पाटा पीस बाकती हैं । जरा-सा बेट
 पकड़ लेगी, तो हाथ बाँपने लपेंगे ।
 धीरकों पड़े पानी रोज निजासती हैं ।
 पाँच पड़े तो तेरी भँस पी जाती है ।
 किसी मेम की एक पडा पानी
 भरना पड़े तो भाँखों लसे धीरेरा छा
 जाय ।”

महमूद—“सिद्दिन बीडती तो नहीं,
 लक्षम-नूर तो नहीं छकती ।”

मोहसिन—“हाँ लक्षम-नूर नहीं
 छकती सिद्दिन जस दिन मेरी धाम
 गुप्त गयी बी धीर बीचरी के सेठ में
 जा पडी थी तो धम्मा इतना ठैज
 बीडती टि में जगड़े पा न सका छप ।”

राजको के दरबार संवारी के बदन
 को लबीरजा तुवर को (१) है ।

घामे बसे हसवाइवों की बूकनें
 पुरु हुई । घाम एव सजी हुई थी ।
 इतनी मिठाइयाँ कौन खाता है ?
 देखो न, एक-एक बूकान पर मतों
 होंगी । घुना है, राठ को जिघाठ
 भाकर खरीब से खाते हैं । प्रस्ता
 कहते थे कि घामी राठ को एक
 माइमी हर बूकान पर नाठा है और
 जितना मास बचा होता है, वह
 तुमबा सेता है और छत्रमुख के खय
 वेता है बिलकुल ऐसे ही खयै ।

हामिद की महीन न घामा—
 “देखो खयै जिघाठ को कहाँ से मिल
 जायै ?”

मोहसिन ने कहा—“जिघाठ को
 खयै की क्या कमी ? जिस खजाने में
 काँई बने जायै । मोहों के बरबाजे
 तक उन्हें नहीं रोऊं छकते खताब
 भाव है किच फेर में । हरिे बजाहिदात
 तक उनके पास रहते हैं । जिघाठे घुम
 हो गए उधे टोकरीं खजाहिदात के
 दिये । प्रमी महीं बीठे हैं, वीब गिनद
 में कपकता पहुँच जायै ।”

बनों की बहूँ बिलाम में भरी और
 जिघाठी गरम होती है—इसी को
 सजीवता बहाल करने में मिठाइयें लान
 गया है । वह मशरूफ़े तिरवार भारकर
 माशूम बगडा करि गरबा आउता
 त्रिज और निजोग बहद न हुना ।

हामिद ने फिर पूछा—“जिघाठ
 बहूँ बने-गड़े होते हयै ?”

मोहसिन—“एक-एक घासमान
 के बराबर होता है जी । जमीन पर
 खड़ा हो जाय ली खरका धिर घास

मान से जा सके अगर जाहे तो एक लोटे में कुछ जाम ।”

हामिर—“सोच उन्हें कैसे प्यूस करते होंगे ? कोई मुझे यह संतर बता दे तो एक बिज्र को प्यूस कर दूँ ।”

मोहम्मद—“घर यह तो मैं नहीं जानता, लेकिन चौबरी साहब के कानून में बहुत ही विभाज है । कोई चीज थोड़े जाम, चौबरी साहब जसका पता लगा सके और जोर का नाम भी होंगे । पुमरावी का बहना सब दिन सो गया था । तीन दिन हीरात हुए, नहीं न मिला । तब थक मारकर चौबरी के पास गये । चौबरी ने तुरंत बहा दिया, मन्वेरीलाने में ही और नहीं मिला । विभाज घाबर उन्हें सारे जहाज की खबरें दे जाते हैं ।”

घर जसकी समझ में था गया कि चौबरी के पास क्यों इतना धन है, और क्यों उनका इनाम सम्मान है ।

घाबे बसे । यह पुसिस लाइन है । नहीं सब फानिसिठिबिस कबायद करते हैं । रीतन ! फाय पौ ! राय को धेकारे घुम-घुम कर पदरा देते हैं नहीं तो चोरिया हो जायें । मोहम्मद न प्रति पार किया—“यह फानिसिठिबिस पदरा देते हैं ! तभी घुम बाग जायते हों । घनी हजरत, गरी चोरी करते हैं ।

तीस बोल की बीव का विलास-
विनाय देना है—घोर यह भी राई-
रही था ।

घर के बितने ओर बाबू हैं सब इनसे मिले रहते हैं। रात को तो ये भोग ओरों से तो कहते हैं ओरी करो घोर घाप वृद्धे मुहस्ते में आकर “जापते रहो ! जापते रहो !” पुकारते हैं। जमी इन सोगोरु पास इतने समे घात हैं। मेरे मामू एक बानेम कामिचटिबिल हैं। बीस शय्या महीना पाते हैं लेकिन पचास रुपये भर भेजते हैं। अस्ता कसम मैंने एक बार पूछा था कि “मामू, घाप इतने रुपय कहां से पाते हैं ?” ईस-कर कहने लगे—“बेटा अस्ताह देता है।” फिर घाप ही बोले—“हम लोग बाहें तो एक दिन में लाखों मारभायें। हम तो इतना ही लेते हैं बिचमें अपनी बानामी ग हो घोर मोररी ग जमी जाय।”

हामिद ने पूछा—“यह लोग ओरी करवाते हैं तो कोई इन्हें पकड़वा नहीं ?”

मोहसिन उसकी माशामी पर बया दिखार बोला—“घरे पापल इन्हें बीन पकड़ेगा ? पकड़ने वाले तो यह लोग खुद हैं लेकिन अस्ताह इन्हें सजा भी पूर देता है। हयम का मान हयम में जाता है। मोड़े ही दिन हुए मामू क घर में घाग तब पयी। सारी सेई-दूजी बल पयी। एक बरतन तक

पस्ता कम देड़ के नीचे । फिर न जाने कहीं से एक लो कर्ज साये लो बरतन भाड़े घाये ।”

हामि—“एक लो लो पचास से ज्यादा होते हैं ?”

“कहाँ पचास कहाँ एक लो । पचास एक बीसीभर हुआ है । लो लो दो बीसियों में भी न घाय ।”

यब बस्ती बनी होने लयी थी । ईदवाह जाने वालों की टोमियाँ नजर घाने लयी । एक-से-एक भड़कीले बरतन पहने हुए । कोई दफके-ठमि पर सवार, कोई मोटर पर, सत्री हन में बसे सत्री के दिनों में समय । ग्रामीनों का यह छोटा-सा बस अपनी विपद्यता से बेखबर, सन्तोष और र्थ में मगन बसा जा रहा था । बच्चों के लिये नजर की सयी बीजें घमोसी थीं । बिच बीज की घोर ठाकवे ठाकठ ही रह जाते । और पीछे से बार-बार हान की घाबाज होवे पर भी न चेतते । हामिब लो मोटर के नीचे पावे-भावे बचा ।

बिबलायक लपों को मनुष संघर्षों से बोडते हुए सदितुष की रक्ता को अविचिद्र बनार रखा गया है ।

ग्रामीण बर बर में पाता है लो बीजा परिपूर्ण देपता है ।

लोक हामिब को राठछे के दुई-बर से चलन बदा होवे देखा ।

सहसा ईदवाह नजर आय्या । ऊपर हमली के मन मृग्यों की छाया है । नीचे पक्का कर्ज है जिस पर आशिम बिछा हुआ है । और रोनेपारों की पतियाँ एक से पीछे एक न जाने कहीं तक बढी गयी हैं । पानी जयत के नीचे एक जहाँ आशिम भी नहीं है । मने

मानेवाले पाकर पीछे की कटार में
 खड़ हो जाते हैं। माने बगड़ नहीं है।
 यहाँ कोई धन घोर पब नहीं देखता।
 इस्लाम की निगाह में सब बरतबर हैं।
 इन शायीनों के भी बन्धु किया घोर
 पिछनी पंक्ति में खड़े हो गये। कितना
 सुन्दर संभालन है कितनी सुन्दर
 व्यवस्था। भाकों तिर एक साथ
 सिद्धी में कुछ बात है फिर सब-के
 सब एक साथ खड़े हो जाते हैं, एक
 साथ झुकते हैं घोर एक साथ बूझनों
 के बल बैठ जाते हैं। कई बार यही
 किया होती है, जैसे बिजली की लाकों
 बलिमाँ एक साथ प्रदीप्त हों घोर
 एक साथ कुछ कार्य घोर मही कम
 बलता रहे। कितना सपूर्व दृश्य का
 जितकी सामूहिक क्रियामें बिलार
 घोर समस्तता हृदय को भडा पब घोर
 वात्मानन्द से भर देती थी मानों
 भ्रातृत्व का एक मूख इन समस्त
 धारमामों को एक लड़ी में जितोये
 हुए है।

मनाज पर्य हो गयी है। सोप
 धारम में बसे मिल रहे हैं। तब
 मिटाई घोर पिछनीनों की दूकानों पर
 धावा होता है। शायीनों का यह बल
 इन विषय में बालकों से कम उतराही
 नहीं है। यह बेरो, हिमोला है। एक
 पीछा देकर कुछ कायो १ कनी बाध-
 मान पर बाते हुए मानूम होगे कभी

ईश्वर का विवरणामक-विषय।

ईश्वर के विषय में पाकर जमी तक
 का कथा बला सिद्धि बडा है। अथवा
 परिच्छेद में कथाकी के साम्य पब
 को देखल कीदिका लचारी गई है।
 कथा-विलार की शक्ती पुत्रकत देखल
 प्रतिपुत्र प्रथम कथाविधी में ही मिल
 कबनी है।

बमीन पर गिरते हुए। यह चर्चों है,
सफ़ा के हाथी थोड़े ठंडे छत्रों से
सटके हुए हैं। एक पीसा देकर बैठ
जाओ घोर पक्षीस बकरीयों का मजा
लो। महमूद और मोहम्मिन और नूर
और सम्मी इन थोड़ों घोर छत्रों पर
बैठते हैं। हाथिद दूर पड़ा है। तीन
ही जैसे तो उसके पास हैं अपने कोप
का एक तिहाई बरा सा बककर साने
के समय वह नहीं दे सकता।

बमान करन हो गईं के साथ काल-
बदलान का संकेत देकर मूलक
परिष्कार का आरम्भ। ऐकसिक
नाम से पुनः हाथिद की घोर वृद्धि
भावित हो गई है। कलक शीतक
संभव बहिष्क का पुनः संकेत
देता है।

सब चर्चियों से उतरते हैं। घब
जिसने सेंगे। इधर दूकानों की कठार
सभी हुई है। तरह-तरह के तिलाने
हैं—सिपाही और मुजरिया राजा और
बकीस भिस्ती और पाबिन और
पाबू। बाहू। कितने सुन्दर जिसने
है। सब बीसा ही चाहते हैं। महमूद
सिपाही सिपा है, छाकी बर्षी और साप
पगड़ी बाला कपड़े पर बन्दूक रणे
हुए। मामूम होता है। सभी कबादर
किये बसा भा रहा है। मोहम्मिन से
मिरती पसन्द भाया। कमर मुकी है
है, ऊपर मचक रणे हुए है। मचक का
मुह एक हाथ से पकड़े हुए है। कितना
प्रसन्न है। पायद बोई गीत गा रहा
है। बस मचक से पानी उड़ेसा ही
चाहता है। नूरे की बकीस से प्रेम है।

कैसी बिडला है उसके मुख पर ।
 कामा चुगा नीचे सफ़्त प्रचकन प्रच
 कन के सामने की जेब में बड़ी सुनहरी
 खंजीर, एक हाथ में कानून का पाया
 लिए हुए । मासूम होता है प्रभी
 किसी परदासत से जिरह या बहन
 किये जाने या रहे हैं । यह सब बो-नो
 वैसे के विमोने हैं । हमिद क पास
 कुछ तीन वंस हैं, इनने मँहुने खिलौन
 वह कैम से ? विमोना कही हाथ स
 पूर पड़े तो चुर हो जाय । बरा
 पानी पड़े ता पारा रंग पुन भाय ।
 ऐसे विमोने सेजर क्या कयेया किम
 काम क ?

मौलानि कहता है—'मरा मिस्री
 रोत्र पानी क बायया सान्क सभेरे ।"

महमूद—"घोर मेग सिपाही
 बर का पहरा होगा । काई चोर
 थामेगा ता पीरन बहूक से फेर
 कर दया ।"

तूरे—"घोर मरा बफील बुर
 मुद्रमा राहेगा ।"

गम्मी—"घोर मेगी घोबिन रोत्र
 कपड़े पावगी ।"

हामिद सिलोन की निगदा करता
 है—'मिट्टी ही के तो है पिरें या चकना
 पूर हा पावें सेकिन लसबाई हुई
 धीनों में विमोनों को देय रण है
 घोर बाहारा है कि परा देर क सिय

काम लकड़ों की लताइसर्बंद मरीद
 बारी घोर बाल-मुलम कदा-त ही के
 भाव का जो लिपुन निगदा दिवा
 गया है वह बेवच हमिद को काक-
 खिक निगदि को बमाव देने के मनि-
 भाव मे दे ।

उम्हें ह्राप में ले सकता । उसके ह्राप बनायास ही सपकते हैं लेकिन सड़के इतने ख्यापी नहीं होते । विद्येपकर जब घसी गया थीक है । हामिब मसबता रह जाता है ।

हामिब की उत विनम रिक्ति के भयानकमन कड़ीर पर बगार्न विन-रागा को पूर्वतया मुकरित कर दिया है । किन्तों को निन्दा करता है वसमें को हावय मसबतालीकय है वरो हामिब की रोद है ।

घिसीने क बाद मिठाइयाँ घाटी हैं । किछी ने रेबड़ियाँ सी है किछी ने पुसाबजापुन किछी ने सोहन हसबा । मजे से खा रहे हैं । हामिब बिरादरा से पूपक है । घमान क पास तीन वैसे हैं । क्यों नहीं कुछ सकर खाता ? साराखापी घाँघों से सब की घोर देखता है ।

मोहसिन कहता है—“हामिब रेबड़ी से जा कितनी पुसाबुदार है ।”

हामिब को सम्येह हुषा यह केबल कूर विनोद है मोहसिन इतना धवार नहीं है लेकिन यह जानकर भी यह उसके पास जाता है । मोहसिन होने से एक रेबड़ी निकालकर हामिब की धार बढाता है । हामिब हाब ऊँचाता है । मोहसिन रेबड़ी अपने मुँह में रख लेता है । महमुद नूरे घोर शम्मी मुख हामियाँ धजा-बजा कर हँसते हैं । हामिब विठिया जाता है ।

वास-नृत्त का बगार्न विनय ।

मोहसिन—“महदा मसरी जकरा रेई हामिब घसला कसम स जा ।”

हामिद—“रखे रहो । क्या मेरे पास वैसे नहीं हैं ?”

सम्मी—“तीन ही ता वैसे हैं । तीन पैस में क्या-क्या लोभे ?”

महमूद—“हमस गुमाबजागुन ता बाघो हामिद । मोहसिन बर माघ है ।”

हामिद—“मिठाई कौन बड़ा निमत है । मिठाई में दमकी कितनी दुपारियाँ लिखी हैं ।”

मोहसिन—“लेकिन दिल में कह रहे होये कि मिसे लो खा लें । अपने पैसे क्यों नहीं निकालते ।”

महमूद—“हम धमकते हैं इसकी आकाशी । अब हमारे सारे पैस धर्ब हो जायेंगे जो हमें सलबा-सलबाकर जायगा ।”

मिठाइयों के बाहर कुछ दूकानें सोहे की पीजों की कुछ मिसेट पीर कुछ नकली पहनों की । लड़कों के सिव बहाँ कोई आकर्षण न था । वह सब धामे बड़ जाते हैं । हामिद जाड़े की दूबान पर रुक जाता है । कई बिल्ले रते हुए थे । उधे उपास धाया दाबी के पास बिमटा नहीं है । तब से रोटियाँ उठारती हैं तो हाथ बस जाता है धयर वह बिमटा से बाकर दाबी वा दे के तो वह कितनी प्रसन्न

बनना बचाकर हामिद के प्रति शेषक के मरिदमहीलता को धूरुतवा जदुब कर दिया है और अब मास'भक बाब की ओर धम्मुस होता है । जूँदे से बचने में दाबी के प्रति इतनी बरी येनना को जगाबा या रहा है जो लायाम्ब नहीं बरी का लकड़ी । बिलेपबर बही विरीम्य आदर्षक का कारण बनता है ।

होंगी ! फिर हमकी उम्मीदों का ही
 न बर्सेगी । घर में एक काम की
 चीज हो जायगी । जिससे वे क्या
 फायदा । स्पर्ध में पीछे धराब होते
 हैं । जरा धेर ही तो लुधी होती है ।
 फिर तो बिलौने का कोई मौक़ उठ
 कर नहीं देखता । या तो घर पहुँचते
 पहुँचते दूट-भूट धराबर हो जायेंगे ।
 बिमटा कितने काम की चीज है ।
 रोटियाँ लबे से धतार लो चुम्बे में
 सेंक लो । कोई घाय भौंने घाय लो
 बटपट चुम्बे से घाग निकामकर सेंके
 ले लो । घम्माँ बेचारी को कहीं फुर
 उठ है कि बाजार घायें धोर इतने
 पीछे ही कहीं भिजते हैं । रोज हाथ
 बसा सेठी हैं । हाथिन के साथी घामे
 बड़ मये हैं । ताबीस पर सब-के सब
 शकल पी रहे हैं । देखो सय कितने
 सामची हैं ! इतनी मिठाइयाँ ली मुम्भ
 किसी ने एक भी न ली । उसपर कहते
 हैं मेरे साथ येसो । मेरा यह काम
 करी । घब घबर किसी ने कोई काम
 करने को कहा तो पुर्रुपा । जायेंमिठा
 इमी घाय मुंह खड़ेया पौड़-कुँवियाँ
 निकसेयी घाय ही पबान बटोरी हो
 जायगी सब घर स पीछे चुपयेंगे धोर
 मार घायेंगे । किठाब में भूडी बातें याड़े
 ही सिखी हैं । मेरी बबान क्यों धराब
 होयी । घम्माँ बिमटा इतते ही पीड़
 कर मरे हाथ छे स मेंनी धोर बहेंगी-

यह प्रपञ्च काही के मयमय कोर
 परम बरबर्न को लखोय बबाने में
 पूरा योग दे रहा है । बाबब हाथिन
 के प्रति रहे कोउल से सवेरमहीलवा
 बयई बई है । बसका हीन विबईउ
 क्लिब माए शपमहा कोर भाग्य
 रिब गहरा मन्वीय रन रकन बर
 लम लम लो-बर्ब बरब बर
 रहा है ।

अप्य का रहीं को विबति मे बरबी
 बबबन का मारलम्य निकाम्य बरबे
 काया बड बालक दिनमा गरीमाबब
 बब बडा है—बरबे निबब बरबबरी
 कोर विबेव के कारण । इमी बारी
 निब विबिबता कोर लम लम म इया
 को बालोकिन बरबे क निब लमबे
 पूई के लारे बरबे-बिरलन बरबबब
 डुर है ।

जेठ बच्चा घग्गा के त्रिये चिमटा
 सत्ता है । हजारों दुपारें बंदी । फिर
 बड़ों की धोरतों को दिखावेंगी ।
 धारे बाँध में बरबा होने मनेयी
 हामिर बिपना साबा है । कितना
 धरम सङ्गम है । इन लोगों के
 त्रिलोने कर कीन हूँ दुपारें बन्दा ।
 बड़ों की दुपारें सीधे घग्गाह क दर
 बार बं पडुवन है धोर सुग्ल सुनी
 बाटी है । मेने पास पैस नहीं है ।
 लबी ठा माहूधित धीर महमूद को
 मिजाब दिखाते हैं । मैं भी इनसे
 मिजाब दिखाऊँगा । घेमें जिसीने
 धीर धार्य मित्रहर्ता । मैं नहीं घेतता
 जिसीने किसी का मिजाब क्यों सही ।
 मैं बटीब सही किसी से कुछ माँपने
 को नहीं जाता । बाधिर घग्गाजान
 कयी-न-कयी पावने । घग्गा भी
 घग्गाही ही । फिर इन लोगों से
 पूरुबा कितने त्रिलोने घेने ? एक-
 एक को टाकगिबी जिसीने हूँ धीर
 त्रिया हूँ कि बोरठा के साथ इस तरह
 क्यूँ बिपा जाता है । यह नहीं कि
 एक वैसे को बेकियी सी तो बिबा
 बिबलकर घग्गा बने । नव के कव गूब
 हूँने कि हामिर के चिमटा गिया है ।
 हूँने । मदी बसा से । जलने बुरानदार
 के घग्गा- यह बिपना कितने का है ?

भाटासटी बसिल्लता धीर बिबेकमूलक
 बिबन के आधरिक संघोर मिमित है ।

बुरानदार के जतकी धीर रूपा
 धीर नोई धारपी साथ न देलकर

कहा—“बह तुम्हारे काम का नहीं है जी।”

“बिकाऊ है कि नहीं ?”

“बिकाऊ क्यों नहीं है। घोर यहाँ क्यों साद साथे है ?”

“तो बराब क्यों नहीं, कौ पीसे का है ?”

“उँ पीस सगेवे।”

हामिद का दिम बैठ गया।

“ठीक-ठाक बठाओ।”

“ठीक-ठीक पाँच पीसे सगेवे, सेना ही सो नहीं बसते बनी।”

हामिद ने कसेबा मजबूत करके कहा—“ठीक पीसे सोये ?”

यह कहता हुआ वह घासे बढ़ गया कि बुकानदार की बुद्धियाँ न मुने। लेकिन बुकानदार ने बुद्धियाँ नहीं दीं। बुकानदार बिमटा दे दिया। हामिद ने उम इस तरह कंधे पर रखा, माना लग्गुन है घोर घान ऐ प्रकृता जमा मंगियों क पास थाया। जय मुने सब के सब क्या-क्या भासोबनाएँ करतें हैं।

मोहसिन ने हँसकर कहा—“यह बिमटा क्यों लाया पससे। इसे क्या करेगा ?”

हामिद ने बिमटे को अपनी पर पटक कर कहा—“जरा घपना मिनी

बमीन पर गिरा दो । सारी पहनियाँ
पूर पूर हो जायें बचा की ।”

महमूद बोला—“तो यह बिमटा
कोई खिलौना है ।”

हामिद—“खिलौना क्यों नहीं
है ? यमी कन्ने पर रखा बन्दूक हो
गयी । हाथ में से सिमा पकड़ीरों का
बिमटा हो गया । चाहूँ तो इससे
मजीरे का काम से सकता हूँ । एक
बिमटा जमा दूँ तो तुम लोगों के सारे
खिलौनों की बात निकल जाय ।
तुम्हारे खिलौने फिटना ही और
जवायें मेरे बिमटे का बास भी बीका
नहीं कर सकते । मेरा बहादुर खेर
है—बिमटा ।”

आंतरिक संतोष से प्रेरित महिलाओं
का निराधारमक बन्धन और
वैरगन्धर्व काद-विचार का स्वरूप ।

समी ने खँजरी भी ली । प्रसन्न-
चित्त होकर बोला—“मेरी खँजरी से
बहसोने ? दो घामे की है ।”

हामिद ने खँजरी की ओर उल्टा
से देखा—“मेरा बिमटा चाहे तो
तुम्हारी खँजरी का पेट फाड़ जाये ।
बस एक जमड़े की जिहसी लमा दी
इब इव बोलने लयी । जरा-सा पानी
मम जाय तो खतम हो जाय । मेरा
बहादुर बिमटा घाग में पानी में
घाँधी में सुप्यन में बराबर बटा राड़ा
रहेगा ।”

आवहारिक लक्ष्मीलता ।

बिमटे ने भी अभी को मोहित
कर सिमा मयिन घब वीछे बिसके
पास परे है । फिर मेले से दूर निजल

माये हैं नी कय के बज यदे, पूय तेज हो रही है । पर बहूँबने की कस्वी हो रही है । बाप उ बिर भी करें तो बिमग नहीं भिस सकना । हामिद है बड़ा काफ़ाक । इसीलिये बरपाय के अपने वैसे बचा रये थे ।

धन बाताकों क दो दल हो गये हैं । मोहसिन महमूद सम्मी धीर नूरे एक तरफ है, हामिद बकैसा दूसरी तरफ । घातबाय हो रहा है । सम्मी तो बिधर्मी हो गया । दूसरे पद्य से आ मिला सेकिस मोहसिन महमूद धीर नूरे भी हामिद से एक-एक बो-बो मान बड़े होमे पर भी हामिद के पायाओं से प्रतिक्रिय हो पठ है । उरक पास म्याय का पन है धीर नीति की शक्ति । एक धार मिट्टी है, दूसरी ओर मोटा जो इस बल अपने का फोणार कह रहा है । बहु अनेक है पाठक है । धरर कोई घेर आ जाय हा मियां भिन्नी के उरक पूर जार्य मियां गिपाहो मिट्टी की मरूक छोड़कर भावे पहील माहद की नाता मर जाय खुले में मुँह छिनामर जमीन पर सट जावे । मदर यह विमरत यह बहादुर यह रनामे-द्विश तपक कर घेर की गरदन पर उमार हो जायगा धीर उनकी पाँवें निरान सपा ।

यहाँ के तर्क-विचार में अनेक दृश्यों का आशय है ।

हामिद ने घाखिरी ओर सगाकर कहा—“मिस्ती को एक गिटि बठायेवा तो दीड़ा हुमा पानी राकर उसक द्वार पर छिड़कले सोजेता ।”

मोहयित्त पउस्त हो गया पर महमूदन कुमक पहुँचाई—“मपर बच्चा पकड़ जाई तो मदानत में लँबे-लँबे फिरेंगे । तब तो बनेम माहक के ही पैरों पड़ेंगे ।”

हामिद इत प्रचलन तर्क का जबाब न दे सका । उनग पूछ्य—“हमें पकड़मे कौन घायेमा ?”

तूरे ने पकड़ कर कहा—“मह मिपाही बम्बूकबासा ।”

हामिद न मुँह चिड़ाकर कहा—“मह बेचारे हम बहापुर रस्तमे हिन्द को पकड़ेंगे । मच्छा लामो मभी जरा कुस्वी हा बाम । इसकी मूरत देतकर दूर से भावेंगे । पकड़ेंग क्या बेचारे ।”

मोहयित्त का एक ममी जोर सूझ गयी—“तुम्हारे निमटे का मुँह रोज घाम में जसमा ।”

उसमे समझ या कि हामिद भावभाव हो जायता लेकिन यह बात न हुई । हामिद ने तुरन्त जबाब दिया—“माप में बहापुर ही कूरते हैं जनाम । तुम्हारे यह बड़ीत छिपाह घोर भिरगी सिधियों की तरह घर में

निदरगता म करे इन एवम से ये संवाद एवम में बड़ सरल थीर व्यापहारिक होते हुए भी मात्रा में विस्तारगामी हो गए हैं । ऐसे ही शब्दों के काण्ड बहाबी को कबाब बहुत बड़ गर्द है । बात की निररक विस्तार देकर बहाबी को बनावना—मेमकन्द में न मग्य शेष की बात है ।

घुस जायेंगे । पाग में कूटना बड़ काम है, जो यह बस्तमे-हिन्द ही कर सकता है ।”

महमूद ने एक जोर मपाया—
 “बकील साहब कुरगी-मज पर बैठेने तुम्हारा बिमटा तो बाबरबीलाने में जमीन पर पड़ा रहेगा ।”

इस तर्क में शम्मी घोर तूरे को भी सजीब कर दिया । किन्तु ठिकाने की बात कही है पढ़ते ने । बिमटा बाबरबीलाने में पड़े रहन क सिबा घीर क्या कर सकता है ।

हामिद को कोई फड़कना हुआ जबाब में मूम्ह तो उठने बाँवली मुक की—“बिमटा बाबरबीलाने में नहीं रहेगा । बकील साहब कुरगी पर बैठेने तो बाबर उन्हें जमीन पर पटक देया और उनका कामून उनके पेट में बाल देगा ।”

बात कुछ बनी नहीं । तासी गामी-जमीन थी सिरिन कामून को पेट में बालन बासी बाउ छा मयो । ऐसी छा गयी कि तीनों गूरमा मुंह ताकते रहे मये मामो कोई येनपा कंकोपा किली मथे बासे कंकोए को बाउ मया हा । बानून मुंह ग बाहर मिनरने पासी बीज है । उसयो पैर के दगदर टाग रिया पागा येगुकी-सी बाउ हाने पर भी कुछ मया पन रघयी है । हामिद ने मेरान

मार लिया। उसका चिमटा रस्ते में
 हिन्द है। अब इसमें मोहसिन महमूद
 मूरे सम्मी किसी को भी धारण नहीं
 हो सकती।

बिजेठा को हारनेवालों के जो
 सरकार भित्तना स्वाभाविक है वह
 हामिद को भी मिला। धीरे-धीरे न हीम
 हीन बार-बार आने जैसे सब क्रिये
 पर कोई काम की बीज न ले सके।
 हामिद ने हीम जैसे में रंग जमा
 लिया। सब ही तो है, सिधौनों का
 क्या नपेसा? दूट-फूट जायेंगे।
 हामिद का चिमटा तो बना रहेगा
 बरसों।

एम्बि की छठे तम होने लगी।
 मोहसिन ने कहा—“अब अपना
 चिमटा तो हम भी देखें। तुम हवारा
 भिखारी सैकर देखो।”

महमूद घोर मूरे ने भी अपने
 अपने किमीने देव किये।

हामिद को उन राजों को धारण
 में कोई धारण नहीं थी। चिमटा
 बारी-बारी से सब के हाथ में गया
 घोर उनक मिलीन बारी-बारी से
 हामिद के हाथ में गया। कितने पुरु
 मूरे गिनाते हैं।

हामिद ने हारनेवालों के धामु
 बोले—“मैं तुम्हें चिमटा रहा था
 सब। यह लोहे का चिमटा भला
 इन सिधौनों की बना बचपरी करेगा

इसने दिलारगामी बार विवाद के
 करण रस्ते में हिन्द चिमटे में धारण
 मार लिया। दि लक्षण सब बार मार
 बनार पूर्व-रवापिन नाम बन्दों की
 किरण मार है। इनके लघु विस्तार
 से ही काम चल सकता था। ऐसे
 एम्बि का विस्तार-म्यार की बराबर
 नहीं पैदा करना—अबका दुर्लभ
 बारक बुराल कुरिहार की इजिप्त
 को सजक बनाने की समझा है।

मासूम होता है, सब बोल सब बोले ।”

लेकिन मोहम्मिन की पार्टी को इस विनाशे से सन्तोष नहीं हुआ । बिमटे का सिखाया भूख बैठ गया है । बिपका हुआ टिकट सब पानी से नती घूटा रहा है ।

मोहम्मिन—“फैजिन इन सिपायों के लिये कोई हमें क्या तो न देना ?”

महमूद—“क्या को लिये फिरत हो उससे मार न पड़े । धम्मा बकर कहेगी कि येस से यही मिट्टी के बिसीने तुम्हें लिये ?”

हामिन को स्वीकार करना पड़ा कि सिपायों को देखकर मिट्टी की भाँ इसकी पुछ न होनी बिगनी दाया बिमटे की दण्डकर होंगी । तीन पीछों ही में तो पहले सब कुछ करना था, और इन पीछों के इस उपयोग पर पटनाके की बिमकुम बकरत न थी । फिर सब तो बिमटा रस्तम-हिन्द है और सभी सिपायों का बादशाह ।

रास्ते में महमूद की भूख लगी । उसके बाप से केसे गाने को िन । महमूद ने बैबरा हामिन को गाना बतया । उसके समय मित्र मुँह टानते रहे गये । यह उस बिमटे का प्रभाव था ।

बिमटे के प्रभाव में बर्षा तक का बकाबाग बरिष्ठ हो गया है । रात्र तक लज पर पहुँच चुकी है इसलिए बर न बरिष्ठ और परिप्रेर की समझि ।

३

मारहू वजे सारे गाँव में हस्तबल मच गयी। मेसेबास घा मए। मोह सिन की छोटी बहन न बौड़कर मिच्छी उसके हाथ से छीन लिया और मारे सुधी क जो उछनी तो मियाँ मिस्ती नीचे घा रहे और सुरजोक सिधारे। इस पर भाई-बहन में मार पीट हुई। दोनों लूब रोये। उनकी धम्मा यह बोर मुनकर बिगड़ी और दोनों को ऊपर से बो-बो बदि और मयामे।

मियाँ नूरे के बकीस का घरत उनके प्रतिष्ठानुपूल हमसे ब्यादा पोरबमय हुआ। बकीस जमीन पर या टाक पर तो नहीं बैठ सकता। उसकी मर्यादा का बिचार तो करता ही होगा। बीबार में दो छूटियाँ बाड़ी गयी। उन पर लकड़ी का एक पटला रखा गया। पटले पर कामज का कार्त्तान बिछाया गया। बकीस साहब राजा राज की मति सिद्धसन पर बिपये। नूर ने उन्हें पचा भजना पुरु किया। बदालतों में उस की टटियाँ और बिजली के पये रहते हैं। क्या महाँ मारुमी पंखा की स हो। कानून की बर्षा दिमाग पर बड़ आयमी कि नहीं। बाँव का पछा माया और नूरे हवा करने लये। भासूम नहीं, पंथे की हवा से पा बये

बाज एव दरिबिठि मिच्छा की खपना देते हुए बप दरिप्येर का मारण्य।

कलमे दिन्द की मारता को खापित करने के लिए कम्ब प्रतिबन्धियों को समाप्त कर दिया गया।

बात बदले में लेखक का व्यक्तिगत आधार कम बकना है—एसे बर्षे मायना बादिह।

की चोट से बकीस साहब स्वर्ग-लोक
 स मृत्युलोक में धा रहे और उनका
 माटी का बोसा माटी में मिल गया ।
 फिर बड़े जोर-शोर स मातम हुआ
 और बकीस साहब की शस्त्रि बुर पर
 डारा बी गयी ।

यस रहा महमूर का सिपाही ।
 उसे बटपट गाँव का पहुँच देने का
 कार्य मिल गया मेकन पुसिस का
 सिपाही साधारण व्यक्ति तो नहीं जो
 अपने पैरों चले । वह पालकी पर
 चलेगा । एक टोफरी घामी उमम
 कुछ साम रंग के फटे-पुराने बिचड़े
 बिछाने पर जिसमें सिपाही साहब
 धाराम स सेटें । गुर ने यह टोफरी
 उठवाई और अपने द्वार का बन्दर
 समाने सगे । उनके दोनों छोटे भाई
 सिपाही की तरफ से 'छोनेपान आगते
 सही पुकारते चमठे हैं । मगर राठ
 तो चचेरी होनी चाहिए महमूर को
 टोफर सव जानी है । टोफरी उसके
 हाथ स छूटकर मिर पड़ती है और
 मियाँ सिपाही अपनी बन्सूक लिए
 जमीन पर धा जाठ हैं और जारी
 एक टाँग में बिकार धा जाता है ।
 महमूर को धाज साठ हुआ कि वह
 अचछा टाबटर है । उसको ऐसा मर
 हुम मिल गया है जिससे वह टूटी
 टाँग को धामन धानन जोड़ सकता
 है । केवल शूर का रूप चाहिए ।

मास को उपराने और निचरी मास
 को बनावे में जये पालकों की महुलियों
 का बहुत निवच ही रा है ।

र का पूरा घाटा है। टाँग बाँड़
 जाती है। लेकिन सिपाही को ज्यों
 का कड़ा किया जाता है, टाँग बचाव
 देती है। सत्य-क्रिया असफल हुई,
 तब उसकी दूसरी टाँग भी तोड़ दी
 जाती है। जब कम-से कम एक पयह
 पाराम से बैठ तो सकता है। एक
 टाँग से तो म बस सकता था न
 बैठ सकता था। जब वह सिपाही
 संभ्रामी हो गया है। अपनी जगह
 पर बैठा-बैठा पहरा देता है। कमी
 कमी देखता भी बस जाता है। उसके
 चिर का भासरदार साधर सुरब दिया
 गया है। जब उसका चिउता लपलप
 बाहो कर सकते हा। कमी-कमी
 तो उमम बाट का काम भी भिया
 जाता है।

जब मियाँ हामिर का हास
 मुनिए। घमीना चरकी घाबाब
 मुनते ही दोड़ी घोर गोद में उठाकर
 प्यार करने लगी। सहसा उसके हास
 में बिमला देखकर वह चौकी।

“यह बिमला कहाँ का ?”

“मैंने मोस लिया है।”

“कैसे वैसे में ?”

“जिन वैसे दिये।”

घमीना न छाती पीट सी। यह
 कंगाल बैसमभ सङ्गा है कि बापहर
 हमा दुप घाया न विवा, साया क्या

चिमटा । सारे मेले में तुझे घोर
कोई बीज न मिली जो वह सोहे का
चिमटा छटा सामा ?

हामिद ने प्रपटाधी माब से कहा— प्रपटाधी की चिमटा ?
“तुम्हारा उँगलियाँ तक से बना जाती
की इखलिये मैंने इसे लिया ।”

बुद्धिमा का क्रोध पुरस्त स्नेह म
बदल गया घोर स्नेह भी बहु मही
जो प्रयत्न होता है घोर अपनी सारी
कसक सख्तों में बिछोर देता है । यह
भूक स्नेह का पूर ठोस घोर स्वाद
से भरा हुआ । बच्चे में कितना त्याग
कितना तद्भाव घोर कितना बिबेक
है । दूसरों को खिलाना सेते घोर
मिठाई खाते देखकर इतना मन
कितना समझाया होया । इतना भय
दससे हुआ कैसे ! वहाँ भी रोने अपनी
बुद्धिमा दादी की याद बनी रही ।
अमीना का मन गदगद हो गया ।

घोर सब एक बड़ी बिबिध बात
हुई । हामिद के इस चिमटे से भी
बिबिध । बच्चे हामिद ने बूझे हामिद
का पाठ लेता था । बुद्धिमा अमीना
बाबिका अमीना बन गयी । वह रोने
बनी । दामन फँसाकर हामिद को
हुआर्य देनी जाती थी घोर घाँसु की
बड़ी-बड़ी बूँद गिराती जाती थी ।
हामिद इसका रहस्य क्या समझता!

पूजाहुँव । बार बार जाये बच्चे
बिबिध की बहाँ पर समझति । प्रपटाधी-
चिमटा को सिद्ध है प्रपटाधी
काय से बहानी समझ हो मरती
की—उँदिका की बुँदनी पीपी से
बाँसु का बार बार बनी । हामिद को
बदली जाती से बिबिध पर
देर गई ।

परिशिष्ट

(ष)

संक्षिप्त-समीक्षा

पुरस्कार

[जयशंकर प्रसाद]

इस कहानी की ही बिरोपताएँ स्पष्ट दिखाई पड़ती हैं। विषय एवं प्रसंग की स्वायत्ता और बिचल करन के पूर्व उनकी प्रकृति के धनुस्वरूप वातावरण सम्बन्धी सारी साक्ष-मञ्जा एकत्र कर देना—ऐसी बिरोपता है जो प्रसाद की कहानियों में सबन पाई जाती है। अपनी कृतियों में समीक्षता विरोध के लिए वे इस पक्ष को बड़ी उत्प्रेरणा से उपस्थित करते हैं। भारतीय जीवन के अनीत सीदय का सूक्ष्म बिचरण 'प्रसाद' को प्राप्त था इसलिये उसकी अत्यन्त समर्थ मिलती है। दूसरी बिरोपता कहानी के मूलभाष में बिद्या पड़ती है। हा बिरोधी कृतियों के अन्तर्-संपन्न का कीयनगुण अंशम करने में प्रसाद को बड़ी एकमतता मिली है। 'आकाश-दीप' और 'पुरस्कार' दोनों में मूलभाव प्रायः एक-सा है—मसे ही परिस्थिति तथा वातावरण में प्रकट हो ! इन कहानियों में दो बिदिष्ट प्रकार के ममत्वों का संघर्ष बिबित है—प्रिय धनुस्वरूप और कुत्त की मर्मांस का संरक्षण उठोर बिपमता के अघरांत दोनों का क्रिया पथ और मार्मकस्वगुण पयबसान ही सीगर्भ का कारण बन जाता है।

सुजान भगत

[प्रेमचन्द]

मुँगी प्रेमचन्द के महत्त्व और उनकी समस्त कृतियों का बिसे पूरा परिचय प्राप्त हो उनके लिये यह सराताता से संभव नहीं हो

सकता कि वह विषय कर दे कि उसकी कोन-कीन-सा कहानियाँ सबमण्ड हैं। कुछ लोगों ने इसका प्रयास किया है। पर सफलता बिटनी भिन्न थी है इसका निर्णय विशेषज्ञ ही कर सकता है। उनकी लिखी प्रायः पाँच-छो कहानियाँ हैं। विषय और पद्य के आधार पर इनका समुचित बर्णिकरण मात्र ठक नहीं हो सके—धीरे यह बात ही नितांत आवश्यक। सामान्यतः यह कहा जा सकता है कि विषय प्रसार की दृष्टि से मात्र ठक हिन्दी में इतना किसी ने नहीं लिखा। उनकी कहानियों में विषय की विविधता को देखकर धारण्य होता है। जीवन और पश्य से सम्बन्ध रखनेवाले विचार और परिस्थिति की कोई मार्मिक बात न बनी होगी जिस पर उनकी लेखनी न बनी हो।

स्थिति इतनी बहन होने पर भी यदि उनके विषयों का आधारभूत अध्ययन किया जाय तो एक बात तो साफ बिछाई पड़ेगी। प्रामाणिकी रूपकबर्ण के अध्ययन, विषय और उत्पादन में प्रेमबन्ध की का अधिक समय और धन लगा था। समाज के इस क्षेत्र के तो वे अपने प्रतिनिधि थे। रूपक के व्यक्तित्व कीदुम्बिक सामाजिक और सामूहिक स्वरूप की अभिव्यक्ति उनके जीवन का प्रधान काम था। उनकी धारणा थी कि इस क्षेत्र जगत का साक्षात्कार धारण्य रूप ही। यही कारण है कि उपन्यासों से लेकर कहानियाँ तक एकतरफ और एकचित्त होकर उन्होंने प्राम-रूपक के जीवन की विवृति करने लखण रूप में उपस्थित की थी। प्रस्तुत कहानी में इसी विवृति का एक रूप है।

बचारे रूपक की स्थिति करने कुटुम्ब में इतनी दुर्बल होती है कि जब ठक निरन्तर मरटा-सपटा सीमा वीरा करता रहे तब तक तो राजपद होने नहीं तो पत्नी-पुत्र तक उनकी धरमानना करने समर्थ है। 'सुमान जगत' में यही धनुषध किया। 'बही' उपाहार, जो कले को भी नहीं बाट सकनी मात्र पर पढ़कर सीढ़े का बाट देती है। मानव-जीवन में मात्र बह मनुष्य की पानु है। जिसमें मात्र है बह

बूझा भी हो तो बचान है। यही उसकी धनुभूतियों का मर्म और कहानी का प्रतिपाद्य विषय है। साथ में सामान्य हृदय-कुटम्ब की एक साधारण बटना है और उसकी घपनी कुछ परिस्थितियाँ हैं। कहानी में सुजान भगत का चरित्र स्पृहणीय बनाया गया है।

अनुषंग

[सुरुवात]

हिन्दी के कहानी लेखकों में भी सुखन भी बड़े ही यत्नी हैं। नैतिक और पारिवारिक जीवन की सहज और सामान्य धनुभूतियों के मार्मिक विषय में इनकी विशेष पटुता दिखाई पड़ती है। साथ ही भाषा-विषयक सफाई और कथानक सम्बन्धी धनुता भी इनमें प्रकटी मिलती है। सामाजिक समस्याओं का समाधान हमारे जीवन में किस प्रकार सरलता से ढाला जा सकता है इसका व्यावहारिक उक्ति इनकी विभिन्न कहानियों में सफरता के साथ दिया गया है। इस प्रकार इन्हें हम सुधारक रूप में भी से सकते हैं, इस सुधार-भाव में कला का प्रावण कसालक ढंग से वर्तमान रहता है।

'अनन्य' में दो साधु बूतियों का अन्ध सचप दिखाया गया है। दाता और दासक अचका कर्म देने और सेनेबासे की कोमलता और कलम्बनिष्ठा का व्यावहारिक संतुलन दिया गया है। वे छात्रीय में कर्म धरा करने की धर्मभूमक धार्मिकता और तत्परता दिखाई पई है। सासा सदानन्द में ममत्वपूज करभायीलता का अन्ध स्फुरण विवित हुआ है। तुमवीशस के चारक और मेप की भाँति दोनों धने-अपने पय के मोरवृज निरई में सये दिखाई पड़ते हैं। चारिभ्योद्वादन हो कहानी का मूल विषय है। इसमें इतिवृत्त का सीपायन हो है ही साथ ही वे प्रकार की मनावृत्तियों का तारतम्य भी सुन्दरतापूर्वक निकपित किया गया है।

अशिक्षित का हृदय

[विश्वम्भरबाय शर्मा 'कौटिक']

प्रस्तुत कहानी में ग्राम-जीवन का एक सामान्य दृश्य है। इसमें इतिवृत्त समपत्ति से साधना जमा है। किसी विधेय उतार-चढ़ाव का घबहरा नहीं घाया है—न कथानक में घोर न चरित्र में। ठाकुर शिवदाससिंह नीम के पेड़ को कटवाने के लिए उद्यत हैं घोर बुढ़ा मनोहरसिंह इतनिरुचम है कि जान बली बायपी पर वह बुढ़ा उसके बड़े भाई के समान है। इसीलिए कट नहीं सकता। कहानी का प्रतिपाद्य है—जब बुढ़े शैलिक के हृदय की सरल घोर भावुक बुढ़ता। अपने ऊपर ठाकुर साहब के पापने को स्वीकार करने में उसे रचनात्मक हिचक नहीं है। विषय होकर वह इस बात को भी स्वीकार कर लेता है कि जब नीम के पेड़ पर ठाकुर का ही अधिकार हो पाय पर वह बुढ़ा काटा नहीं जा सकता। उसके साथ जो साहचर्यजनित भावनाएँ सिपरी है वे ही उसके हृदय की बुढ़ता को निरंतर जगाती हैं। ठाकुर की बाध-मुक्त कामजता घोर त्याग की सुन्दरता ने कहानी में प्रायः काम दिया है।

'कौटिक' की की कहानियों में सामान्यतः हृदय की कोमल घोर सरल बुलियों की विभूति का उद्घाटन होता है। कौटुम्बिक घोर व्यक्तिगत जीवन के विषय में वे विधेय पद हैं। पुराने कहानी-लेखकों में उनका स्थान महत्वपूर्ण है। भाषा की व्यावहारिकता घोर स्वच्छता के कारण भी उनकी रचनाओं का हीर्ष्य बढ़ गया है।

कानों में कंगना

[राजा राधिकाशरण प्रसाद सिंह]

हिन्दी की कहानी रचना में राजा गान्ध की इन इति का ऐतिहासिक महत्व है। इसका निर्माण उम्र काग में हुआ था जब हिन्दी में कहानी-रचना का स्वरूप संवर्धित हो रहा था घोर इस विषय के लिखनेवाले देने-दिने थे। ऐसे समय में ऐसी प्रौढ़ गृष्टि

देखकर हिन्दी जगत् प्रसन्न हो उठा था और 'प्रसाद' की क समाज कर्माकार भी सकुगद हो गए थे। इस कहानी में लेखक की भाषाशैली भावप्रधान प्रसन्न हो उठा और परिष्कृत है। साथ ही सारा कथानक कर्मात्मक ढंग से सुपटित है। प्रादि और अन्त कोरसपूर्वक संतुलित है जिससे रचनात्मक सीप्य का पूरा परिपय मिल जाता है। ई. सन् १९१३ तक विषय का इतना शृंगारमय स्थापन संवदा नहीं था। इस दृष्टि से इस रचना की विशेषता का अनुमान लगाया जा सकता है। मर्या के उत्तरमें बहने का इतना विचारभाविक निवेदन बिना प्रतिभा इस के कदापि सम्भव नहीं। किरण के धारमयिक धारणवान और नैरेय की प्रदानमूसक उपेक्षा की ही यह फरक कहानी है—जो काव्यात्मक पद्यति से उपस्थित की गई है। विषय को भावार्थनकता की प्रकृति के अनुकूल ही सारा वातावरण और पूर्वपोटिका मजबूत गई है। इस प्रकार दोनों पक्षों का अन्वोन्य सम्बाध सुटित हो गया है। यही इस कहानी का गुणाधार है।

घोर

[जैनेन्द्रकुमार]

नबील पद्यति के कहानी-लेखकों में श्री जैनेन्द्रकुमार का स्थान बहुत ऊँचा है। इनकी रचनाओं में जीवन की अनुभूतियाँ विचारबिचक और दार्शनिक तथ्यवाद को सूची दिखाई पड़ती हैं। भाषा भी तदनुकूल नहीं पठिणीत, सरल और व्यावहारिक है और वहीं उलझे कला और विचार-प्रमाण मिलती है। बावय-विभास में हिन्दी की मूल प्रकृति से मिस्र उलझ-कर प्रबिक धर्म योजना में धैर्यजीवन और विचार चिन्तन में ठर्क का सहारा प्रमुख रहता है। इन विशेषताओं को उनका धननापन ही मानना चाहिए—सोप का विषय नहीं।

उनकी लिखी कहानियाँ अनेक प्रकार की दिखाई पड़ती हैं वहीं इतिवृत्त की प्रधानता रहती है तो वहीं केवल सामान्य कदांच के आधार पर तथ्य-निवेदन मिलता है। उनकी पहली कहानी 'येस' ही लोगों को प्रभावित करने में पूरा सफल रही। उसके अंतर्गत तो

फिर निरन्तर उनकी रचनाएँ प्रकाशित होती रही हैं। कुछ विशेषणों
 अन्तर्गत उनमें ऐसी ही जो धारण के साथ एक प्रकार की बनी या रही
 हैं। कथानक का सीधापन विचार पद का संयोजन और व्युत्पत्तियों
 का मुख्य विशेषण ऐसी ही विशेषताएँ हैं। सामान्य-ही परिस्थितियों
 और घटनाओं का प्रभाव कभी-कभी ऐसा पड़ता कि जी में भर कर
 लेता। 'यिम' प्रकृत घटना मान्य 'पात्रों' 'बोरो' इत्यादि में उक्त
 प्रकृतियों का प्रभाव मिनती है। इतर प्रकार के विचार-पद का
 प्राधान्य उत्तरोत्तर कम हो रहा है।

'बोरो' कहानी में एक मनोवैज्ञानिक तथ्य का प्रकाश प्रतिपादन है।
 घातकों की मनोवृत्ति उक्त रूप के साथ-ही होती है और उनके
 नशीब-सुख में या सम्भार छाप या प्रभाव पड़ता है वह स्वच्छ, बुद्धि
 और एकरस होता है। प्रथम में बोरो के प्रति जो विज्ञान का नया
 प्रयोग हुआ वह बहुत काय तक उनके मस्तिष्क और चेतना पर
 छाया रहा। धीरे-धीरे और और बोरो की उत्तम के सुनी गयी या
 गया था तब तक द्वितीय ने बोरो के विषय में आशुप-आशुप की बात
 कही और तब-ही विज्ञान की भाँति प्रथम बोरो उसे देखने के लिए।
 बेच माने पर द्वितीय तो उत्सुक रहा पर वह विनित हो गया है
 क्योंकि बार द्वितीय प्रचार की तो मानव ने कुछ प्रतिक्रिया नहीं दिखाई
 पड़ा। फिर सोच उसके बरो इतना घबराते और डरते हैं—दूसरे बात की
 यह बात ही समझ पाता। यात्रा की कोमल-मति और बुद्धि का
 प्रकाश विज्ञान ही कहानी का प्रतिपादन है। परलुब्धता का प्रभाव ही
 हीनता का विशेष कारण है।

धीन की धिक्की

[सिवासासकाल्य पुठ]

यह कहानी रचना-विज्ञान की दृष्टि में उत्तम है। इसमें कथा-
 तन्त्र के प्राण उधार पड़ाव के साथ परिवर्तन के योग्य ही मंथन
 की प्रकृति है। परिस्थिति-अन्य भाव परिवर्तन का विवरण

सूक्ष्मता से किया गया है। पिपू को मूसल स्वर्णर उष्णकृमि उद्यत और नितांत ध्वनिनीत वा बहु सुदुर्बल बनीशर ज्वालाप्रसाद की कठोरता में धावद धरने पिता की धीन स्थिति को देखकर बचस जाता है और दुःख निरूपण के साथ उसमें कर्मठता जाग उठती है। इस जागरण एवं परिवर्तन में भीषण की धासंका भी बाधा नहीं डाल सकी। उसके निर्भीक उत्साह से ज्वालाप्रसाद भी प्रभावित हो जाता है। इसके प्रतिरिक्त मोहन के धन्तवृत्ति निरूपण में मेकाठ की सहृदयता अधिक स्पष्ट हुई है। सच्चे विज्ञान की सहज सरलता और मध्याय भावकता के उद्घाटन में बहु पूर्ण सफल हुआ। मोहन बस्तस्वयंपूज ममत्व की प्रतिमा है। उसकी ममता अपने पुत्र तक ही परिमित नहीं है। उसका प्रसार धीन तक फैल गया है। मोहन अपने सुख-दुःख के साथी बच के बिछुड़ने से विषमित हो उठता है और पिपू ने जो उसके प्रति कठोर बचन कहे समक निराकरण के लिए बड़ी सेवा-तत्परता मोहन ने बिछाई उससे उसके धन्तकरण की भागबोधि कोमलता प्रकट होती है।

कहानी का धारम्भ सर्वथा विषय के अनुस्यू हुआ है। बाबुओं के व्यापार से कुतूहल उत्पन्न होकर कहानी को धारंत बचिकर बनाए रहता है। निरर्बक विस्तार-संकोच के कारण धन्त अनुमानाभित होकर धाकर्षण उत्पन्न करने में सहायक है। भाषा बन्धुवित्तमूक धर्मिर्ध्वजना से धापुष है। सर्वत्र बाधों की सद्गुता और धीमेपन के कारण विषय-रूपण में स्वच्छता उत्पन्न हो गई है।

दो धाकि

[मगबतीधरण धर्मा]

हिंसी के उपध्याय और कहानी-मेधकों में धी मगबतीधरण धर्मा धपनी जिन्धादिनी धयथा भाव-प्रबलता के लिए प्रसिद्ध है। उनके बस्तु एवं विषय के संक्षेप और बुनाय में बड़ी उद्ग्राधना और बीमान रहता है। बचानक के प्रसार में वही संघर्षों का धवसर धा जाता है

वहाँ प्रवाह के माप मयार्पण का यज्ञ-कर्मकार दिखाई पड़ता है। माया को विषय के अनु रूप सजा देना और वास्वाओं में यथा-स्थान धामस्यक बल को कैन्दित कर देना इनकी अपनी विशेषता है। यह सोम्य उपस्थास और कहानियों में सप्तम समस्य से प्राप्त होता है।

सामान्य से विषय को लेकर एक छाती कहानी वह जाननेवाली पढ़ता इस रचना में मिल जाती है। यहाँ सप्तम की गुरु—जोहनों और उनके सरसों का सञ्जा विषय चीज दिया गया है। जनाओं के गुरु की एक घाटीक बहानुपी का घाँस देना विवरण उपस्थित कर लेखक ने ध्यान उत्तर विज्ञ पर पड़ी छाप का यज्ञ प्रदर्शन किया है। यों के स्वरूप विन्यास में लेखक ने गुरु धर्म्ययन का पूरा परिचय दिया है—एक धामा विषय सामने ला रखा किया है। इसी तरह सप्तम की सजा उपस्थास के संवाद में भी सजीबता उत्पन्न कर दी है। छाती कहानी में यथायथा अनुसूया है और सप्तम की सजा का धर्मिक बल भरता है।

सप्तम के बाँझों की गग विरगावनी के तात्पर्य में 'सप्तम' के मुझे को सामने रखकर बताने से एक अनुसूया कर्मकार पैदा होगा और दो छहरों का चारित्र्य पुनर्स्थापित हो जायगा। इससे सप्तम के प्रति सच्ची सन्तुष्टि प्रकट होगी और साहित्यिकता भी पूरी तरह बनेगी।

जय-दील

[अन्त]

रचना-विषय की परम्परागत पद्धतियों से पूरा पढ़ता न पाकर आज के युद्ध नवोद्गम कलाकार नवीन प्रयोगों की ओर जा प्रवृत्त हो रहे हैं उससे भाषा और साहित्य का भाग्य अधिक समृद्ध हो रहा है। संभव है इन नवोद्गमियों विविध भक्तिमार्गों के मोक्षार्थादान में धर्म की युद्ध व्यापार बढ़े और विषय-व्यञ्जन की शक्ति से सार्वभौम होने के कारण सामान्य पाठक पूरा पूरा आनन्द न प्राप्त कर सकें यथायथा यथा यथा पूर्वक एक से अधिक बार पढ़ना पड़े पर

इन सेवकों की रचनात्मक पति बिधि की समझ देने पर बात ऐसी नहीं रहेगी। प्रयोगवाद के इन प्रेमियों को भी थोड़ा सावधान होकर सिखाना होगा और छाष्णी व्यवस्था का प्रभाव बचाना पड़ना शक्यता शक्यकार में गड़बड़ होने का भय है।

यौ प्रज्ञेय' अब तक कहानी और उपन्यास रचना के क्षेत्र में प्रच्यौ प्रतिष्ठा प्राप्त कर चुके हैं। उनकी इस कहानी में इतिवृत्त उपस्थित करने की महीन प्रभावों दिखाई पड़ते हैं। चारम्भ में ही प्रच्यौत यथाप चित्रण का सोन्दर्य है और कथा साधारण वति से जसकर परिस्थिति की बिरोधता में परिपत हो जाती है। नविगेंट साबर पुपमी-सी दिखाई पड़नेवासी इमारत में—पका-पकाया पहचकर अपनी धाकाधायों और भायनाओं में सिपटा हुआ उदित हो उठता है। फिर तो गत इतिहास की बात कम से बटित होती हुई-सी दिखाई पड़ती है और जय-दास की निमित्त का सम्पूर्ण वृत्त जानार हुआकर सचंटे सामने खड़ा हो जाता है। गत का यही प्रच्यौतनीकरण सोन्दर्य का बिषय है—एक कहानी के भीतर दूसरी कहानी है।

तीन सौ चौबीस

[उपेग्रगाय 'भरक]

यौ उपेग्रगाय 'भरक' हिन्दी के प्रच्यौत परिचित सेवकों में है। उनकी कहानियाँ और माटकीय रचनाएँ बिरोध ध्यान से देती जाती हैं। बिषय के निर्वाचन और भाषा की सफाई पर इनका ध्यान प्रबिध दिखाई पड़ता है क्योंकि सबक इनकी भाषा एक-ही हुई है और बिषय सर्वथ मानव की मनोवृत्तियों की मूकम भारीवियों के चित्रण और बिस्तेषण में इनकी रुचि पाई जाती है। 'बाबी इनकी प्रति पठित कहानी है। प्रथमें बाकर की मन स्थिति तक पाठक को पहुँचने की सम्भरता सेवक में मिसती है। यही इन कहानी ३२४ में भी है। ई-र में व्याप्त क बचन का बिषय तो ज्ञान पर अपने पर को बैबकी की तरनोर भी सामने दिख गई, और फिर बोन्ध जाने के सिने उसने

‘हीं कर दिया अब कैसे मुकर जाए ? अब इतकार कर उस सुन्दर सड़की की मजदूरों में कुर्बान बनना उसे स्वीकृत न था ।’ इसीलिए वह बसिष्ठ मुकक उस सुन्दरी की सामान्य सहानुभूति प्राप्त कर एकन की धार्मिकता में मर निटा । अन्त तक अपनी ध्यान पर बटा रहा ।

इस प्रकार एक घोर बुधल सेखर ने यह दियाया है कि बाह्य से वीरित बन किस प्रकार ध्यान पर सेलनर पैसा कमाने में निरत होता है, धीर दूसरी धीर यह भी संकेत किया है कि हृदय की एक साधारण-सी हरन मनुष्य को प्रतिमान बनाने देती है । कुमाठी वास्टन के ‘युवा हृदय में इस कुली के लिए सहानुभूति का समुद्र उमड़ पाया । बहादुर से सुन्दर से हमदर्दी हो जाना स्वाभाविक है धीर फिर युवा रमणी के हृदय में— धाने जलकर हैर के पुग्पाव धीर हिम्मत का देलकर यह भाव बुध रगीत हो बठगा है— इस बहादुर कमी पर निवार होने के लिए उसका हृदय बैठाव हो उठ्य । अन्त में मंत्रिने मद्रमुद पर पहुंच कर जब हैर बैहोय हो जाता है तब— अपने रेशमी स्मात से उठकर मुस का पसीना पोंछत हुए कुमारी वास्टन ने ताबिक धारेष क बरा उसके मोरे मलक को चुम लिया । प्राण हैर हैर ने यह पुम्बन कमाया है धीर वह सुन्दरी धाम्य के इस कटोर विधान पर हैरन-सी मीचकफी-सी निबिनेप हो जाती है । हैर की ध्यान-प्रियता में जो विषयता है धनबा सुन्दरी वास्टन की सहानुभूति में जो अनुराग का रूप संजित हो उठा है वही बहाली का केन्द्र बिन्दु है ।

कुसे को पूँछ

[अठपाठ]

अग्याव धीर बहानी-सिपाह के का में श्री दानावा का ददा ददा है । उनमें दबाध बाहु की लदेत में प्याबहारिक एम्पों के बदबाटन की द्यूर्क अमता दिपाई पड़ती है । उहोंने धनेक साधारण

विषयों को लेकर इस मानिकता से कहानक को मढ़ दिया है कि उसके पीछर कुछ मन कुछ विचार और कुछ बसकार की बात मसक उठी है। रीतिक बीचन और मध्यमवर्ग के कौटुम्बिक और सामाजिक विचार भाव की विविध संविमाधों के प्रकाश की और उनकी विशेष अभिविधि दिखाई पड़ती है।

इस कहानी के प्रारंभ में मध्यमवर्गीय पति-पत्नी के संबंध की सपार्थ व्यंग्यता मिसती है जिसमें काल्पनिक भावुकता से भरे संवाकों का सवधा प्रभाव उहता है। धामे बनकर धीमतीजी की साम्यमूलक विचारधारा कहिए प्रबवा वास्तव्यमूलक मसत्व की पूरी मसक धातो है। उस धीन छोटे बच्चे के प्रति उहूया उनका जो अनुराग समड़ पडा है उसमें महिला-मुलम कीमसता ही प्रकट होती है। उही भावुकता के फर में पड़कर उहूने उस सड़के का भरण-भोपण ठीक अपने पुत्र की तरह किया और नाता प्रकार से उसे भसामानुस बनाते की पूरी बेप्टा की परसंस्कार-बिहीन बहु सड़का जहाँ-का-तहाँ रह भाठा है। धीरे-धीरे उस बेबीजी का मन भर जाता है और उनका घम्माबहारिक धारस-मसत्व कमबोर पड़वा-पड़ता कुंठित हो उठता है। बहु सड़का घंत में निकम्मा ही सिख होता है। कुसे की पूँस बप्टा करने पर भी धीबी महीं की जा सक्ती। कहानी का मूल निष्कर्ष अन्तिम पंक्तियों में स्पष्ट कर दिया गया है।

सुगद

[विप्यु प्रमाकर]

कहानी के मधीन सैखकों में विप्यु प्रमाकर की रचनाधों में अक्छा द्वाबक प्रभाव दिखाई पड़ता है। कदब-भावना को जगाने के सिप् जित प्रकार का इतिवृत्त और सपारान के सप्रह करते हैं उसमें गुणधर्म बीधित रहता है। विषय के निर्वाचन में—देसप्रेम और घटास प्रेरित आरिद्र्य का उद्घाटन ही मुख्य है पर हूँ-यसपणी कल्पनाधीमता और घंतवृत्तियों के निराकरण की धोर सैखक ने बड़ी उत्तरदा दिखाई है। उनकी विभिन्न कहानियों में एक तत्व प्रायः बर्तमान मिसता है—

मानवता । मनुष्य की सहज बुद्धि यही मानवता है । अज्ञान के नाश के पक्ष में हुए अनेक पृथक्-पृथक् भावों का संघटन करने पर भी मनुष्य-मनुष्य अपनापन नहीं त्याग करता और अज्ञान-अज्ञान्य भावों के सार्वभौमिक बुद्धि में से प्रेरित होकर उसकी बुद्धि मंगलमय हो उठती है ।

'इंद्र' कहानी में शैब्य ने जैसा इतिवृत्त सामने रखा है उसमें कुछ लोगों को एकदलीयता और कालविरोधत्व की परिस्थिति बाधक मामूली पड़ सकती है पर आदर्श मनुष्यत्व मानव प्रकृति की ऐसी तरलता भी भ्रमक रही है जो न तो काल से डरती है न किसी देश विरोध से । सुजाता मानवीय अज्ञान की मूर्तिवत् दिखाई पड़ती है । अज्ञान पीड़ितों की कठोर दुर्बला शक्तों द्वारा देखकर उसके हृदय के सब तार एक साथ ही झंकृत हो उठे और उसी उग्रम की अभिव्यक्ति पति-पत्नी के एकल संसार में भ्रमकी है । बेवना की धनुमूर्ति उसमें इतनी तीव्रता से बनी है कि उस संसार के शौचिक नियंत्रण से बच नहीं सकती है । दूसरे दिन प्रातःकाल की उसकी मुद्रा और बच्चों के प्रति प्रकट किए गए रोप में बड़ी धनुमूर्ति भरी मिलती है । वह अपने पति की बुद्धिबल्य निर्मितता में किसी प्रकार का शक ना लेती और उसके धार्मिक चले जाने पर बरेलू बाठावरण में डूबने की एक बार कैप्टा भी करती है कि मूस बात को ही मन से निकाल दे, पर सहसा घनत को पुनः धारा पाकर वह जीव उठती है । अंत में उत्पन्न हुए इंद्र को सामने रखना ही इस कहानी का अभिप्राय है । एक ओर अज्ञान की विभीषिका है तो दूसरी ओर लड़कों का मूढ़न । माता का हृदय लड़कों के मूढ़न में ममत्व देखता है पर नारी की उदारता धार्ये बड़कर बुभुक्षार्थ की कथन पुकार तक पहुँचती है । मूढ़न के स्वाम पर सहानुभूतिपुत्र बान को पाकर वह पिपसकर हृषित होती है और तभी उसकी धार्मिक बेवना समाप्त होती है । सुजाता और सोमेन का इंद्र भी प्रतीकारक है—हृदय और बुद्धि का इंद्र ।

परिशिष्ट

(ग)

अनुक्रमणिका

ईशा अन्ना खाँ

गामी केतकी की कहानी—१३६,

'अम' परिवेय बेचन शर्मा

उसकी माँ—१२ ७८ ८१, १२२,

बाँदनी—१४८ बिनगारी (क० सं०)—१६२

मुनपा—१४८ १२० १२८,

कपा देवी सिद्धा

प्यासी हूँ—१२४ वह हूँसी बी—१६२

अबम अरक जैन

वाम—१३६,

बेठक प्रसाद सिंह

घापतिपों का पर्वत—१३६ १४० १२६

'कीशिक' विरधंभरनाथ शर्मा

इककेबामा—०१

गार्ड—६१ ७१ ७६ ७८, १२१ १४२, १४८ १७२,

वह प्रतिमा—१२२

गुलाब

गार्ड गार्ड—१४२

गुलेरी अंजना शर्मा

उसन कहा वा—१८ २४ ८६, १४२ १२४ १२८ १८४,

१२८ २००

गोविन्दलाल पंत

मिलन मुहूर्त - १४७

अनुराधन शायी

गुनी—६४ १४८ १२२, बीबाजी—१४२

गुरदा में काये वही मीरी खजनी—१४८ १४६

संस्कृत विद्यालय

एक सप्ताह—१४३ १४६

जी० पी० श्रीवास्तव

बबानी के दिन—१४८

बहाका दत्त शर्मा

बर्धन—१४५, बिजवा—१४४

शैलेश कुमार

बोर—४४ २८३ बाहुबली—१४३

पहाड़ी

मेंदा—१४४

'प्रसाद' बदरशाह

पपोरी का मोह—१६३

पपरामी—६३

प्राजापतीप—४६ ६ ६१ ६३ ६५, ६८ १ १२२ १२३

१३३ १४६ १६० १६४ १८८ २८८

प्रांथी—१० ४३ ७१ १४२, १४४ २००

ईशवान (क० सं०)—१४४ १६४ कसा—१२७

गुवा—२४ ३३ ६२ ६३ ७० ७८ ७६ ८४ ८६ १२६

१३० १४७ १४५, १४८ १२४ १२८ १६४

बुद्ध छर्दि—१६३ ग्राम गीउ—७० बिज नाम पत्थर—१२४

छया—१६८ छोटा बाहुवर—१४४ ज्योतिष्मती—६३

बासी—६४ बैजवासी—१२६ बैजव—६२, ७६ नीरा—७०,

पत्थर की पुकार—१२७

पुस्तकार—२४ ४६ ६३ ६४ ७ ६३ ६८ १०२, १४८

१२६ २६ १६४ १७१ १७६ १७६

प्रणय-विहङ्ग—१४३ प्रलय की छया—१२७ बगवारा—६३,

बिजासी—२४ १४६, १२४ १२७ १७६ बेड़ी—१४२

मधुषा—७१ ७३ ७६, १३६, २४२ १४५, ममता—१४३
 विजया—६४ ७१, १६३, बच मय—१४३

समुद्र-सतरण—२१ ७४, १३३, १३४ १४३ १५७ १७१
 १६० १६६

सत्ताम—४६ १२६ १३० १४२ १४८ १५४ १५८ १७७ १८८
 सासबती—३३ ६३ १४२, १४५, १५४ १५८ १५६, १६४ १७६
 स्वर्ग के लङ्कहर में—६३ १३३ १४२ १६६

श्रीमच्छंद्

धनि समाधि—७६ १६२, १६१ धामुषों की होती—१४८
 धारम-संपीठ—२१, २२ २३, ७४ १३३ १६३ १५७ १६३,
 धारमाराम—१४८ १५४ ईदगाह—६३ ६७ १४४ २४८
 देवद्वैत—६३ ७६ ६८ १ २ १४२ १५४ १६१ १६३
 कफन—१४८ १५४, दो बीसों की कथा—६३, १५७ १५८,
 दो सवियाँ—१ १५६, २० नया—६३, ७० ६३
 पंच परमेश्वर—१६१ पिछनहारी का कुमाँ—१४८
 बड़ भाई साहब—१५८ मंत्र—१४२
 छतरंज के पिताजी—१४८ १८३
 छाति—१४२ १६६ १५४ १६१
 सुमान मयत—२४ ४३ ४६ ६३, ६६, ७१ ७२, ६२
 ६५ ६७, ६६ १४२ १४३, १४६ १५४
 १५८ १७०, २८०,
 सोहाग का एक—६८ १४२ १४८ १८३,

'श्रीम' शनीराम

बहन—१४३

बन्दी पदुमबाब बुबाबाब

पुंजी—१५४

बृहदावधिकाव्य बर्मा

टूटी सुराही—१४२

सरनागत—७४ ८१ ११८ १२६ १४८ १७७;

भयवतीचरण्य बर्मा

दो बाँके—४४ २८५, प्रायस्विच्छ—१४१

महू बग्गीनाथ

मुँघिक साहब की मरम्मत—१४१, १४६

'मुक्त' मनुखचंद घोष

दो दिन की बुनिया—१४६

मीहल जाक यहलौ

पाँच मिनिट—४४ १६, ७४ १४२,

पशपाक

कूतों की पूछ—१३८ २८८

राजा शक्तिरामसाह मसाह सिंह

कानों में कंपनी—११ १२५, २४६, २७२ छावनी समी—१४७

राजैरामसाह सिंह

घंठहन्ड—१४१

राधाकृष्ण

मवसंब—६२ १४१ १४४ १६१ १६१ मैना—७१

राव कृष्णदास

संत-पुर का पारम—१४२ १४६, गहना—१२४,

रमली का रहस्य—६४

रागीच राधक

तूफान—११०

'रु' शिबप्रसाह मिश्र

धोड़े पर हीरा हाथी पर बीन—१४६,

सँत की निदिया त्रिया घमसाने—१३६

सारी रंग बाली सात सात—१४६,

सूनी ऊपर सेज पिया की—१४६

विभोद शंकर व्यास

अपराध—१४९ कल्पगार्थों का राजा—१४६

विरहंभर माध विरजा

परबेधी—१४८ १४४

विष्णु प्रभाकर

ईद—२६

शिबपूजन सहाय

कहानी का प्नाट—१२४ १४८

शिवप्रसाद सिहारे द्विन्द

राजा भोज का सपना—१३६, १४० १४६, १९०

सत्यवती मदिञ्जक

भाई-बहन—१४३

सिपाराम शरथ गुप्त

काकी—१४३ कोटर या कुटीर—२१ बैल की बिम्बी—४४ २८४

सुरसंग

घसबम—२८१ एषेंस का सत्यार्थी—७१ १४६

कवि की हथी—१४६

सुमहा कुमारी चौहान

करन्ध के फूल—१४६

'हृदयेश' चंकी प्रसाद

मंदन निबुंज—१३३ २०० पर्यपसाम—१३३,

मित्तन-सीधर—१४७.

